# सिद्धेश्वर : व्यक्तित्व और विचार

प्रो. राम बुझावन सिंह

सिद्धेश्वर : व्यक्तित्व और विचार

प्रो. राम बुझावन सिंह

# सिद्धेश्वर : व्यक्तित्व और विचार


लेखक

**प्रो. राम बुझावन सिंह**

संपादक

**डॉ. शाहिद जमील**



प्रकाशक

**सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन**

**दिल्ली**

# सिद्धेश्वर : व्यक्तित्व और विचार


लेखक : प्रो. राम बुझावन सिंह
पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष
बी. एन. कॉलेज, पटना विश्वविद्यालय,
पटना-4
निवास : बाकरगंज बजाजा,
पटना-4, दूरभाष: 0612-2685639

संपादक : डॉ. शाहिद जमील
निवास : क्वार्टर नं.-सी-6
रोड नं.-5, आर. ब्लॉक, पटना-1
दूरभाष : 0612-2226905



प्रकाशक : सुधीर रंजन
सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन,
'दृष्टि', यू-207, शकरपुर,
विकास मार्ग, दिल्ली-110 092.
दूरभाष : 011-22059410, 22530652
मोबाइल : 9811281443, 9899238703



© : सुधीर रंजन, प्रकाशक



मुद्रक : कांशी इन्टरप्राइजेज, दिल्ली-९२, भारत
प्रथम संस्करण : वर्ष 2006 ई.
ISBN No : 81-904100-0-8
मूल्य : सजिल्द 300 रुपए

Sidheshwar : Vyaktitva Aur Vichar
by Prof. Ram Bujhawan Singh
Price Rs 300.00

# समर्पण

उन सभी समाजसेवियों एवं सामाजिक कार्यकर्ताओं को,
जिन्होंने भारतीय समाज के भूत और वर्तमान को
निकट से देखने की कोशिश की है और
सदियों से वर्ण, जाति, धर्म-संप्रदाय,
भाषा तथा क्षेत्र की नकारात्मक
क्रियाशीलता के चलते
विभाजित समाज का
लेखा-जोखा देने
के साथ ही
वर्तमान में
हो रहे और भविष्य में होने वाले
संभावित परिवर्तनों की
ओर जो संकेत
करते हैं।

*- प्रो. राम बुझावन सिंह*

श्री सिद्धेश्वर

# संग्रह का संदर्भ

सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व और विचारों का यह संग्रह इनके बचपन से बड़े होने तक और फिर केंद्र सरकार के सेवा-सफ़र का ईमानदारी से लिखा गया विवरण है जिसमें समाज, साहित्य, संस्कृति, राजनीति, धर्म-कर्म के साथ-साथ संगठन, पत्रकारिता आदि से जुड़े इनके मार्मिक विचारों को संजोया गया है। मेरा दावा है कि यह संग्रह एक बहुत ही प्रेरक पुस्तक साबित होगी, जिसमें वह सब कुछ है, जिसे लोग जानना चाहते हैं। इनके व्यक्तित्व व कर्तृत्त्व पर जितनी सारी चर्चा समाज के हर मोड़ पर होती है, उन सबों का समावेश इसमें करने की कोशिश की गयी है। सच कहा जाए तो इनके अब तक के समग्र जीवन पर यह एक ऐसी पुस्तक है जिसमें इनके बहुआयामी व्यक्तित्व और सर्जनात्मक संसार की झाँकी है।

सिद्धेश्वर जी का जीवन केवल संगठन, साहित्य और पत्रकारिता तक ही सीमित नहीं, बल्कि उसके बाहर भी हम इन्हें समाज के हर मोड़ पर समाज के साथ खड़ा पाते हैं। यही कारण है कि 65 की उम्र पार कर जाने के बाद भी इनकी लोकप्रियता कायम है और ये समाज सेवा की केंद्रीय भूमिकाओं में हैं। समुद्ररूपी समाज में कितने आवेग आये और गये, किंतु सिद्धेश्वर जी अग्निपथप्रदर्शक बने आत्मविश्वास एवं बहादुरी के साथ खड़े हैं। इन्हें खड़े होते देखकर कोई भी खड़ा हो सकता है। ये एक शख्सियत ही नहीं, महानता के पर्याय भी बन चुके हैं, जिनके कितने रस-रंग, कितने भाव-बोध और कितने चरित्र भासित हैं। ये एक प्रगत प्रवाह हैं, जिनकी जीवनानुभूतियों, झंझावातों और तूफानों से भरी साँसों की बदौलत लोगों में प्रेरणा जगती है, लोग खुश होते हैं और समाज का हर जी महसूस कर विस्तार पाता है, जिनकी प्रेरणा लाती है उनको हर ज़ज्बा, प्रेम, निष्ठा और दायित्वबोध।

साक्षात्कार, व्यक्तित्व, कर्तृत्त्व, तस्वीर और संगठन के पाँच खण्डों में विभाजित इस पुस्तक के प्रथम खण्ड में सिद्धेश्वर जी से विभिन्न विषयों पर किये गये साक्षात्कार और द्वितीय खण्ड में इनके व्यक्तित्व एवं कार्यकलापों के सूक्ष्म विश्लेषण के साथ-साथ इनके निजी जीवन की व्याख्या भी की गयी है। तृतीय खण्ड में इनकी कृतियों पर टिप्पणियाँ प्रस्तुत की गयी हैं जिनसे इनकी रचनाप्रक्रिया को समझा जा सकता है। इसमें समाज, साहित्य, संगठन, पत्रकारिता इत्यादि के विविध आयामों पर इनके विचार प्रस्तुत किए गये हैं। एक लंबे अरसे

से सिद्धेश्वर जी को मैंने पढ़ा और परखा है। इनके भीतर एक उच्च धरातल है, जो भौतिक सीमाओं से परे है और उच्च धरातल की मौजूदगी का एहसास मुझे हुआ है। इस एहसास ने मुझे इनके जीवन पर कुछ लिखने के लिए प्रेरित किया। मेरे इस प्रयास से इनके विचार लोगों तक पहुँच सकेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है। विचारों से ही व्यक्ति एक दूसरे के निकट आता है, विश्वास बढ़ता है और एक दूसरे को सहयोग करने की भावना का उदय होता है। विचारों का साम्य समाज की सामूहिक प्रगति के लिए जरूरी है। कभी हम दूसरों के विचारों से प्रभावित होते हैं तो कभी हमारे विचारों से दूसरे भी प्रभावित होते हैं। विचारों की संप्रेषणीयता का अपना महत्त्व है, क्योंकि विचारों का जन्म हमारे मस्तिष्क में निरंतर होता रहता है, लेकिन उन विचारों को अनुकूल समय पर ही व्यक्त करना बुद्धिमत्ता का परिचायक है, तभी उसका प्रभाव दूसरे पर पड़ता है। शालीनता, सादगी, सात्विकता, सहृदयता, उदारता इत्यादि गुण उत्कृष्ट विचारों के ही परिणाम हैं। इस दृष्टि से हमें अधिक-से-अधिक विशिष्ट एवं सुधी जनों का सान्निध्य प्राप्त करने एवं सत्साहित्य का अध्ययन करने के लिए अपने व्यस्त क्षणों से भी थोड़ा वक्त अवश्य निकालना चाहिए। इस संग्रह के चौथे खंड में सिद्धेश्वर जी की गतिविधियों से संबंधित तस्वीरें हैं, जो स्वयं बोलती हैं, इनके कार्यकलापों के बारे में। संगठन से इनके लगाव के बारे में विस्तार से चर्चा की गयी है इसके पाँचवें खंड में।

सिद्धेश्वर जी के विचारों को एकत्रित करने के पीछे भी यही भाव रहा है कि उन्हें अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाया जाए। ऐसा भी नहीं कि उनके ये विचार आप तक पहली बार पहुँच रहे हैं। अनेक सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक कार्यक्रमों द्वारा इनके प्रेरणादायक विचारों को गोष्ठियों, परिचर्चाओं, परिसंवादों, सम्मेलनों, अधिवेशनों इत्यादि के माध्यम से आप सुन चुके हैं, फिर भी असंख्य पाठक इनसे आज भी वंचित हैं। इसी शून्यता को भरने के लिए मेरा यह छोटा-सा प्रयास हुआ है। मेरे इस प्रयास में मेरा अनुभव बेहद सुखद इसीलिए रहा है कि इनके साथ जुड़कर समाज को कुछ देने के ख्याल से इनके विचारों को लिपिबद्ध करने की मेरी लालसा को मेरे तथा इनके सारे शुभेच्छुओं ने मुक्त कंठ से सराहा। राष्ट्रभाषा विभाग, बिहार के राजभाषा पदाधिकारी डॉ. शाहिद जमील ने तो इस कदम की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए मेरे इस प्रयास को प्रोत्साहित किया। मैंने तब महसूस किया कि व्यक्तिगत उपलब्धियों के संदर्भ में सिद्धेश्वर जी के विचार समाज व देश को स्वस्थ एवं सबल बनाने की प्रक्रिया के दौरान उपयोगी सिद्ध होंगे। मेरा यह

विश्वास शायद पक्का है कि मर्यादा और समाज को एक सूत्र में बाँधनेवाले सिद्धेश्वर जी आज के सामाजिक व राजनीतिक कार्यकर्ताओं का सही मायने में सच्चा प्रतिनिधित्व करते हैं। इस दृष्टिकोण से इस संग्रह में व्यक्त इनके ये विचार जनमानस को निश्चित रूप से झकझोरेंगे और इससे समाज के लोग बहुत कुछ सीखेंगे, ऐसी मेरी समझ है।

दरअसल भारतीय समाज की एक अनोखी विशेषता यह है कि इसके सदस्य न केवल स्वयं की क्षमता को कम करके आँकते हैं, बल्कि दूसरों की क्षमता को भी नजरअंदाज करते हैं। इस संदर्भ में सिद्धेश्वर जी समाज के लोगों को अपनी क्षमता पहचानने की बात कहते हुए उन्हें सामूहिक कार्य और आजादी की रक्षा के लिए इकट्ठे होकर आगे आने का आह्वान करते हैं, क्योंकि समाज में जागरूकता का अलख जगानेवालों की आज सख्त जरूरत है। भूमण्डलीकरण और निजीकरण के इस दौर में तमाम बाहरी दबावों को झेलने की शक्ति एकमात्र जनता में होती है, क्योंकि वही जनांदोलनों के सहारे बाहरी दबावों का जवाब दे सकती है। किंतु दुर्भाग्य की बात यह है कि यहाँ जनांदोलन का सिलसिला कमजोर पड़ता जा रहा है और दिनोंदिन लोकतांत्रिक मूल्य-मर्यादाओं का खात्मा हो रहा है। इसलिए जरूरत इस बात की है कि लोकतंत्र की प्रहरी जनता को उनके कर्त्तव्य का ध्यान दिलाया जाए और इसके लिए पहरुओं की आवश्यकता है। सिद्धेश्वर जी इन्हीं पहरुओं की खोज में परेशान हैं। इनके विचारों से कुछ पहरुए तैयार हो जाएँ तो मेरा यह प्रयास सफल समझा जाएगा।

इनका संघर्षमय जीवन लोक-शिक्षण और लोक-चेतना जाग्रत करने में व्यतीत हो रहा है। इनके जीवन की सार्थकता का आकलन इनके जीवनमूल्यों और स्वार्जित उपलब्धियों के आधार पर किया गया है, जो समाज के लोगों के लिए प्रेरणास्पद होगा। क्योंकि यदि हम यों कहें कि भारतीय समाज का संपूर्ण इतिहास कुछ हजार व्यक्तियों के जीवन का इतिहास है तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व और इनके जीवन की संपूर्ण उपलब्धियों एवं विचारों को इसमें इस प्रकार संजोया गया है कि इनके कर्मठ व्यक्तित्व की एक समूची दुनिया पाठकों की आँखों के सामने चित्रबद्ध हो जाए, क्योंकि इनका व्यक्तित्व आज भी समाज के एक बड़े वर्ग को प्रभावित किये हुए है। इस प्रकार यह संग्रह न केवल हमारे सामाजिक जीवन, आचार-विचार और रहन-सहन के संबंध में एक नयी अवधारणा का अध्याय खोलता है, बल्कि सामाजिक जीवन की मूलभूत प्रेरणाओं और सिद्धेश्वर जी की अदम्य अनुभूतियों से पाठक को सुपरिचित भी कराता है।

यह बात ठीक है कि परिवार के भरण-पोषण के लिए इन्होंने सरकारी सेवा को चुना, किंतु अपने कैरियर का अंतिम लक्ष्य उसे न बनाकर इस जीवन में कुछ कर दिखाने के लिए तमाम विकल्प इन्होंने खुले रखे और अंतत: सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में अपनी एक अलग पहचान बनाने का फैसला किया। इस बीच अनेक उतार-चढ़ावों के बावजूद इनके इस आत्मविश्वास ने इन्हें अपने इरादे से डिगने नहीं दिया। यही कारण है कि इन्होंने पीछे मुड़कर कभी नहीं देखा और अपने लक्ष्य की ओर ये अनवरत अग्रसर होते गये। इनके जीवन का सपना है एक स्वस्थ समाज की स्थापना और इसके माध्यम से एक सबल राष्ट्र का निर्माण। इसकी प्राप्ति के लिए ये निरंतर धैर्य रखकर अपने पुरुषार्थ का सदुपयोग कर रहे हैं। सिद्धेश्वर जी अपनी उम्र के पैंसठ साल पूरे करने के बाद अपने जीवन के इस मोड़ पर जब ये अब तक की अपनी जीवन यात्रा पर नजर दौड़ाते हैं तो जीवन के कई महत्त्वपूर्ण पड़ाव इनकी आँखों के सामने तैर जाते हैं। इस बीच इन्होंने अपनी जिंदगी में हर कर्त्तव्य निभाने की कोशिश की है और कई अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। मैंने इनसे इनके जीवन के हर मोड़ पर आये अनेक क्षणों को बातचीत के जरिये रेखांकित करने का प्रयास किया है जो शायद वर्तमान एवं आनेवाली पीढ़ी के लिए प्रेरणा के स्रोत बन सकें और इन्हें अपने जीवन में अपनाने को प्रोत्साहित कर सकें, कुछ इसी ख्याल से इस पुस्तक का प्रकाशन हो सका है। सिद्धेश्वर जी हमारे बाद की पीढ़ी के उन विरले व्यक्तियों में हैं जिनमें विचार और संवेदना का स्पृहणीय समन्वय मिलता है। परिवार, समाज, साहित्य, संस्कृति, राजनीति, पत्रकारिता इत्यादि विषयों पर इनके विचारों को संजोने का एक कारण यह भी है कि ये इन सवालों से टकराते हैं और यह मानते हैं कि साहित्य व संस्कृति समय और समाज को रूपांतरित करने की एक वैध सर्जनात्मक प्रक्रिया है। इनका मानना है कि जीवन स्वयं एक महागाथा है जिसके भीतर अनंत छोटी-छोटी कहानियाँ हैं। इन छोटी-छोटी कहानियों का समुच्चय ही जीवन है। जीवन के बीच से उपजी इन्हीं कहानियों के संबंध में अमर कथाशिल्पी 'रेणु' ने कहा था - 'कोशी की सिकता भूमि में अनंत कहानियाँ बिखरी पड़ी हैं। यदि यहाँ का प्रत्येक व्यक्ति कथाकार हो जाए तो भी ये कहानियाँ कभी समाप्त नहीं होंगी।' इसी प्रकार अपनी जीवन-यात्रा में जीवन की विविधता और भिन्नता का जब भी सिद्धेश्वर जी ने आत्मसाक्षात्कार किया है, इनकी सामाजिक अनुभूतियाँ इसके आंतरिक बोध को जाग्रत कर साहित्य में उतरी हैं और रचनाओं में ढली हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जो व्यक्ति अपने जीवन के उच्च पथ पर संघर्षपूर्वक आगे

बढ़ते हुए संगठन के अलावा पत्रकारिता और साहित्य सेवा करता है, उसका मूल्य कहीं अधिक होता है।

अधिकांश आदमी तो मात्र अपने पेट की चिंता करते हैं, अपने परिवार की सोचते हैं। उन्हें समाज, साहित्य, राष्ट्र या मानव-जाति के हित-अहित से क्या लेना-देना? किंतु कुछ आदमी ऐसे होते हैं जिनकी सोच व्यष्टिवादी न होकर समष्टिवादी होती है। ये अपने स्वार्थ से हटकर परिवार को साथ लेते हुए भी कुछ कर गुजारने को तत्पर रहते हैं। सिद्धेश्वर जी आज हमलोगों के बीच इसी पंक्ति में खड़े हैं, जो जातीय, धार्मिक, भाषायी एवं क्षेत्रीय तनावों और राजनीति में रहकर भी उसके घिनौने कृत्यों से ऊपर उठकर निरंतर सर्जनात्मक कार्यों में रत और चिंतनशील हैं। ऐसे सर्जनशील एवं चिंतनशील व्यक्तित्व से संबंधित विचारों को संकलित कर मुझे बड़ी प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। मित्रवर सहृदय साहित्यकार डॉ. शाहिद जमील ने संकलित तथ्यों का संपादन कर सिद्धेश्वर जी के साथ अपनी दोस्ती का दायित्व बखूबी निभाया है। वे मेरे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं। देशभर के जानेमाने विद्वान् साहित्यकारों तथा मनीषियों ने इस पुस्तक पर अपने अभिमत एवं शुभाशंसा लिखकर न केवल हमें कृतार्थ किया है, बल्कि इस पुस्तक के नायक सिद्धेश्वर जी की समाज व साहित्य-साधना के प्रति आस्था व्यक्त की है जिसके लिए मैं इन सभी विद्वत्जनों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ। देहरादून के साहित्य-साधक डॉ० राज नारायण राय ने इसकी भूमिका लिखकर अपने शिष्य-धर्म का पालन किया है। मैं उन्हें आत्मीय भाव से धन्यवाद देता हूँ। पुस्तक आप पाठकों-लेखकों के हाथों में है। आपलोगों की चीज आपलोगों को ही सौंपता हूँ। विश्वास है समाज व देश के लोगों को इस जीवनी से प्रेरणा मिलेगी और समाज के कार्यकर्ताओं में भी इसे पढ़कर यह आत्मविश्वास जगेगा कि वे भी समाज के लिए कुछ कर सकते हैं। पुत्रवत् सुधीर रंजन को मैं विशेष धन्यवाद इसलिए दे रहा हूँ कि सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन, दिल्ली की ओर से इतने सुंदर एवं आकर्षक साज-सज्जा के साथ इस पुस्तक के प्रकाशन में उसने अपनी ईमानदारी का परिचय तो दिया ही है, अपने पिता के प्रति कृतज्ञता भी ज्ञापित की है। प्रो० एम०पी०सिन्हा के प्रति मैं आभारी हूँ, जिन्होंने इसके प्रकाशन में सहयोग प्रदान कर मुझे कृतार्थ किया।

प्रो. राम बुझावन सिंह
पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष
बी. एन. कॉलेज,
पटना विश्वविद्यालय, पटना

15 मार्च, 2005 ई.
बाकरगंज बजाजा, पटना-4
दूरभाष: 0612-2685639

# संपादकीय

सिद्धेश्वर जी की जीवनी सामाजिक जीवन के खूबसूरत सपने की एक झलक है। दरअसल आम तौर पर सार्वजनिक व्यक्तियों की जीवनियाँ अधिकतर उनके सार्वजनिक जीवन के उतार-चढ़ावों को ही आगोश में समेट पाती हैं। उनका व्यक्तिगत जीवन प्राय: अनदेखा रह जाता है, किंतु प्रो. राम बुझावन बाबू द्वारा लिखित सिद्धेश्वर जी की यह जीवनी वस्तुत: एक सामाजिक कार्यकर्ता के व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक जीवन का एक ऐसा इतिहास है जिसमें इनके अपने निजी और घरेलू जीवन के कुछ स्थूल विवरण सहित इनकी रचनाधर्मिता पर विस्तार से चर्चा की गयी है।

जवाहरलाल नेहरू ने अपनी जीवनी लिखते वक्त यह स्वीकार किया है कि ज़िंदगी इतनी जटिल और तर्करहित है कि उसे किसी निश्चित सिद्धांत की चारदीवारी में नहीं बाँधा जा सकता। जिंदगी में इंसान का सफर खुशियों और आँसुओं का अजीब मेल है। ज़िंदगी का सफर दुखभरी कहानी है, जिसे अकेले ही भोगना पड़ता है। इस दृष्टि से सिद्धेश्वर जी की जिंदगी औरों से कुछ भिन्न है, क्योंकि इन्होंने अपने निकटतम सहयोगियों-मित्रों के साथ अपने नितांत जीवन के सुख-दुख को सदैव बाँटा है।

आप जब इनकी जीवनी को पढ़ेंगे तो पाएँगे कि प्रारंभ से ही इन्होंने छात्रों और युवाओं को सामाजिक संघर्ष के लिए प्रेरित करने का काम किया है। प्राचीन सड़ी-गली परंपराओं और प्रथाओं का भार ढोने की बजाय उनके विरुद्ध विद्रोह करने का लगातार अनुरोध करते रहे हैं। सामाजिक संगठनों में रहकर इन्होंने जातिवाद, संप्रदायवाद, छुआछूत इत्यादि को हमेशा निशाना बनाया। मुझे अच्छी तरह याद है जब ये पटेल सेवा संघ, बिहार के महासचिव थे तो इन्होंने समाज की उन सभी जातियों, धर्मों, भाषाओं एवं क्षेत्रों के लोगों के लिए संघ का दरवाजा खोल रखा था, जो लौह पुरुष सरदार पटेल के आदर्शों एवं विचारों में आस्था व निष्ठा रखते थे। इसी प्रकार जब राष्ट्रीय विचार मंच, बिहार के महासचिव रहे और वर्तमान में मंच के राष्ट्रीय महासचिव के पद पर आसीन हैं तो ये समाज के सभी वर्गों को साथ लेकर चल रहे हैं और राष्ट्रीयता एवं जनचेतना जाग्रत कर एक नयी समाज व्यवस्था का मार्ग प्रशस्त करने का प्रयास कर रहे हैं, जिसमें न कोई जाति-धर्म से ऊँचा हो, न नीचा और मानव का शोषण भी नहीं हो तथा जिसमें सबको सेवा, अभिव्यक्ति एवं विकास के समान अवसर मिल सकें।

सिद्धेश्वर जी के जीवन से संबंधित महत्त्वपूर्ण तथ्यों एवं इनके सार्वजनिक जीवन की घटनाओं पर इस पुस्तक में विस्तार से प्रकाश डाला गया है, जिनसे पता चलता है कि इनके मन में दलितों, उपेक्षितों, पिछड़ों, स्त्रियों एवं अल्पसंख्यकों के प्रति हुए भेदभाव पर बेहद गुस्सा है। मध्य वर्ग के किसान परिवार में पैदा होने पर भी इनका मन पारंपरिक आम संस्कारों से मुक्त है। यही कारण है कि रूढ़ मान्यताओं और अंधविश्वासों एवं पाखंडों पर ये आज भी कसकर वार करते हैं। इसी प्रकार समाजवादी मूल्यों के प्रति इनकी प्रतिबद्धता स्पष्ट है। साम्राज्यवादी और सांप्रदायिक ताकतों के खिलाफ तथा समाज की जड़ प्रथाओं के विरुद्ध जो गुस्सा इनके मन में उभरता है उसकी अभिव्यक्ति इनकी रचनाओं में आसानी से देखी जा सकती है। गाँधी और लोहिया ने जो समाजवाद का सपना देखा था, जयप्रकाश के जेहन में संपूर्ण क्रांति का जो सपना था, संभवत: वह सपना लोगों की आँखों में आज भी है। सिद्धेश्वर जी उसी समाजवाद और संपूर्ण क्रांति के रास्ते पर चलने की बात कहते हैं और लोगों को उसके लिए प्रेरित करते हैं।

मजहब के प्रति इनमें अनुचित आग्रह नहीं। इस देश में मजहब के साथ-साथ जातीयता और सांप्रदायिकता को ये सचमुच बहुत गंभीर स्थितियाँ मानते हैं, खासकर तब, जब राजनीतिक दलों द्वारा अक्सर मजहब का विश्वास के रूप में नहीं, अपितु एक हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। इसलिए शासन करने और दमन करने का वह एक औजार बना हुआ है, जिसे ये अत्यंत दु:खद मानते हैं।

हमारा विश्वास है कि यह पुस्तक सामाजिकता और भाईचारे की भावना की उच्चस्तरीय अभिव्यक्ति से परिपूर्ण है। हम भ्रातृत्व और सामाजिकता की भावना को महसूस तो करते हैं, पर उन्हें अपने जीवन में नहीं उतारते। इसी प्रकार राष्ट्रीयता की भावना को सब लोग अनुभव करते हैं, पर अधिकांश के व्यावहारिक जीवन में नजर नहीं आते और वे अपनी ही समृद्धि में खो जाते हैं। सिद्धेश्वर जी जैसे अनेक सामाजिक कार्यकर्ता हैं, किंतु इन्होंने भ्रातृत्त्व और सामाजिकता की व्यापक मानवीय भावना को अपने जीवन में जिस प्रकार चरितार्थ किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। कारण, जो सर्वोच्च शक्ति किसी व्यक्ति को अपने साथी मानव प्राणियों से भाई की भाँति व्यवहार करने का अवसर प्रदान करती है, वह सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व में विद्यमान है। इन्हें आनेवाली पीढ़ी इसलिए भी याद रखेगी कि इन्होंने अपनी सामाजिक, साहित्यिक एवं राजनीतिक

शक्ति का प्रयोग करते वक्त अपनी अंतरात्मा की पुकार को मूर्तरूप देने का प्रयास किया है। ये सोचने और कार्य करने के अनूठे ढंग को अपनाते हुए नितांत भिन्न प्रकार से क्रियाशील होने को उद्यत हुए और उद्यत हुआ इनका समस्त शेष जीवन। आखिर तभी तो भारत सरकार की अच्छी खासी नौकरी (समूह 'क' के वेतनमान) में होते हुए भी इन्होंने स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति लेकर अपना शेष जीवन सार्वजनिक बनकर बिताने का निर्णय लिया। इस भौतिकतावादी युग में जब सभी लोग अर्थ की अँधी दौड़ में शामिल हैं, सिद्धेश्वर जी के इस कदम को साधारण नहीं समझा जाना चाहिए। यही इनकी दृढ़ इच्छाशक्ति का प्रमाण है, जिसकी ओर हमारे जैसे अनेक लोग खिंचे चले आते हैं। इनके लिए स्वेच्छा से अवकाश प्राप्त करना एक साधारण सी बात थी और उसके बाद इन्होंने अपने शेष जीवन और अपनी समस्त सामाजिक एवं राजनीतिक शक्ति भ्रातृत्त्व और राष्ट्रीयता की भावना को क्रियात्मक रूप देने में मिशनरी उत्साह से खुद को लगा दिया है। पूरे देश में समान सोच के लोगों को जोड़कर ये मंजिल तक पहुँचने की कोशिश कर रहे हैं। समाज के विचारवान् तथा देश के प्रति श्रद्धा और सम्मान रखनेवाले सभी सुधीजनों का यह राष्ट्रीय दायित्व हो जाता है कि इनके कदम से कदम मिलाएँ। अब वह समय आ गया है जब एकता और सामूहिक प्रयास के बिना काम नहीं चलेगा। वर्तमान दौर में बलप्रयोग की जगह हृदयपरिवर्तन ही वह साधन है, जिसे मानव जाति और राष्ट्र की एकता के लिए काम में लगाया जा सकता है। जरूरत केवल विवेक और संकल्प की है, जिसे भाई सिद्धेश्वर जी ने समय पर अपनाया है और जिसका अनुसरण करने के लिए इन्हीं की तरह हमें भी अपने अंत:करण से प्रेरणा प्राप्त करनी होगी।

सिद्धेश्वर जी से किये गये साक्षात्कार वस्तुत: ज्ञानवर्द्धक और प्रभावपूर्ण होने के साथ-साथ इनके व्यक्तित्व और विविध विषयों पर व्यक्त इनके विचारों को समझने में सहायक सिद्ध होंगे, ऐसा मेरा विश्वास है। बिल्कुल बातचीत के लहजे में कथ्य को प्रस्तुत कर देना समर्थ रचनाकारों द्वारा ही संभव है। जिस तरह प्रो. राम बुझावन बाबू ने क्रमिक रूप से इनके व्यक्तित्व और विचारों को संजोया है, वह सराहनीय है। विद्वान लेखक ने इस पुस्तक में सिद्धेश्वर जी का सही एवं वास्तविक मूल्यांकन किया है। उनका कथन कितना सटीक है कि 'सिद्धेश्वर जी का एक ओर जितना खुला व्यक्तित्व है, स्वभाव से उदार भी ये उतने ही हैं और दूसरी ओर किसी के लिए ये सहज और सुलभ भी।'

सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व में औरों से भिन्न जो विशेषताएँ मैंने पायीं है, उनमें से एक यह है कि इनकी वाणी में छल-कपट नहीं, बल्कि बल है और इनकी कथनी-करनी में सामंजस्य है। दूसरे, न तो ये किसी खेमा विशेष से जुड़े हैं और न ही इनका लेखन किसी वाद से जुड़ा है, पर इतना अवश्य है कि इनके साहित्य में आम आदमी की पीड़ा, दु:खदर्द और संघर्ष स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। इनका अपना चिंतन है, जो इनके जीवन की व्यावहारिकता है। यही इनका साहित्य दर्शन है और यही इनकी विचारधारा। इधर हाल के वर्षों में मैंने पाया है कि चाहे राष्ट्रीय विचार मंच से जुड़े कार्य हों या 'विचार दृष्टि' पत्रिका के या फिर किसी साहित्यिक, सामाजिक अथवा राजनीतिक संगोष्ठी में अपने विचार प्रस्तुत करने के, इनके कार्य करने की शैली में तत्परता, निष्ठा, समयबद्धता तथा सत्यता साफ झलकती है, क्योंकि निर्धारित विषयों पर ये काफी 'होमवर्क' करते हैं। सही मार्गदर्शन पर चलना और सही मार्गदर्शन देना इनकी दैनिक चर्या का एक अंग है। ये एक ऐसे व्यक्ति हैं, जो सबको साथ लेकर चलने की भावना से काम करते हैं। इनके कार्य में पारदर्शिता है जिसका सार्वजनिक जीवन से जुड़े लोगों में सर्वथा अभाव खटकता है।

वस्तुत: सिद्धेश्वर जी की जीवनी के रचनाकार प्रो. राम बुझावन बाबू की यह सर्जनशील दृष्टि और इनके साथ एक लंबे अरसे से जुड़े रहने का प्रतिफल है कि उन्होंने इनकी जीवन-दृष्टि और रचना-दृष्टि को बड़ी आसानी से समझ लिया। इनके जीवन पर लिखी गयी यह पुस्तक सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व एवं विचार के साथ-साथ सामाजिक एवं राजनीतिक परिदृश्य की एक सार्थक समझ से पाठकों को लैस करती है जो संक्षिप्त है और सारगर्भित भी।

सिद्धेश्वर जी के जीवन में व्यावहारिकता कूट-कूट कर भरी है। सामाजिक समृद्धि पाने के लिए व्यावहारिक होना जरूरी है, क्योंकि जब समाज का प्रत्येक व्यक्ति इस दिशा में ईमानदारी के साथ अपनी जिम्मेदारी का निर्वहन करेगा तो निश्चित रूप से समाज में भाईचारे का वातावरण बनेगा। भाई सिद्धेश्वर जी अपने व्यवहार से इसी भाईचारे एवं सद्भाव के वातावरण का निर्माण करते हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि व्यावहारिकता सामाजिकता का एक अंग है, जिसे ये बखूबी जानते हैं। इनके व्यवहार से ही समाज के दूसरे व्यक्ति इनसे प्रभावित होते हैं। इनका व्यवहार ही इनकी कुशलता की निशानी है।

आत्मीयता के विस्तार में भी इनकी व्यावहारिकता काम आती है। अपने आचरण में विशिष्टता लाने के लिए व्यक्ति को जो उपाय करने पड़ते हैं, वे सभी आत्मीयता को भी पोषित करते हैं। सिद्धेश्वर जी सदैव उन उपायों को खोजते

हैं और अमल में लाते हैं, क्योंकि ये उन्हें अपना एक सामाजिक दायित्व समझते हैं। यही कारण है कि ये सदैव दूसरों के हृदय में अपना स्थान बनाने की कोशिश करते हैं और जिसका परिणाम सकारात्मक होता है।

सिद्धेश्वर जी की स्पष्ट धारणा है कि किसी निश्चित उद्देश्य को लेकर चलनेवाला जीवन ही सार्थक होता है। इसी भाव से प्रेरित होकर इन्होंने सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में जीवन जीने का संकल्प लिया। इस संदर्भ में ये कहते हैं कि अक्सर इस बात का एहसास लोगों को अपने जीवन के अंतिम दिनों में बार-बार होता है, लेकिन अफसोस, कि तब तक तो समय ही निकल चुका होता है और वे चाहकर भी कुछ नहीं कर पाते। सिद्धेश्वर जी ने व्यक्ति और समाज के अंत:संबंधों को समझने-पहचानने की चुनौतीपूर्ण दृष्टि विकसित कर ली है जो तथ्य आज निर्विवाद रूप से काफी महत्त्व रखता है। इनके जीवन की अबतक के सभी क्रियाकलापों एवं कृतियों पर एक नजर दौड़ाने के पश्चात् एक निष्पक्ष व्यक्ति को यह स्पष्ट दिखायी देगा कि यह व्यक्ति समाज के प्रति प्रतिबद्ध होने के साथ-साथ राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत है। यहाँ इस राज को फाश करना यथोचित होगा कि भाई सिद्धेश्वर जी के समस्त क्रियाकलापों के भव्य महल की बुनियाद ईंट भाभी जी हैं। हर सफल पुरुष के पीछे नारी होती है-इसे इन्होंने सिद्धेश्वर जी के साथ पूर्णरूपेण चरितार्थ किया है।

लेखक ने इनके जीवन से संबंधित तथ्यों को संगृहीत करने के पश्चात् इसके संपादन का दायित्व मेरे दुर्बल कंधों पर देकर मुझे गौरवान्वित इस माने में किया है कि प्रो. राम बुझावन बाबू सरीखे सुपरिचित प्राध्यापक-लेखक की पांडुलिपि का संपादन अपने आप में एक गर्व की बात है। सचमुच, उन्होंने यह अवसर प्रदान कर मुझे कृतार्थ किया है। मैं तहेदिल से उनका शुक्रिया अदा करता हूँ और भाई सिद्धेश्वर जी के प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ, क्योंकि ये ही इसका सबब बने।

क्वार्टर नं० सी/6, रोड नं० 5
आर. ब्लॉक, पटना-800001
दूरभाष: 0612-2226905

डॉ. शाहिद जमील
राजभाषा पदाधिकारी
राजभाषा विभाग, बिहार, पटना

# दो शब्द सिद्धेश्वर के

पटना विश्वविद्यालय, बी. एन. कॉलेज के पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष प्रो. राम बुझावन सिंह जी एक सुपरिचित साहित्यकार हैं। अपनी जीवनयात्रा के 87वें पड़ाव पर विराजमान प्रो. साहब ने समाज, साहित्य, राजनीति तथा संस्कृति से संबंधित देश के विविध समसामयिक मुद्दों पर धारदार कलम चलाकर अपनी क्षमता का परिचय दिया है। उनकी सजग दृष्टि समाज के उन कई हस्ताक्षरों पर भी गयी है, जिन्होंने अपने व्यक्तित्व व कृतित्व से समाज व देश को एक नयी दिशा दी है और किसी-न-किसी क्षेत्र में उनका विशिष्ट योगदान रहा है। पता नहीं उन्होंने मुझमें कौन-सी वैसी विशेषता पायी जिससे प्रभावित होकर मेरे व्यक्तित्व और विचार पर अपनी कलम चलाना उन्होंने मुनासिब समझा। वैसे मेरी कृतियों और कार्यकलापों से वे एक लंबे अरसे से परिचित रहे हैं, बल्कि सच कहा जाए तो मेरी कोई भी कृति बिना उनके मार्गदर्शन के नहीं निकल पायी है। ठीक इसी प्रकार मेरे द्वारा संपादित राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक पत्रिका 'विचार दृष्टि' के न केवल वे संस्थापक परामर्शी हैं, वरन् नियमित लेखक एवं पाठक भी। उनके मार्गदर्शन एवं रचनात्मक सहयोग से जहाँ यह पत्रिका स्तरीय एवं पठनीय हो चली है, वहीं उनके सकारात्मक सुझावों एवं स्नेह से मेरी लेखनी को गति मिली है। आज के दौर में जब साहित्य के क्षेत्र में भी लोग बरगद के वृक्ष देखने के अभ्यस्त हो गये हों, वहाँ प्रोफेसर साहब ने उसके बोंसाई रूप में कौन-सा चमत्कार मुझमें देखा कि मेरे जीवन पर भी कुछ लिखे बिना वे नहीं रह सके।

हिंदी साहित्य के एक प्रतिष्ठित हस्ताक्षर, वक्तृत्त्व कला के धनी, पाटलिपुत्र की इस ऐतिहासिक नगरी की साहित्यिक गतिविधियों में विगत सात-आठ दशकों से रचे-बसे उस सदाचारी साहित्यकार ने मेरे जीवन की गहराई में जाकर उन अनछुए पहलुओं का भी समावेश इस पुस्तक में किया है जिनकी ओर मेरा ध्यान अभी तक नहीं जा पाया था। सच मानिए, मेरे जीवन के हर क्षण की अनुगूँज इसमें सुनायी पड़ती है। यदि मैं स्वयं भी अपनी आत्मकथा लिखता तो उसमें शायद इतनी बारीकी नहीं आ पाती, ऐसा मैं समझता हूँ। दरअसल हमारे जीवन के अवलोकन में उनकी अंतर्दृष्टि ऐसी जगी है, जो रचनाकार की सर्जनधर्मिता की ताकत है। यही अवस्था सर्जक को सामान्य जन से अलग कर वैशिष्ट्य प्रदान करती है। राम बुझावन बाबू की चेतना का ऐसा ही प्रतिबिंबन इस रचना में हुआ है। सच तो यह है कि उनकी यह उत्कंठा उनके जीवन की

सही और वास्तविक उपलब्धि का एहसास करा जाती है। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि मुझ जैसे अति साधारण सामाजिक कार्यकर्ता को भी अपने वैदुष्य के घेरे में लेकर अपनी लेखनी के माध्यम से पाठकों के समक्ष मेरे जीवन के छुए–अनछुए पहलुओं को उजागर करने का उन्होंने प्रयास किया है, जो मेरे लिए गौरव की बात है।

रचनाधर्मिता खंड में प्रोफेसर साहब ने मेरी रचनाओं पर जो टिप्पणियाँ प्रस्तुत की हैं, उनसे इस संपूर्ण खंड में कसी गयी सामग्रियाँ उमदा बन पड़ी हैं। मुझे अपने शेष जीवन में कुछ और अधिक करते जाने का प्रोत्साहन मिला है। वैसे भी मेरा यह सौभाग्य रहा है कि मुझे अच्छे साहित्यकारों एवं सुलझे समाजसेवियों का सान्निध्य निरंतर प्राप्त होता रहा है जिसका लाभ मुझे यह मिला कि उनके विचारों को अपने जीवन में उतारने का अवसर मैंने पाया। जीवनयात्रा के बचपन से लेकर अब तक कई पड़ावों पर कई तरह के खट्टे-मीठे अनुभव मुझे सदैव प्राप्त होते रहे हैं और उनसे मैं हमेशा कुछ न कुछ सीखता रहा हूँ। ग्रामीण अँचल से प्रारंभ मेरा जीवन भरपूर जवानी में राँची, पटना और राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली जैसे भीड़-भाड़ वाले शहरों में टिक सा गया। इन शहरों में प्रो. बी. एम. के० सिन्हा, प्रो. सिद्धेश्वर प्रसाद, पद्मश्री डॉ. श्यामसिंह शशि, कवि गोपीवल्लभ सहाय, सहृदय भोला प्रसाद सिंह 'तोमर', कवि सत्यनारायण, प्रो. राम बुझावन बाबू, बाँकेनन्दन प्रसाद सिन्हा, जिया लाल आर्य, डॉ रमाशंकर श्रीवास्तव, डॉ अनिल दत्त मिश्र, प्रो. धर्मेंद्रनाथ अमन, बाबू रामसिंह लमगोड़ा, प्रो. साधुशरण, डॉ. लाल नारायण शर्मा, न्यायमूर्ति बी. एल. यादव, यू. सी. अग्रवाल, उदय कुमार 'राज़', जे. एन. पी. सिन्हा, गिरीशचन्द्र श्रीवास्तव, डॉ० राजनारायण राय, डॉ. नंदकिशोर नवल, डॉ. नवल किशोर प्रसाद श्रीवास्तव, डॉ. रामदेव प्रसाद, प्रो. दीनानाथ 'शरण', गीतकार नचिकेता, प्रो. श्यामनंदन शास्त्री, डॉ० महेंद्र कर्णावट, प्रो. रामकृष्ण प्रसाद सिन्हा, डॉ. शिवनारायण, ज्योतिशंकर चौबे, डॉ. रामशोभित प्रसाद सिंह, डॉ. सतीशराज पुष्करणा, परमानंद दोषी, प्रो० राम भगवान सिंह, डॉ. डी० आर० ब्रह्मचारी, डॉ. पी. एन. विद्यार्थी, डॉ. कलानाथ मिश्र, डॉ. सच्चिदानंद सिंह 'साथी', डॉ. शिववंश पाण्डेय, बलभद्र कल्याण, डॉ. राधाकृष्ण सिंह, नृपेन्द्र नाथ गुप्त, डॉ. एस. एफ. रब, डॉ. शाहिद जमील, राजभवन सिंह, युगल किशोर प्रसाद तथा मनु सिंह सरीखे कुछ ऐसे मनीषियों के संपर्क में मैं आया जिनकी प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से कलम हाथ में थामने की शक्ति मुझमें आयी। आज उसी का प्रतिफल है कि प्रो. राम बुझावन

बाबू जैसे वयोवृद्ध साहित्यकार ने मेरे जीवन और मेरी कृतियों पर एक पुस्तक लिख डाली। मैं उनके प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

वर्तमान युग भौतिकतावादी युग है। इसमें धन को जरूरत से ज्यादा महत्त्व दिया जा रहा है। पारस्परिक संबंध भी धन से आँके जाने लगे हैं। इस कारण लोग अपने आप में सिमटते चले जा रहे हैं। रिश्तों में भी द्रुत गति से बदलाव आ रहा है। समाज में एक-दूसरे को सहयोग करने की भावना लुप्त होती जा रही है। ऐसे वक्त में मैंने सामाजिक प्रतिबद्धता पर बल दिया है और अपने शेष जीवन को सार्वजनिक जीवन के रूप में बिताने का फैसला किया है। टी०एस० इलियट ने भी कहा था कि 'यदि हम एक-दूसरे की जिंदगी की मुश्किलें आसान नहीं करते तो फिर हम जीते ही किसलिए हैं।' इसी भावना से प्रेरित होते हुए इस जीवन में रहकर समाज और साहित्य की सेवा के साथ-साथ राजनीति की दिन-ब-दिन गिरती साख को बचाने और देशवासियों में लगातार राष्ट्रीयता की भावना में होते ह्रास के समय राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने का मैंने संकल्प ले रखा है। राष्ट्रीय विचार मंच और उसके मुखपत्र 'विचार दृष्टि' के माध्यम से इस राष्ट्रीय दायित्व के निर्वहन में मैं लगा हूँ। ऐसे वक्त जब मैंने वर्ष 2004-07 को अपने जीवन का पुस्तक वर्ष के रूप में मनाने का संकल्प लिया, प्रो. राम बुझावन बाबू ने यह पुस्तक लिखकर मेरे उस दायित्व बोध को गति प्रदान की है। मैं कृतज्ञ हूँ उनकी सहृदयता के लिए।

विद्वान् लेखक ने मेरे जीवन और सर्जन के दो भिन्न-भिन्न धरातलों को देखने का प्रयास किया है। मेरे व्यक्तित्व के पीछे मानवता और सामाजिकता की जो सोच है उसे उन्होंने बड़ी सजीवता से दर्शाया है। मेरे विचार से प्रोफेसर साहब स्वयं में एक निश्छल एवं निष्कपट व्यक्ति हैं और उन्हें अपनी इस भावना की छाया मुझमें भी दिख गयी है। मानव और मानवता की जो आस्था मेरे मन में है, उसकी यही डोर मुझे व्यक्ति और समाज तथा उसकी अच्छाइयों से बाँधे रही है। प्रोफेसर साहब ने इस बिंदु को बड़ी बारीकी से इस पुस्तक में उजागर किया है। इस प्रदाय को मैं कृतज्ञ और विनम्र भाव से स्वीकार करता हूँ। उन्होंने मेरे चरित्र को बड़े मनोयोग से रचा है। मेरे अनुभव, मेरे अनुशासन और मूल्यों को उन्होंने सर्वाधिक महत्त्व दिया है। मूल्य ही हमारे समक्ष हमारे व्यवहार और चरित्र को रूपाकार देते हैं। ये ऐसी नैतिक बाध्यताएँ प्रस्तुत करते हैं, जो यह निर्धारित करते हैं कि हमें किन परिस्थितियों में कैसे आचरण करना चाहिए। मूल्य किसी भी समाज की विशिष्टता की पहचान होता है। लेखक ने सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों को भी रचनात्मक स्तर पर चित्रित किया है। उन्होंने मेरी जीवनी को इस

रूप में दर्शाया है कि उससे हमारे जीवन के सारे यथार्थ साफ नजर आते हैं। दरअसल सही मायने में एक सच्चा साहित्यकार अपनी साहित्यिक दिशा अपने अनुरूप रच ही लेता है, चाहे वह साहित्य के किसी भी पड़ाव पर बैठा हो। वस्तुत: साहित्यकार वह दृष्टि रखता है, जो वर्तमान के लिए पूर्णत: तो नहीं, पर दशकों बाद सही सिद्ध हुआ करती है।

प्रो० राम बुझावन बाबू ने मेरी बायोग्राफी लिखी जरूर है, पर यह अधूरी रह जाएगी, क्योंकि मैं अभी भी समाज, साहित्य, राजनीति तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में सक्रिय हूँ और अभी मुझे बहुत कुछ करना बाकी है। इसलिए उन्हें एक बार संशोधन कर इसका नया संस्करण निकालना पड़ेगा।

जीवन संदर्भों को बहुत अच्छे ढंग से व्याख्यायित करती सामग्री, जो इस पुस्तक में संकलित की गयी है, पाठकों को कितना प्रभावित कर पाएगी यह तो समय ही बताएगा, पर इतना अवश्य है कि कुछ संवेदनशील सामाजिक कार्यकर्ताओं एवं साहित्यसेवियों को झकझोरने और उन्हें कुछ सोचने पर अवश्य मजबूर करेगी। इतनी अच्छी सुसंपादित पुस्तक का प्रकाशन हिंदी के लिए गौरव की बात है और पाठकों के लिए संस्कार, चेतना, युगधर्म और दायित्वबोध जगाने का उपक्रम भी। इसकी साहित्यिकता, भारतीयता, सामाजिकता और समर्पणशील निष्ठा स्वागत योग्य बन पड़ी है। लेखक के प्रति एक बार पुन: मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

प्रो. राम बुझावन बाबू के निर्देशन एवं मार्गदर्शन पर मेरे जीवन के विविध आयामों से संबंधित सामग्रियों को संकलित करने के बाद जिस ढंग से मेरे सहृदय मित्र डॉ. शाहिद जमील ने उसका संपादन किया, वह काबिले तारीफ है। संपादक ने बड़ी सहजता एवं अपनी वैचारिक उष्मा के साथ मेरे भीतर बैठकर इसे सजाने और सँवारने का सराहनीय कार्य किया है। मैं आभारी हूँ उनका उनके इस कृत्य के लिए। दरअसल तथ्यों का संपादन भी वैसा ही सृजन है जैसा किसी कृति की रचना। यह पुस्तक अब आपके हाथ में है, इसलिए यह आपको तय करना है कि मेरी जीवनदृष्टि को ध्वनित करने में लेखक व संपादक कहाँ तक सफल हो पाये हैं।

संपादक: 'विचार दृष्टि'
'दृष्टि', यू. 207,शकरपुर,
विकास मार्ग, दिल्ली-110 092.
दूरभाष: 011-22059410, 22530652

सिद्धेश्वर
'बसेरा', पुरन्दरपुर,
पटना-1
दूरभाष : 0612-2228519

अभिमत

# सामाजिक-वैचारिक सवालों पर सार्थक हस्तक्षेप के लिए प्रतिबद्ध

प्रस्तुत जीवनी में लेखक द्वारा सिद्धेश्वर जी अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा के लिए जितने सराहे गये हैं, उतने ही सामाजिक-वैचारिक सवालों पर सार्थक हस्तक्षेप के लिए भी। विद्वान् जीवनीकार की दृष्टि सिद्धेश्वर की उस द्वंद्वात्मकता पर केंद्रीत है, जिसकी गिरफ्त में भारतीय समाज-व्यवस्था उलझी है। लेखक ने इनके अबतक के जीवन के विभिन्न आयामों पर प्रकाश डालने के साथ-साथ आज के व्यापक एवं जटिल परिदृश्य में प्रतिरोध और संघर्ष की विविध आवाजों की भी पड़ताल की है। राष्ट्रीय विचार मंच तथा उसके मुख-पत्र 'विचार दृष्टि' के जरिये सामाजिक एवं वैचारिक धरातल पर इनके योगदान और प्रासंगिकता पर बड़े विवेकपूर्ण ढंग से विचार किया गया है।

सिद्धेश्वर जी की इस जीवनी में आम आदमी की झाँकी यथार्थ रूप में प्रस्तुत हुई है और व्यक्त हुए हैं इनके जीवन के अंतरंग चित्र, जिसे पढ़कर समाज के हरेक वर्ग के लोगों को आनंदातिरेक के क्षणों में यह अहसास होगा कि इस पुस्तक के रचनाकार उन्हीं की बोली बोल रहे हैं, सामाजिक प्रतिबद्धता का आलोक बिखेरकर उन्हें जीवन पथ पर आगे बढ़ने की प्रेरणा दे रहे हैं; क्योंकि सिद्धेश्वर जी ने साहित्य और समाज के लिए अपने अनमोल जीवन का प्रत्येक क्षण समर्पित कर एक उदाहरण प्रस्तुत किया है।

जरूरी नहीं कि लेखकीय स्थापनाओं के साथ सब की पूरी सहमति हो, पर इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि मौजूदा वैचारिक संकट की घड़ी में उत्तर से दक्षिण तथा पूरब से पश्चिम तक एक-से मन के लोगों को जोड़ने और देश व समाज के ज्वलंत मुद्दों पर मिल-बैठकर कुछ सोचने की दिशा में सिद्धेश्वर जी का प्रयास सर्वथा प्रशंसनीय है। हालांकि समय के जिस बिंदु पर हम सब खड़े हैं वहाँ लंबें संघर्षों के आसार नजर आते हैं। मानवीय एवं राष्ट्रीय गरिमा और उनको बचाये रखनेवाले संघर्ष के प्रति इनकी गहरी आस्था का परिचायक है इनकी सामाजिक प्रतिबद्धता एवं विविध कार्यकलापों में इनकी सक्रियता। आखिर तभी तो इनके द्वारा स्थापित राष्ट्रीय चेतना के वैचारिक मंच एवं वैचारिक पत्रिका से जुड़कर मैं क्या, कोई भी गर्व महसूस करेगा। मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ सिद्धेश्वर जी के साथ हैं।

16 जुलाई 2005
'श्रीनिकेतन'
लक्ष्मीनगर,पट्मपालस पोस्ट
तिरुवनंतपुरम्-695004 (केरल)

डॉ० एन० चंद्रशेखरन नायर
अध्यक्ष, केरल हिंदी अकादमी

# ऊर्जस्विता और बहुमुखी प्रतिबद्धता का प्रमाण

राजधानी पटना के सामाजिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक परिवेश में मैं जिन कुछ व्यक्तियों के जीवित संपर्क में आकर विशेष रूप से प्रभावित हुआ हूँ, उनमें प्रो. राम बुझावन रिंह जी एवं श्री सिद्धेश्वर जी अग्रगण्य हैं। दोनों सामाजिक चेतना के आलोकस्तंभ और संवेदनशीलता एवं सहृदयता के अक्षय आगार हैं। दोनों का व्यक्तित्व एक ही धरातल पर क्रियाशील होकर समाज और साहित्य को समर्पित है। जब मुझे ज्ञात हुआ कि आदरणीय प्रो. राम बुझावन बाबू ने सिद्धेश्वर जी पर ''सिद्धेश्वर : व्यक्तित्व और विचार'' नामक पुस्तक लिखी है, तो उसकी पांडुलिपि देखने का लोभ मैं संवरण नहीं कर सका। प्रो. राम बुझावन बाबू हिंदी के एक सिद्ध लेखक हैं और उनके गद्य का स्वाद उनके लेखन को विशिष्ट लालित्य प्रदान करता है। एक संवेदनशील और सामाजिक मूल्यों के प्रति समर्पित लेखक ही सिद्धेश्वर जी जैसे बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी, गतिशील और अनवरत सर्जनशील हस्ताक्षर को सर्जनात्मक परिणति दे सकता है। आखिर तभी तो कुशल लेखक द्वारा यह संभव हो सका है।

मैंने अत्यंत रुचिपूर्वक पाँच खण्डों में विभाजित यह पुस्तक पढ़ी है। यह पुस्तक सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व का दस्तावेज है। इनके पारदर्शी व्यक्तित्व की हर विशेषता लेखक की सूक्ष्म दृष्टि की अंतरंग होकर इस पुस्तक में अक्षरबद्ध हो गयी है। सिद्धेश्वर जी एक ही साथ अनेक धरातलों-समाज सेवा, साहित्य सेवा, पत्रकारिता, राजनीति इत्यादि पर क्रियाशील हैं, जो इनकी अजीब ऊर्जस्विता और बहुमुखी प्रतिबद्धता का प्रमाण है। लेखक सिद्धेश्वर जी के व्यक्ति का कोना-कोना झाँक गये हैं और इस पुस्तक की रचना कर पाठकों को सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व के अंतर्दर्शन के लिए उन्होंने हिंदी गद्य में एक वातायन निर्मित कर दिया है। हिंदी में सरल और स्वादिष्ट गद्य में इस तरह का जीवनी-साहित्य कम ही दृष्टिगत होता है। विद्वान लेखक ने सिद्धेश्वर जी जैसे समर्पित और प्रतिबद्ध व्यक्तित्व को राष्ट्रीय जन-मानस के सम्मुख प्रस्तुत कर इस संवेदनहीन और सिंथेटिक समाज के लिए प्रेरक बना दिया है। पुस्तक हिंदी जीवनी-साहित्य में उत्कृष्ट उपलब्धि है। आशा है, हिंदी जगत् इस पुस्तक का हृदय से स्वागत करेगा। मेरी शुभकामनाएँ हैं कि अक्षर पुरुष सिद्धेश्वर जी दीर्घजीवी होकर सामाजिक, साहित्यिक, राजनीतिक और राष्ट्रीय मूल्यों के प्रहरी बने रहें और अपनी संवेदना से हिंदी सर्जनात्मकता को समृद्ध करते रहें।

28 मई, 2005

'ऋतंवरा', ग्राम-खैरा
पत्रा०-पतसौरी खैरा
जिला-बाँका (बिहार)

प्रो. लखनलाल सिंह 'आरोही'
पूर्व हिंदी प्राध्यापक, तिलका
मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय

# इसमें वह सब कुछ जिसे लोग जानना चाहते हैं

इस संग्रह के लेखक प्रो. राम बुझावन सिंह तथा संपादक डॉ. शाहिद जमील हैं। यह संग्रह एक बहुत ही प्रेरक पुस्तक साबित होगी जिसमें वह सब कुछ है जिसे लोग जानना चाहते हैं। इस पुस्तक में सिद्धेश्वर जी के बहुआयामी व्यक्तित्व और सर्जनात्मक संसार की झाँकी है। इनका संघर्षमय जीवन लोकशिक्षण और लोकचेतना जाग्रत करने में व्यतीत हो रहा है। इन्होंने राष्ट्रीय विचार मंच और उसके मुखपत्र 'विचार दृष्टि' के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने का संकल्प लिया है। इतनी अच्छी सुसंपादित पुस्तक का प्रकाशन हिंदी के लिए गौरव की बात है।

सिद्धेश्वर जी समाज व देश के शीर्ष व्यक्तियों से जुड़े हैं जिनमें अधिकतर साहित्यकार, पत्रकार, चिंतक, विचारक, समाजसेवी तथा राजनेता रहे हैं। सच्चाई, सादगी, सहिष्णुता, कर्मठता और कर्मशीलता के गुणों से भरपूर सिद्धेश्वर जी सदैव कथनी और करनी में एकरूपता पर बल देते हैं। अभी तक इनका जीवन समाजसेवा, साहित्य एवं पत्रकारिता में अर्पित है। ये समकालीन समाज के सजग साहित्यकार हैं। समाजोपयोगी, जीवनपरक, राजनीतिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक सभी तरह के आलेख इन्होंने रचे हैं। स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के पश्चात् जब इन्होंने राजनीति को अपनाया तो उसे भी आदर्श की तरह लिया है। इनके लिए कर्म ही महान् धर्म है। अगर इनके चरित्र में कुछ दोष नजर आये तो वह भी इनकी महानता का ही द्योतक है। राजा राधिका रमण प्रसाद सिन्हा के एक शेर से इसकी संपुष्टि होती है–

पहलू में गुल के खाद भी है बेसबब नहीं।
यह हुस्न तौलने का है काँटा लगा हुआ।।

प्रो० राम बुझावन बाबू ने एक सच्चे ईमानदार लेखक की तरह अपनी रूह की आवाज को इस पुस्तक में शब्दबद्ध कर सिद्धेश्वर जी के साथ न्याय किया है। उन्होंने दर्पण की तरह इनके जीवन को प्रतिबिंबित किया है और दीपक की तरह इनके व्यक्तित्त्व से सीख लेने का मार्ग भी दिखाया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि सिद्धेश्वर जी ने सामाजिक प्रतिबद्धता की जो आधारशिला रखी है उससे न केवल समाज के लोगों को प्रेरणा मिलती रहेगी, बल्कि जनता के हृदय में इनके व्यक्तित्त्व का तेज सदैव जगमगाता रहेगा।

ग्राम+पोस्ट-सोनमई,
जिला-पटना( बिहार )

रामकृष्ण मेहता
पूर्व प्राचार्य

# वैचारिक क्रांति की दिशा में बढ़ते कदम

वर्तमान परिवेश में यह देखा जा रहा है कि समाज के अधिकांश समर्थ लोग छोटी-छोटी इच्छाओं को पूरा करने के चक्कर में बड़ी इच्छाओं से किनारा कर लेते हैं और धरी-की-धरी रह जाती हैं पहाड़ तोड़ने की इच्छाएँ, जिन्हें सपने भीतर से कुतरते हैं। सिद्धेश्वर जी न तो कभी छोटी-छोटी इच्छाओं के चक्कर में पड़े और न ही इन्होंने समय का इंतजार किया। ये हमेशा अपने पथ पर बढ़ते चले निर्दिष्ट लक्ष्य की ओर। श्री सिद्धेश्वर जी एक ऐसे निष्ठावान व्यक्ति हैं, जो अपने बौद्धिक कार्यकलापों को मिशनरि उत्साह एवं पौरुष के साथ अनुसरण करते हैं।

देश के विभिन्न क्षेत्रों में भ्रमण कर नागरिकों को उनके कर्त्तव्य और सामर्थ्य की याद दिलाते हुए श्री सिद्धेश्वर उन्हें संघर्ष की प्रेरणा देते हैं। इन्होंने एक ऐसे भारतीय जन-समुदाय की कल्पना की है, जो स्वतंत्र हो, सुखी-संपन्न हो और सभी प्रकार के शोषणों से मुक्त हो। राष्ट्रीय विचार मंच के कार्यकलापों के जरिये ये रूढ़ियों, शोषणों और वैषम्यों का विरोध करते हैं।

जाने-माने लेखक प्रो. राम बुझावन बाबू ने इनके इस पक्ष को बड़े मार्मिक और रोचक ढंग से शब्दबद्ध किया है इस जीवनी में। इनकी संवेदना की गहराई ही इन्हें विशिष्ट बनाती है। मैं प्रोफेसर साहब की कलम को दाद देता हूँ और उन्हें हार्दिक बधाई। जीवनी लिखना सरल नहीं, कठिन कार्य है। जनमानस का चहेता, कुछ नया कर गुजरने की बेचैनी रखनेवाला, जो भीतर से व्यथित और बाहर से सजीव नजर आता है सिद्धेश्वर जी पर कुछ लिखना प्रो. रामबुझावन बाबू सरीखे लोगों के ही बस की बात थी। वैचारिक क्रांति की दिशा में प्रयासरत निर्भीक, स्पष्टवक्ता, आत्मसम्मानी और राष्ट्रीय एवं जन चेतना जाग्रत करने के पथ पर अग्रसर सिद्धेश्वर जी के कदम रुकें नहीं, यही मेरी मंगलकामना है।

16 जुलाई, 2005

प्रधान संपादक
इंडियन जरनल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन
आई. आई. पी. ए., इंद्रप्रस्थ एस्टेट, रिंग रोड
नई दिल्ली-2

यू. सी. अग्रवाल, भा०प्र०से०
पूर्व मुख्य सर्तकता आयुक्त
भारत सरकार

# भावप्रवण जन के लिए जीवंत प्रेरणा के स्रोत

किसी व्यक्ति के बारे में लिखना बहुत मुश्किल होता है, अपने बारे में लिखने से भी ज्यादा त्रासदायक, किंतु सिद्धेश्वर जी के बारे में लिखते समय लेखक ने ऐसी ईमानदार तस्वीर खींची है जिसे नकारना किसी के बूते की बात नहीं है। यह इस जीवनी की विशेषता है कि उन्होंने आग को आग और पानी को पानी महसूस कर पूरे डूबकर लिखा है। सचमुच सिद्धेश्वर जी इधर हाल के वर्षों में चिंतनपरक गद्य काफी लिख रहे हैं। इनकी अधिकांश रचनाओं में सामाजिक चिंतन के बीच गहरा तालमेल दिखता है। आज के भौतिकतावादी-समझौतावादी युग में सद्धर्म के सान पर जब विरले ही लोग चल पाते हैं, सिद्धेश्वर जी ने साधन संपन्नता के कीर्तिमान भले ही नहीं स्थापित किये हों, किंतु मूल्यों, सिद्धांतों और मर्यादाओं में आस्था रखनेवाले भावप्रवण आदर्शवादी जन के लिए ये आज जीवंत प्रेरणा के स्रोत बने हुए हैं। इनके गरिमाशाली व्यक्तित्व ने निस्संदेह इनके समानधर्मी साथियों, सहकर्मियों तथा सान्निध्य प्राप्त करनेवाले शुभेच्छुओं को प्रभावित-अनुप्राणित किया है।

लेखक की यह कुशलता ही है कि उनका लेखन कहीं भी सत्य से परे और अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं दिखता है। इसकी तस्वीरें पाठक की सहायता करती हैं जो इसकी खासियत है। सामयिक समाज, राजनीति, साहित्य, संस्कृति की विसंगतियों व विद्रूपताओं पर प्रहार करने और सामाजिक समरसता के प्रचार-प्रसार के लिए इनके द्वारा संचालित राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संस्था 'राष्ट्रीय विचार मंच' तथा इनके द्वारा संपादित उसके मुखपत्र 'विचार दृष्टि' के माध्यम से एकांकी वार्धक्य में दायित्वभार तथा सुदृढ़ अर्थिक संबल के अभाव में व्यवधान-व्याघातों से जूझते हुए भी नियमित रूप से देश के अनेक क्षेत्रों सहित दक्षिण भारत के चारों राज्यों के सुधी पाठकों एवं लेखकों को एक स्वस्थ मानसिक खुराक मिल रही है। संकटों-चुनौतियों का सामना करते हुए प्रतिकूल परिस्थितियों के आगे झुकने अथवा उनसे समझौता करने के लिए मंच के संचालक तथा पत्रिका के संपादक के रूप में सिद्धेश्वर जी कतई तैयार नहीं हैं। 'न दैन्यं न पलायनम्' के जीवन-मंत्र को पाथेय मान अपने कर्त्तव्य का निर्वहन कर रहे सिद्धेश्वर जी को हमारी शुभकामनाएँ और लेखक को साधुवाद।

डॉ० मधु धवन
हिंदी विभागाध्यक्ष
संत मॉरिस स्ट्रेला कॉलेज
चेन्नई

के-3, अन्नानगर (ईस्ट)
चेन्नई

# सिद्धेश्वर : जो भाग्यप्रलेख स्वयं लिखते हैं

भारतीय और पाश्चात्य, दोनों ही चिंतकों-विचारकों की दृष्टि में मनुष्य का स्वरूप श्रेष्ठ बताया गया है। बुद्धि और बल के क्षेत्र में उसकी तुलना न तो और किसी से की जा सकती है और न ज्ञान और कर्म की भूमि पर। साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकारों से जुड़े प्रो० राम बुझावन सिंह जी इस पुस्तक में एक ऐसे व्यक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हैं, जो साहसी और पराक्रमी तो है ही तेजस्वी और परिश्रमी भी। प्रो० सिंह ने भाई सिद्धेश्वर जी की इच्छाशक्ति, संकल्प, उपलब्धि और कार्यशक्ति पर जो कुछ कहा है वह इनकी निष्ठा और कर्मठता का प्रतीक है।

पद्य और गद्य के पुष्कल प्रसूनों को सिद्धेश्वर जी ने हिंदी के चरणों में चढ़ाकर अपनी राष्ट्रभाषा-भक्ति का परिचय तो दिया ही है, अपने साहित्य-धर्म का निर्वाह करके उदीयमान रचनाकारों को प्रेरणा भी दी है।

सुख की गंगा यूँ ही नहीं उतरती उसके लिए व्यक्ति भागीरथ साधना करता है। वह अपना भाग्य-प्रलेख किसी से लिखवाकर नहीं लाता, वरन् स्वयं लिखता है। सिद्धेश्वर जी भी एक ऐसे ही व्यक्ति हैं, जो अपना भाग्य-प्रलेख स्वयं लिखते हैं।

इनके व्यक्तित्व और विचार पर लिखी गयी प्रस्तुत पुस्तक कर्म-धर्म का संदेश देती है। कर्म मनुष्य-मात्र का स्वाभाविक धर्म है। इस किताब के नायक कर्मवादी हैं, भाग्यवादी नहीं। ये मनुष्य के पुरुषार्थ के विश्वासी हैं, उसके भाग्योदय के अभिलाषी नहीं। ये व्यक्ति की कर्मठता और चिरंतन संघर्षशीलता के पक्षधर हैं।

रचनाकार के हृदय में सिद्धेश्वर जी के अनल और बल के प्रति, इनके प्रेय और श्रेय के प्रति अपार आस्था और आदर का भाव है। मैं भी इनके समानता के भाव तथा मानवीय मूल्य-मर्यादाओं के प्रति जागरूकता का हिमायती हूँ। ये देश व समाज के प्रति आसक्त हो सतत् कर्मशील बने रहें, यही हमारी मंगलकामना है।

2 अक्टूबर 2005
गाँधी जयंती
बी-140, हरमू हाउसिंग कॉलोनी,
राँची-834072, झारखंड

डॉ० पी०एन०विद्यार्थी
पूर्व संयुक्त सचिव, झारखंड
निदेशक, राहुल स्टडी सर्किल
राँची

# व्यक्तित्व समाजोन्मुख और आत्मोन्मुख

जीवन के अनुभवों, संबंधों, घटनाओं और विचार अथवा सृजनधर्मिता को साधना के फलक पर सहजता से उतारना उतना ही कठिन कार्य है जितना चेतना के स्तर पर संबंधों को जीना और उसे निर्वैयक्तिक होकर लिखना। यह कार्य तब और गुरुत्तर हो जाता है जब इन संबंधों पर जीवनी लिखनी हो। सामाजिक सरोकारों से जुड़े प्रो० राम बुझावन सिंह जी ने इस पुस्तक में सिद्धेश्वर जी की केवल कोरी जीवनी नहीं, बल्कि उनके व्यक्तित्व, कर्तृत्व एवं जीवन शैली पर भी जीवंत रूपरेखा प्रस्तुत की है। इसकी भाषा, शैली, प्रस्तुतीकरण और भावकथ्य इतने सहज हैं कि पढ़ते वक्त मन में उल्लास, रोमांच और रोचकता अंत तक पाठक में बनी रहती है। जिस शिल्प, जिस कथन और जिस गठन में यह जीवनी लिखी गयी है उसकी सराहना किये बिना नहीं रहा जा सकता। प्राफेसर साहब ने भाषा को जिंदगी दी है। भाषा के साथ यह सलूक जिंदगी के साथ सलूक जैसा लगता है। प्रो० साहब ने इनकी विनम्रता और कार्य चातुर्य को भी बगैर आग्रह-दुराग्रह के लिखा है। इसी तरह इनके पारदर्शी व्यक्तित्व और साहित्य सृजन को इन्होंने बेबाक और निष्पक्ष होकर लिखने का प्रयास किया है। हो सकता है इसमें मनुष्यजनित दुर्बलताएँ हों, लेकिन सृजन का आरंभ कहीं भी दुराव-छिपाव या मुखौटेपरक नहीं लगता। इस जीवनी में लेखक ने सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के समाजधर्मी फलकों को ही नहीं दर्शाया है, बल्कि इनकी नवयुगीन राष्ट्र प्रवृत्तियों को भी अपने लेखन का बिंदु बनाया है। इस दृष्टि से देखा जाय, तो यह लेखक की गहरी दृष्टि की ही परख है।

सच तो यह है कि राष्ट्र-चेतना को प्रबल स्वर देनेवाले सिद्धेश्वर जी का परिवर्तनशील व्यक्तित्व गतिमानता और जीवंतता का पर्याय है। इस सत्य से युक्त जीवन को ये पूरी शिद्दत से जी रहे हैं। तभी तो इनका लेखन और संपादकीय सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक विद्रूपताओं को बड़ी बेबाकी से उजागर करता है। मशाल को खुद जलना पड़ता है, तभी दूसरों को उससे प्रकाश मिलता है। तात्पर्य यह कि भाई सिद्धेश्वर जी की लोभ-लाभ से मुक्त समाज एवं साहित्य-साधना ही हम सभी के लिये मशाल बनी है, क्योंकि केवल बौद्धिक व्यायाम या चमत्कार से उपजी इनकी साधना नहीं, बल्कि इनके कार्यकलाप आम आदमी को समाजोन्मुख बनाते हैं और आत्मोन्मुख

भी। आज हम जैसे समय और बौद्धिक वातावरण में जी रहे हैं उसमें एक तरफ जहाँ सभ्यता-समीक्षा की प्रेरणा देनेवाली समाजोन्मुखता कम होती जा रही है, तो वहीं दूसरी तरफ आत्मविश्लेषण और आत्मालोचन की भावना पैदा करनेवाली आत्मोन्मुखता भी दुर्लभ होती जा रही है। ऐसे समय में सिद्धेश्वर जी के नेतृत्व में राष्ट्रीय विचार मंच और इनके संपादकत्व में 'विचार दृष्टि' पत्रिका सामाजिकता और राष्ट्रीयता के जागरण के अक्षय स्रोत हैं जिसके माध्यम से केवल हम राजस्थान के प्रबुद्धजन ही नहीं, वरन् भारत के प्रत्येक क्षेत्र के बुद्धिजीवियों एवं सजग नागरिकों को भविष्य की राह तलाशने में सुविधा हो रही है।

सिद्धेश्वर जी को आज मात्र पत्रकार व सामाजिक कार्यकर्ता ही नहीं, भरपूर संभावनाओंवाला साहित्यकार बताना युक्तिसंगत होगा। इनकी क्षमता पर मुझे काफी भरोसा है। ये लंबी राह के राही हैं। इनमें सीखने, समाज को कुछ देने तथा समाज की इच्छा के मुताबिक सामाजिक कार्य करने और साहित्य की सेवा की ललक है। इनके भीतर राष्ट्र के प्रति एक भाव छिपा है। जरूरत है उसे हमलोगों के द्वारा बाहर निकालने की। कामयाबी का कोई 'शार्टकट' नहीं होता। यह सिद्धेश्वर जी से अधिक कौन समझ सकता है। इन्हें कई परीक्षाओं से गुजरना पड़ा है। इन्होंने अपनी ऊर्जा को सदैव बेहतर कार्यों में लगाया है। बेहद सरल, सज्जन तथा ईमानदार व्यक्तित्व के धनी सिद्धेश्वर ने अबतक अपने कार्यकाल के दौरान समाज, साहित्य और पत्रकारिता के क्षेत्र में काफी काम किया है।

इसमें कतई संदेह नहीं कि लेखक प्रो० राम बुझावन सिंह जी ने इस पुस्तक की रचना कर भारतीय समाज और साहित्य में समाजोन्मुखता और आत्मोन्मुखता की प्रक्रिया को तेज करने एवं मजबूत बनाने में सहयोग किया है। इस जीवनी से हम जैसे पाठक तत्काल आत्मीयता अनुभव करते हैं और इसके कथ्य को अपना कथ्य मानकर पढ़ते और आत्मसात करते हैं। विश्वास है दिग्भ्रमित और विखराव की स्थिति में सिद्धेश्वर जी के जीवन से जुड़ी यह कृति आज भी प्रेरणा स्रोत है और कल भी रहेगी। लेखक प्रो० राम बुझावन बाबू को मेरी हार्दिक बधाई।

'राजहंस'
23, चन्द्रपथ, सुरजनगर
(पश्चिम), जयपुर-6
राजस्थान

राज चतुर्वेदी
अध्यक्षा, राष्ट्रीय विचार मंच
राजस्थान इकाई, जयपुर

# रचनात्मक जीवन संघर्ष, चिंतन और सिद्धि की अभिव्यक्ति

जीवनीकार प्रो० राम बुझावन सिंह जी ने पिछले तीन दशक से भी अधिक अवधि तक अपने सान्निध्य में रहे सिद्धेश्वर जी की मनोदशा का अध्ययन कर औपचारिक से लेकर अपनत्व तक की संवेदना को बड़ी खूबसूरती से व्यक्त किया है इस जीवनी में। यह जीवनी सचमुच जीवन के उलझे पहलुओं से जूझने की प्रेरणा देती है। संवेदना की सघनता लिये सामाजिक एवं साहित्यिक दायरे में रची उत्कृष्ट जीवनियों में इसे रखा जा सकता है जिसमें इसका नायक नहीं, उसका व्यक्तित्व और विचार बोलता है, जिसमें जीवनीकार ठहरे हुये सामाजिक यथार्थ की अपेक्षा गतिशील सामाजिक सच का निरूपण करता है। वस्तुत: यह रचनात्मक जीवन संघर्ष, चिंतन और सिद्धि की अदम्य अभिव्यक्ति है।

इस पुस्तक से इसकी पुष्टि होती है कि जीवनी भी साहित्य की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण विधा है। कहानी, कविता, निबंध व संस्मरण आदि से कम नहीं है यह जीवनी, क्योंकि इसमें जीवनीकार की मौलिकता झलकती है और यह व्यक्तिगत विद्वेष, कुंठा एवं पूर्वाग्रह से मुक्त है। उदार व गहरी सोचवाले विनम्र एवं वरिष्ठ ख्यातिनाम साहित्यकार प्रो० राम बुझावन सिंह जी का जो चिंतन है वह उनका अपना है, जो लिखा बस उन्होंने स्पष्ट लिखा, यह मेरी मान्यता है। पाठकों व आलोचकों का निर्णय मेरी मान्यता से इतर होगा, ऐसा मुझे नहीं लगता।

वैसे तो इस जीवनी को आद्योपांत पूरी रुचि से मैंने पढ़ी, किंतु सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व और रचनाधर्मिता में उनके विचार दोनों खंड मैंने बड़ी उत्सुकता से पढ़े, मर्मस्पर्शी और विचारोत्तेजक जानकारी मिली। ऐसी विचारपूर्ण विविध जानकारी देने के लिये लेखक को हार्दिक बधाई। डॉ० शाहिद जमील के संपादकीय अपनी बात कहने में सफल रहे और बहुत दमखम के साथ सारे तथ्यों व कथ्यों का संपादन कर उन्होंने इसे सरस एवं पठनीय बनाया, इसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं। लेखक के द्वारा सिद्धेश्वर जी के जीवन के विभिन्न आयामों की अन्वेषणात्मक महत्त्वपूर्ण जानकारी को संकलित करने तथा उसे यथार्थ के धरातल पर अभिव्यक्त करने में संपादक का योगदान सराहनीय रहा है और इससे उनकी सृजनमयी छवि दिखलाई पड़ती है।

सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व और विचार के यथार्थ को सूक्ष्म रूप में प्रस्तुत करने में यह पुस्तक पूर्ण रूप से सफल रही है। साज-सज्जा में ऐसी दृष्टि संपन्न किताब का साहित्य-जगत में सही मूल्यांकन होगा, इसी आशा और विश्वास के साथ लेखक को साधुवाद और इस पुस्तक के नायक को दीर्घायु होने की मंगलकामना।

'गीतिका', रोड नं०-2
आदित्य नगर, पत्रा०-केसरीनगर
पटना-800024

प्रो० साधुशरण
पूर्व विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान
डॉ० भीमराव अंबेडकर बिहार वि०वि०

# सिद्धेश्वर : एक सही दिशा में सोचनेवाला आदमी

'विचार दृष्टि' के संपादक श्री सिद्धेश्वर ने लोगों को दिखा दिया कि अगर दिल में जज्बा हो तो पत्रिका की जिम्मेदारी के साथ ही एक राष्ट्रीय स्तर के संगठन के लिये काफी कुछ किया जा सकता है। पत्रिका के साथ-साथ राष्ट्रीय विचार मंच की जिम्मेदारियों को इन्होंने बखूबी निभाया है। दोहरी जिम्मेदारियों को सफलता से निभाने के लिये जरूरी है कि संबंधित व्यक्ति उसके लिये वक्त निकाले और त्याग की भावना से युक्त हो।

मंच की बिहार इकाई के महासचिव से राष्ट्रीय महासचिव तक का सफर तय करनेवाले सिद्धेश्वर जी ने अपने अनुभवों एवं परिश्रम से यह साबित कर दिया है कि यदि आत्मविश्वास और दिल में तमन्ना हो तो आत्मसम्मान के साथ अपने कर्त्तव्यों और दायित्वों का सही तरीके से निर्वहन करके समाज पर अपनी गहरी छाप छोड़ी जा सकती है। सिद्धेश्वर जी पूरे आत्मविश्वास के साथ बिना विचलित हुये तनावमुक्त होकर एक सफल संगठनकर्त्ता और एक निश्पक्ष निर्भीक पत्रकार के दायित्व का निर्वाह कर रहे हैं। मंच तथा पत्रिका की छवि को संघर्षशील, विश्वसनीय और समाजोन्मुखी बनाने की इनकी कोशिश निरंतर जारी है।

सिद्धेश्वर जी अधिकाधिक भौतिक सुख-सुविधाओं एवं साधनों को येन-केन-प्रकारेण हथिया लेने में अपना जीवन सफल होने का भ्रम कतई नहीं पालते, बल्कि अपनी क्षमता और सामर्थ्य के अनुसार सामाजिक तथा साहित्यिक कार्यकलापों को गति प्रदान कर अपने जीवन को सफल करना चाहते हैं। प्रो० राम बुझावन सिंह ने इनके व्यक्तित्व और विचार को आम पाठकों एवं प्रबुद्धजनों के समक्ष प्रस्तुत कर एक सराहनीय कार्य किया है जिसके लिये वे बधाई के पात्र हैं।

ऐसे समय में जब साहित्य के सठियाए हुए दिग्गज अपने-अपने सिद्धांतों पर ही सवारियाँ गाँठ रहे हैं, युवा पीढ़ी एकांतिक संलापों को तरजीह देती विचारहीनता की सीढ़ियाँ चढ़ रही है, प्रो. राम बुझावन सिंह जी की कलम द्वारा सिद्धेश्वर जी के जीवन की मुठभेड़ों से उपजा आलोक काफी आश्वस्त करता है।

सोचनेवाला आदमी सत्ता के लिए सदैव खतरनाक होता है लेकिन सब कुछ आदमी की सोच पर नहीं, बल्कि उसकी छवि पर निर्भर करता है। विद्वान लेखक प्रो. राम बुझावन सिंह जी ने इस पुस्तक में सिद्धेश्वर जी को एक सही दिशा में सोचनेवाला आदमी करार देते हुए संपूर्ण समाज के समक्ष उनकी एक अच्छी छवि को प्रस्तुत किया है, जिससे नि:संदेह भावी पीढ़ी को प्रेरणा मिलेगी। मेरी शुभकामनाएँ इनके साथ हैं।

डॉ० ऋषभदेव शर्मा
रीडर, शिक्षा एवं शोध

दक्षिण हिंदी प्रचार सभा
स्टेशन रोड, नामपल्ली, हैदराबाद

# 'कर्तृत्व-शिला निर्मित विचार-सेतु'

मैं श्रद्धेय प्रो. राम बुझावन बाबू द्वारा लिखित 'सिद्धेश्वर: व्यक्तित्व और विचार' के बारे में कुछ कहूँ-लिखूँ तो यह 'छोटा मुँह और बड़ी बात' होगी। किंतु प्रकाशन के लिए पाण्डुलिपि का शब्द-संयोजन देखने का दायित्व जब मुझ पर सौंपा गया तो मुझे रामायण काल में बानर-भालुओं द्वारा रामेश्वरम् में सेतु-बंध-उद्योग की घटना याद आयी। बंदर-भालू बड़े-बड़े शिला-खंड नल-नील के हाथों में पकड़ा रहे थे। एक छोटी गिलहरी अपने मुँह में एक छोटी कंकड़ी दबाए सेतु-निर्माण में सहयोग कर रही थी। राम की नजर उस पर पड़ी और उन्होंने उसे हथेली पर उठा उसकी पीठ पर अपनी उँगलियाँ फेरी। राम की सात्त्विकता उसकी पीठ पर उतर आयी और जनश्रुति कहती है कि गिलहरी की पीठ पर उजली धारियाँ राम की उँगलियों के निशान हैं।

मैं उत्साहित हुआ, और गिलहरी की नाईं कुछ करने की सोची। लिखना क्या था, पाण्डुलिपि के आलोक में शब्द-संयोजन की प्रेस प्रति की अशुद्धियों के निराकरण के क्रम में मेरे मन में जो प्रतिक्रिया हुई, उसे लिपिबद्ध करना मैंने उचित समझा।

मेरी दृष्टि में 'सिद्धेश्वर: व्यक्तित्व और विचार' पुस्तक विचार-निर्मित सेतु है, जिसके निर्माण में सिद्धेश्वर जी के कार्य-कलापों की शिलाएँ प्रयुक्त हुई हैं। नल-नील के समेकित रूप वयोवृद्ध साहित्यकार पूज्य रामबुझावन बाबू द्वारा इस महान सेतु का निर्माण हुआ है। सद्विचारों से समाज में सौहार्द पनपता है, भाईचारा विकसित होता है, मानवता की राह प्रशस्त होती है। सिद्धेश्वर जी के महत् व्यक्तित्व और सद्विचारों का यह सेतु समस्याओं के सागर से पार उतरने में मददगार होगा, यह मेरा दृढ़ विश्वास है। सिद्धेश्वर जी सामाजिक एकता और आपसी सौहार्द के आग्रही हैं। उनकी सोच मानवतावादी है। समाज-सेवा इनका व्रत है। साहित्य-साधक सिद्धेश्वर जी में न केवल सांगठनिक क्षमता है, अपितु उनके मस्तिष्क में शुभ विचार पलते हैं, हृदय में मानवतावादी भावों की गंगा प्रवहमान है। उनका व्यक्तित्व बहुआयामी तथा इच्छा-ज्ञान और क्रिया का संगम है। उनका उद्येश्य लोगों को जागरूक बनाना, राजनीतिक-वैचारिक चेतना जगाना रहा है। राजनीति में वे इसी रूप में क्रियाशील हैं। वैचारिक क्रांति के पक्षधर सिद्धेश्वर जी का मानना है कि विचार से ही सही हृदय-परिवर्तन संभव है। भौतिकवादी गलत सोच से निजात पाने का एकमात्र उपाय है मन-मस्तिष्क में शुभ-विचारों का उदित होना। सिद्धेश्वर जी प्राचीन ऋषियों की तरह 'वसुधैव कुटुंबकम्' के आग्रही हैं। इनका ऋषि-कल्प जीवन अनुकरणीय -स्पृहनीय है।

साहित्य को विचार-परिष्कार का इन्होंने अस्त्र बनाया है। इनकी

लेखनी अबाध चल रही है। 'विचार दृष्टि' इनके विचारों की संवाहिका है।

उनके जीवन के विविध आयामों को कुशल शब्द-शिल्पी राम बुझावन बाबू ने दक्षतापूर्वक उकेरा है। 'समर्पण' में विद्वान् जीवनीकार ने मानों सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व का निचोड़ प्रस्तुत किया है। 'समर्पण' से लेकर अंतिम पृष्ठ तक जीवनी रोचक और पठनीय बन पड़ी है। यह जीवनीकार के कौशल का परिचायक तो है ही, जीवनी के नायक के क्रियाकलाप भी ऐसे हैं जिससे प्रस्तुति काव्यात्मक हो गयी है।

'साकेत' के रचनाकार गुप्त जी ने राम के बारे में लिखा है-

**'राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।**
**कोई कवि बन जाय सहज संभाव्य है॥'**

काफी हद तक यह उक्ति जीवनीकार और जीवनी के नायक पर लागू हुई प्रतीत होती है।

पाँच खंडों में प्रस्तुत यह सारगर्भित जीवनी न केवल सिद्धेश्वर जी के अतीत और वर्तमान का जीवंत आख्यान है, अपितु यह भविष्य की पीठिका के रूप में प्रेरक और पूर्ण है। सिद्धेश्वर जी 'अपने दो शब्द' में भले ही यह मानें कि लेखक को इस पुस्तक के बाद आगे के क्रिया-कलापों का विवरण नयी पुस्तक में प्रस्तुत करना होगा, मगर मैं ऐसा नहीं मानता। वर्डस्वर्थ ने कहा है-'Child is the father of a man', और पुन: हिंदी में भी एक प्रसिद्ध उक्ति गढ़ी गई 'होनहार बिरवान के होत चिकने पात', साथ ही 'पूत के पाँव पालने में ही देखे जाते हैं', जैसी उक्ति भी हमारे वाङ्मय में उपलब्ध है। अँग्रेजी में भी एक ऐसी ही कहावत है-'Morning shows the day.'

उक्त आलोक में, सिद्धेश्वर जी का अब तक का जीवन और उनके कार्यकलाप काफी हैं, उनके भविष्य की रूप-रेखा समझने के लिए।

जीवनी के प्रथम खंड में साक्षात्कार-व्यक्तिगत, सामाजिक, साहित्यिक और विविध प्रश्नोत्तरों द्वारा सिद्धेश्वर जी की विविध विषयों पर उनकी सार्थक सोच पर यथेष्ट प्रकाश पड़ा है।

खंड-दो में उनके बहुआयामी व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ा है। यह खंड प्रस्तुत जीवनी का प्राण है। सत्रह उपशीर्षकों में उनके पूरे व्यक्तित्व पर जीवनीकार ने प्रकाश डाला है। मैंने प्रस्तुत जीवनी को विचारों का सेतु यों ही नहीं कहा है। उत्तर-दक्षिण को जोड़ने का काम सिद्धेश्वर जी ने किया है। सिद्धेश्वर जी के प्रयास से भावात्मक और भाषाई एकता कायम हो पाई है। उनकी अनुशासन-प्रियता, आशावादी-मानतावादी दृष्टिकोण, कर्म-निष्ठा, सांस्कृतिक चेतना, राष्ट्रप्रेम, सामाजिकता, सकारात्मक सोच, विश्वबंधुत्व के प्रति आग्रह जैसे सार्थक तत्त्वों से उनका व्यक्तित्व निर्मित हुआ है। मेरी दृष्टि में सिद्धेश्वर जी एक निष्काम कर्मयोगी हैं। जीवनीकार ने भी उन्हें इसी रूप में प्रस्तुत किया है।

खंड तीन में सिद्धेश्वर जी की रचना-धार्मिता पर प्रकाश डाला गया है और उनकी छवि समर्पित पत्रकार-साहित्यकार के रूप में उभर पाई है। साहित्य को सिद्धेश्वर भैया ने सेतु बना दिया। किंतु मैं साहित्यकार से अधिक उन्हें एक प्रबुद्ध विचारक मानता हूँ। खंड चार में बोलती तस्वीरें संग्रहित हैं। इस खंड में उनके राजनीतिक, सामाजिक, सांगठनिक गतिविधियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। खंड पाँच में सविस्तार उनके सांगठनिक क्रिया-कलापों को दर्शाया गया है। इस प्रकार यह समेकित, संश्लिष्ट और पूर्ण जीवनी है। प्रोफेसर साहब ने अपना हृदय उड़ेल दिया है जीवनी प्रस्तुत करने में। सिद्धेश्वर जी से लिये गये साक्षात्कार में उनके उर्वर मस्तिष्क की झाँकी तो मिलती ही है, सिद्धेश्वर जी के उत्तर में उनकी मानवतावादी सोच, उनकी उदार-उदात्त दृष्टि का बोध भी होता है। संस्कृति के निर्माण में ऐसे ही कर्त्तव्यशील पुरुष-नारियों का योगदान हुआ, जिसके चलते विलक्षण संस्कृति का निर्माण और विकास अपने देश में हो पाया। उस दृष्टि से सिद्धेश्वर जी संस्कृति-पुरुष हैं, और जीवनीकार रामबुझावन बाबू अक्षर-पुरुष।

सिद्धेश्वर जी निष्पृह सामाजिक कार्यकर्ता के साथ-साथ पत्रकारिता और साहित्य से जुड़े हैं, उनके जीवन के हर पहलू को जीवनीकार ने स्पष्टता से अंकित कर अपने लेखकीय दायित्व का सफल निर्वहन किया है। साहित्यकार पर विशेष दायित्व होता है, आदर्श चरित्र प्रस्तुत कर लोक जीवन में मर्यादा स्थापित करना। श्रद्धेय रामबुझावन बाबू ने अपना यह दायित्व बखूबी निभाया है। संपादक डॉ. शाहिद जमील की संपादकीय टिप्पणी सोने में सुहागा है। उनकी दक्ष संपादक कला से जीवनी में चार चाँद लग गये हैं। दादा गुरु सहित संपादक के इस महनीय प्रयास और प्रस्तुति को मैं सादर नमन करता हूँ, और अपनी विनीत श्रद्धा दादा गुरु के श्रीचरणों में निवेदित करता हूँ।

जीवनीकार ने सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व, कृतित्व और विचारों का अक्षरों से जो ताजमहल निर्मित किया, वह वर्तमान और आगे आनेवाली पीढ़ियों के लिए आकर्षण और प्रेरणा का केंद्र बना रहेगा। ताजप्रेम की निशानी है, सिद्धेश्वर जी की यह जीवनी उनके समाज-राष्ट्र और मानवता प्रेम की सच्ची दास्तान।

बहुत लिखने की आवश्यकता ही नहीं है। यों भी इस कृति की भूमिका, शुभाशंसा, पुरोवाक, संपादकीय, अभिमत में देशभर के जानेमाने मुर्धन्य विद्वानों द्वारा बहुत सारी चीजें प्रस्तुत की गयी हैं। इस कृति की तरह जीवनीकार और मेरे अग्रज सिद्धेश्वर जी दीर्घजीवी हों, इसी मंगल कामना के साथ।

बिहारी पथ,
न्यू विग्रहपुर, पटना-1

युगल किशोर प्रसाद
'साधना-कुटीर'
मुरगावाँ, नालंदा (बिहार)

# जीवन के यथार्थ और सत्य को उकेरती जीवनी

प्रस्तुत पुस्तक के नायक श्री सिद्धेश्वर जी से यों तो मैं बहुत ज्यादा समय से नहीं जुड़ा हूँ, किंतु मैं इस मायने में अपने को सौभाग्यवान मानता हूँ कि दिल्ली में रहने की वजह से इनको अनेक बार सुनने-समझने के साथ-साथ इनसे बातचीत करने का मुझे सुअवसर प्राप्त हुआ है और इनके विचारों से न केवल मैं बहुत प्रभावित हुआ, बल्कि मेरे लेखन और आचरण पर भी उसका गहरा असर पड़ा। यमुनापार के स्कूल ब्लॉक स्थित डी०डी०ए० के गार्डन में टहलने के दौरान पिछले 15 अगस्त, 2005 को जब देश-प्रेम की मेरी कविता सुनकर उसे अपनी 'विचार दृष्टि' में इन्होंने प्रकाशित की तो वह अंक पाकर और उसके संपादकीय को पढ़कर मुझे इनकी गहराई का अहसास हुआ। इन्होंने भी न जाने मुझमें कौन सी ऐसी विशेषता पाई कि मुझे वर्ष 2006 से 'विचार दृष्टि' का दिल्ली के लिए प्रतिनिधि नियुक्त कर दिया। बस क्या था फिर तो प्रायः प्रत्येक दिन इनसे मिलना और इनके कार्यों में सहयोग करना जैसे मैंने अपनी आदत बना डाली। इसी बीच एक दिन दिल्ली के शकरपुर स्थित इनके 'दृष्टि' निवास में प्रो० राम बुझावन बाबू द्वारा लिखित इनकी जीवनी की पांडुलिपि को देखने के बाद इस पर कुछ अपने विचार लिखने के लोभ का मैं संवरण न कर सका।

सच मानिए प्रस्तुत पुस्तक में विद्वान जीवनीकार प्रो० राम बुझावन बाबू ने न केवल सिद्धेश्वर जी के जीवन के यथार्थ एवं सत्य को उकेरा है, वरन् इसमें मानवीय मूल्यों से संबंधित ऐसे तत्त्व हैं जो मन को छूते हैं। इनके जीवन की पारदर्शिता तो इसमें स्पष्ट दृष्टि गोचर होती ही है, यह पुस्तक आत्मीयता के साथ शुचिता का संदेश भी देती है। अपनी अबतक के जीवन-सफर में उच्च आदर्श को ओढ़नेवाले सादगी और करुणा की प्रतिमूर्ति सिद्धेश्वर जी सही मायने में सत्यान्वेषी सिद्ध हुए हैं जिनके लिए अपनी आत्मा की आवाज सर्वोपरि है और जिसका अनुपालन ये हर हाल में करते हैं। इनकी प्रबल विचारधारा और ओजस्वी वाणी की वजह से हमारे जैसे देश के अनेक लोगों ने इनका सान्निध्य पाकर इनकी रचनात्मक दृष्टि, गुणवत्ता और आचार-व्यवहार को स्वीकार किया है और अपने आचरण एवं स्वभाव को अधिक उदार और व्यापक बनाने का संकल्प लिया है। मैंने यह महसूस किया है कि इनके अंदर गजब का उत्साह है और 65 की उम्र पार कर जाने के बाद भी आज ऊर्जावान हैं।

प्रो० साहब ने इनकी सामाजिक प्रतिबद्धता और समर्पित व्यक्तित्व को जनमानस के समक्ष प्रस्तुत कर जड़ता से भरे इस संवेदनहीन समाज को प्रेरित करने के लिए एक महत्त्वपूर्ण काम किया है जिसके लिए उन्हें मेरी हार्दिक बधाई तथा सिद्धेश्वर जी स्वस्थ रहकर अपने कर्त्तव्य पथ पर सदैव अग्रसर रहें, इसके लिए हमारी शुभकामना।

21 मार्च, 2006
एस-107, शकरपुर, दिल्ली-92

उदय कुमार 'राज़'
विचार प्रतिनिधि, दिल्ली

# एक कर्मयोगी की जीवनी का जीवंत चित्रण

**यस्तिवन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।**
**कर्मेन्द्रियौः कर्म योगमसक्तः स विशिष्यति।।**

श्रीमदभगवद्गीता में वर्णित निष्काम कर्म हमारी संस्कृति एवं धर्म का मूल आधार है। कर्म करनेवाले पुरुष का एक ही संकल्प होता हैं - नियमित कर्म करना (नियतं कुरु कर्म त्वं ज्यायोह्यकर्मण:)। फल क्या होगा, इसकी चिंता उसे नहीं होनी चाहिए। पाश्चात्य धर्म-दर्शन में 'कर्म' की अवधारणा फलप्राप्ति के साथ जुड़ी हुई है। हमारी संस्कृति के शब्दकोश में निष्काम कर्म में निरंतर रत व्यक्ति ही सही अर्थ में कर्मयोगी है। इस दृष्टि से सिद्धेश्वर जी एक सच्चे कर्मयोगी हैं। लोभ, लाभ या अन्य कामनाओं से विमुक्त देश और समाज के लिए चिंतन एवं उद्यम सिद्धेश्वर जी की मानसिकता है, इनकी रचनाधर्मिता है। अनासक्ति की पहचान है निजता का त्याग। हमारा जो कुछ है, वह समाज का है, मानव-कल्याण के लिए है। सिद्धेश्वर जी अनासक्त हैं। ये अपना और अपने परिवार के हितों की तिलांजलि देकर देश और समाज को कुछ देने के लिए संकल्पित हैं।

प्रस्तुत पुस्तक 'सिद्धेश्वर : व्यक्तित्व एंव विचार' में लेखक ने उस व्यक्ति के जीवनचरित्र को उजागर किया है, जो अपनी जीवनयात्रा को विराम नहीं देना चाहते हैं, भले ही उसे अकेला ही क्यों न चलना पड़े। हर वक्त मन और मस्तिष्क में एक खलिश रहती है, एक जुनून रहता है-बढ़ते चलो, कुछ करते चलो। एक शायर ने कहा है : "न मिला है, न मिलेगा कभी आराम मुझे। मैं वह मुसाफिर हूँ, जिसकी सुबह कहीं, शाम कहीं।" सिद्धेश्वर जी अनवरत बढ़ते रहने, कुछ करते रहने के कायल हैं। इनकी कर्मठता मात्र चंद कृत्यों का पर्याय नहीं है: यह कर्त्तव्य और निष्ठा का अद्‌भुत संगम है। सिद्धेश्वर जी जो कुछ करते हैं, उसमें कर्म है, कर्म का लक्ष्य है और कर्म के प्रति निष्ठा है। अपनी जीवनयात्रा में ये एक अनजान मुसाफिर की तरह भटक नहीं रहे हैं, एक निर्धारित मंजिल की ओर नपे-तुले कदमों से बढ़ रहे हैं। कोई द्वंद्व नहीं, कोई संशय नहीं। इस दृष्टि से ये एक साधक हैं और इनका जीवन इनकी माधना है।

समाजसेवा से राजनीति तक अविरल यात्रा करनेवाले सिद्धेश्वर जी प्रलोभनों से परे निस्पृह एवं निर्द्वंद्व भाव से देश और समाज की सेवा कर रहे हैं। राजनीति के अनेक शिखर पुरुषों से जुड़े रहने के बावजूद इन्होंने कभी किसी पद या लाभ की कामना नहीं की। इस दृष्टि से हम इन्हें ज्ञानी की संज्ञा दे सकते हैं। हमारी उपनिषदों में विद्या और अविद्या के भेद को समझकर विद्या के मार्ग पर चलनेवाले व्यक्ति को ज्ञानी माना गया है। ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है:

"विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्या मृत्युं तीर्त्वा विद्यया मृतमश्नुते।।"

सिद्धेश्वर जी अपने विवेक और बुद्धि से विद्या और अविद्या के अंतर की सूक्ष्मताओं को समझते हैं और यही कारण है कि ये सत्पथ पर अग्रसर हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में वर्णित विवरणों से यह स्पष्ट होता है कि सिद्धेश्वर जी की सेवाभावना, ईमानदारी और कर्त्तव्यपरायणता इनके पारिवारिक संस्कार की देन हैं। अँग्रेजी में एक कहावत है 'worthy son of a worthy father'। सिद्धेश्वर जी इसके अनुपम उदाहरण हैं। एक सुयोग्य एवं संस्कारी पिता के सुयोग्य और चरित्रवान् पुत्र सिद्धेश्वर जी ने अपने माता-पिता तथा परिवार के अन्य बुजुर्गों से जिन मार्यादाओं और आदर्शों को ग्रहण किया, उन्हें अपने जीवन में उतारने में कतई कोताही नहीं की। सभी महापुरुषों ने यह स्वीकार किया है कि इनके व्यक्तित्व के विकास में इनके माता-पिता का बहुत बड़ा योगदान रहा है। महात्मा गाँधी ने स्पष्ट कहा है कि 'मेरे जीवन में आध्यात्मिकता मेरी माँ की देन है।" मैजिनी ने तो यहाँ तक कहा है कि "माँ के चुंबन और पिता के संरक्षण में ही बच्चा आदर्श नागरिकता का पाठ सीखता है।"

वे व्यक्ति भाग्यवान् हैं जिनके परिवार के सदस्यों में अनुशासन और मर्यादाओं के साथ-साथ सेवा, त्याग, सहयोग एवं सद्भाव समान रूप से विद्यमान हों। इस दृष्टि से सिद्धेश्वर जी भाग्यशाली हैं, क्योंकि इनकी पत्नी और बच्चों ने इन्हें हर कदम पर साथ दिया है, सहयोग किया है।

किसी भी राष्ट्र की वास्तविक पहचान उसकी भौतिक संपदा नहीं, उसकी संस्कृति है, उसका साहित्य है। भारतीय संस्कृति की अपनी एक अनोखी विशिष्टता है जिसने इसे युगों-युगों तक जीवित रखा, समृद्ध एवं संस्कारी बनाये रखा। दार्शनिक शायर इकबाल की ये पंक्तियाँ-

"कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
सदियों रहा है दुश्मन दौरे जमाँ हमारा"

आज भी हमें अभिप्रेरित करती हैं, हमारा मनोबल बढ़ाती हैं। सिद्धेश्वर जी ईमानदारी के साथ साहित्य और संस्कृति के संवर्द्धन में संलग्न हैं। क्या यह सुखद आश्चर्य नहीं है कि अपने प्रारंभिक कर्मशील जीवन में अंकों और आँकड़ों के वरिष्ठ लेखापरीक्षा अधिकारी आज संस्कृति एवं साहित्य के विख्यात उन्नायक हैं।

मन को दुष्प्रवृत्तियों एवं द्वंद्वों से मुक्त कर उसे सही परिप्रेक्ष्य में परिष्कृत करने का सारस्वत प्रयास ही संस्कृति है। साहित्य और कला इसकी अभिव्यक्तियाँ हैं। कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण है। अनेक पुस्तकों के रचयिता तथा अनेक आलेखों के लेखक सिद्धेश्वर जी की साहित्यिक कृतियों में समाज के उन अंशों और पक्षों का चित्रण है जो उपेक्षित रहे हैं। दलित, शोषित एवं दबे-कुचले लोगों की जिंदगी से संबंधित समस्याओं को अपनी रचनाओं में उठाकर इन्होंने संवेदनशीलता का परिचय दिया है। दुर्भाग्यवश, आज की अधिकांश रचनाओं में संवेदनशीलता की जगह साहित्यिक विधाओं पर अधिक बल दिया जा रहा है। दुष्यंत कुमार ने लिखा है:

"वे मुतमईन हैं कि पत्थर पिघल नहीं सकता:
मैं बेकरार हूँ आवाज में असर के लिए।"

सिद्धेश्वर जी की रचनाओं में चिह्नित संवेदनशीलता इस दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति है।

सिद्धेश्वर जी मूलत: एक संवेदनशील कवि हैं। कवि सर्जक है, स्रष्टा है, और इसीलिए उसे शिव-चैतन्य का प्रतिरूप माना गया है। यजुर्वेद में कहा गया है- 'कविर्मनीषी परिभू स्वयम्भू।' एक संवेदनशील कवि के रूप में सिद्धेश्वर जी आम लोगों की पीड़ा से आहत हैं और राहत भी तलाश रहे हैं। इन्होंने साहित्य की अनेक विधाओं का प्रयोग बखूबी किया है। लेखक ने अपनी पुस्तक में सिद्धेश्वर जी की रचनाओं के मार्मिक अंशों को उद्धृत कर इस पक्ष को सबल बना दिया है।

सिद्धेश्वर जी के बहुआयामी व्यक्तित्व का प्रतिबिंब इनकी पत्रकारिता में परिलक्षित होता है। वस्तुत: पत्रकारिता साहित्य की एक विधा कही जा सकती है, इसलिए जब एक साहित्यकार पत्रकार हो तो वह सोने में सुहागा है। आज की भोगवादी बाजारू संस्कृति ने पत्रकारिता को इस कदर प्रदूषित कर दिया है कि इसकी मूल पहचान खत्म हो गयी है। कभी राज्य के चतुर्थ स्तंभ के रूप में मानी जानेवाली पत्रकारिता आज भोगवादी संस्कृति के उन्नयन के उपकरण के रूप में अपनी भूमिका अदा कर रही है। पत्रकारिता की वास्तविक पहचान है संवेदनशीलता जो आज लुप्त हो गयी है। सिद्धेश्वर जी के पत्रकारिता में प्रवेश करने का लक्ष्य है समाज और राष्ट्र के नवनिर्माण में सम्यक् योगदान देना। इनकी पत्रकारिता में संवेदनशीलता है, मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था और जागरूकता है।

संपादक के रूप में सिद्धेश्वर जी ने अपनी प्रतिभा और कौशल का भरपूर परिचय दिया है। 'विचार दृष्टि' के संपादक के रूप में इन्होंने एक सफल और कुशल जौहरी की भूमिका निभायी। है। आलेखों को तराशने, सजाने-सँवारने से लेकर संपादकीय लिखने के क्रम में इन्होंने क्रमबद्धता, अनुशासन और तारतम्य बनाये रखा है। एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि सिद्धेश्वर जी ने अपनी पत्रकारिता को मूल्यों और मर्यादाओं की लक्ष्मण रेखा लाँघने की कभी छूट नहीं दी। इनकी पत्रकारिता में चटपटी, मसालेदार सामग्रियों तथा सस्ती लोकप्रियतावाले तत्त्वों से परहेज किया गया है। संवेदनशील मुद्दों का गंभीर चिंतन एवं विश्लेषण इनकी पत्रकारिता की पहचान है। कुल मिलाकर, इनकी पत्रकारिता सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना की संवाहिका रही है।

लेखक ने पुस्तक में न केवल सिद्धेश्वर जी के साहित्य और संस्कृति संबंधी विचारों का उल्लेख किया है, प्रत्युत् वैसे प्रसंगों एवं विश्वसनीयता की पुष्टि करते हैं।

सिद्धेश्वर जी के समस्त क्रियाकलापों एवं प्रयासों का एकमात्र आधार रहा है 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।' देश का सर्वांगीण विकास तथा धर्मनिरपेक्ष समाज की स्थापना इनका लक्ष्य है, इनका संकल्प है। इनका मानना है कि धर्मनिरपेक्ष समाज के माध्यम से ही राष्ट्रीय चेतना का विकास हो सकता है।

आज राजनीति नीतिपरक न होकर कुसंस्कारों एवं कुप्रवृत्तियों का पर्याय बन गयी है। यही कारण है कि राष्ट्रीय भावना का तेजी के साथ क्षरण हो रहा है। हमारा समाज राष्ट्रवादी न होकर व्यक्तिमूलक हो गया है। सिद्धेश्वर जी ने अपने विचारों एवं उपक्रमें के माध्यम से राष्ट्रीय भावना को संगठित एवं संपोषित करने का महाव्रत ले रखा है। नि:संदेह, यह एक सारस्वत प्रयास है, श्लाघनीय है, अनुकरणीय है।

कुछ व्यक्ति अपने पितृवंश या अतुल संपदा के कारण नाम और यश के हकदार बन जाते हैं, किंतु कुछ लोग अपनी प्रतिभा और अपने गुणों के कारण स्तुत्य होते हैं। संस्कृत में एक श्लोक है:

"गुणा: सर्वत्र पूजयन्ते पितृवंशी निरर्थक:।
वासुदेव नमस्यन्ति वसुदेव न मानव:।"

सिद्धेश्वर जी मुँह में सोने की चमची लेकर नहीं पैदा हुए। नालंदा जिले के एक छोटे-से गाँव-बसनियावाँ के एक सामान्य कृषक परिवार में जन्म लेनेवाले सिद्धेश्वर ने अपनी प्रतिभा, अपने गुणों और अपने कर्मों के कारण राष्ट्रीय पहचान बनायी, लोकप्रियता अर्जित की। संक्षेप में, सिद्धेश्वर जी की जीवनयात्रा महज भोग और संयोग की यात्रा नहीं है, यह राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना की सार्थक और संकल्पित यात्रा है। ऐसे व्यक्ति के लिए मेरे चंद शब्द हैं:

"बढ़ो, चमको सितारे बनके तुम इस आसमाँ में;
हमारे वास्ते खुशियों का तुम त्योहार लाये हो।"

सिद्धेश्वर जी की जीवनी पर लिखित प्रस्तुत पुस्तक जीवन-चरित लेखन में एक नूतन प्रयोग है। लेखक ने केवल लिखी हुई तथा सुनी-सुनायी बातों पर विवरण प्रस्तुत नहीं किया है। स्वयं पुस्तक के नायक सिद्धेश्वर जी के व्यक्तिगत साक्षात्कार के जरिये तथ्यों की पुष्टि की है तथा समीक्षा की है। छोटी-छोटी घटनाओं एवं दुर्लभ प्रसंगों एवं प्रकरणों को अपनी समीक्षात्मक व्याख्या का आधार बनाकर लेखक ने जीवनी लेखन में एक नया आयाम जोड़ा है। भाषा प्रांजल है, बोधगम्य है, उसमें प्रवाह है, एकरूपता है। पुस्तक में संदर्भों और समीक्षाओं के बीच तारतम्य और एकसूत्रता लेखक की लेखनी की अद्‌भुत विशिष्टता है। प्रारंभ में देशभर के अनेक सुधी साहित्यकारों, मनीषियों एवं विचारकों के अमूल्य अभिमत इस कृति का गौरववर्द्धन करते हैं। संक्षेप में, पुस्तक एक सार्थक प्रयास है। पुस्तक के नायक सिद्धेश्वर जी तो स्तुत्य हैं ही, पुस्तक के विद्वान् लेखक प्रो० राम बुझावन सिंह भी साधुवाद के बधाई के पूरे हकदार हैं।

मंगलकामनाओं के साथ।

डॉ० मणिशंकर प्रसाद
पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
स्नातकोत्तर राजनीतिशास्त्र विभाग
मगध विश्वविद्यालय स्नातकोत्तर केन्द्र,
नालंदा कॉलेज, बिहारशरीफ

16 अगस्त, 2005
धनेश्वर घाट
बिहारशरीफ (नालंदा)

शुभाशंसा

# एक जीवंत व्यक्तित्व

श्री सिद्धेश्वर जी एक सुचिंतित विचारक एवं कर्मठ रचनात्मक कार्यकर्ता हैं। साहित्य, राजनीति, समाज, संस्कृति तथा पत्रकारिता के क्षेत्रों में इनके अवदान गणनीय हैं। इनका सामाजिक अनुभव व्यापक होने के साथ वैविध्यपूर्ण भी है। इन्होंने सामाजिक स्थितियों को अत्यंत गहराई के साथ देखा, परखा और अनुभव किया और अपने चिंतन के साथ सम्मिश्रित करके उन्हें वैचारिक रूप दिया। यही कारण है कि इनके लेखन में स्थितियाँ स्वयं बोलती हुई दर्शित होती हैं। गहरे जीवनानुभव ने इन्हें एक द्रष्टा का व्यक्तित्व प्रदान किया।

किसी भी व्यक्ति में बाल्यावस्था में जो संस्कार बीजरूप में रोपित होते हैं, वे ही कालांतर में उस व्यक्ति की रुचि, निष्ठा, श्रम एवं साधना द्वारा परिष्कृत होकर अँकुरित एवं पल्लवित होते हैं और अंततः उस व्यक्ति के चरित्र का निर्माण करते हैं। श्री सिद्धेश्वर स्वभाव से सरल होने के साथ स्पष्टवादी भी हैं और कर्मठ भी। इन गुणों ने इनके व्यक्तित्व को निखारा। जहाँ तक इनका वैचारिक पक्ष का सवाल है, सुचिंतित होने के साथ आस्थायुक्त हैं और इनके संकल्प एवं आचरण के योग्य प्रमाणित हुआ है।

जहाँ तक इनकी सामाजिक दृष्टि है, वह स्थितियों के अवलोकन एवं अध्ययन के सम्मिश्रण से एक रचनात्मक स्वरूप को लेकर विकसित हुई है। परिणामस्वरूप जहाँ इनका वैचारिक पक्ष मूलभूत सिद्धांतों का संस्पर्श करता है, वहीं वह क्रियात्मक बन आचरण का स्वरूप धारण करता है। अतः इनके विचार और आचरण में भिन्नत्त्व दृष्टिगोचर नहीं होता। इसीलिए ये सबके निकट और आत्मीय बन जाते हैं।

श्री सिद्धेश्वर के व्यक्तित्व एवं वैचारिक पक्ष से सुपरिचित तथा इनके बाल्यकाल से लेकर आज तक के इनके विविध पक्षों के विकाशक्रम के द्रष्टा प्रोफेसर राम बुझावन सिंह ने अत्यंत सूक्ष्मता के साथ विविध कोणों से उनका विश्लेषण किया और जीवन चरित के सफल व्याख्याकार के रूप में अपनी असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया है। श्री सिद्धेश्वर के बाह्याचरण के साथ इनके अंतस्तल के वैचारिक पक्ष को भी उन्होंने बेबाकी से चित्रित किया है।

प्रो. राम बुझावन सिंह एक सफल तथा आदर्श शिक्षक होने के साथ मनोविज्ञान के सूक्ष्म विश्लेषक भी हैं। उनका सामाजिक अध्ययन गहन होने के साथ व्यापक भी है। इस कारण श्री सिद्धेश्वर के जीवन के विविध पक्षों को तथ्यात्मक रूप में प्रस्तुत करने में उन्हें असाधारण सफलता प्राप्त हुई है।

आचार्य राम बुझावन जी ने बड़ी ईमानदारी एवं प्रतिबद्धता के साथ श्री सिद्धेश्वर की जीवनी को अँकित करने का सफल प्रयास किया है।

वर्तमान समय में जहाँ व्यक्ति केवल अपने तथा अपने परिवार का हितचिंतन करता है, वहाँ श्री सिद्धेश्वर जी ने सरकारी सेवा के साथ एक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में अपनी सेवाएँ अर्पित कीं, इनका लक्ष्य था कि जिस समाज में हम सांस लेते हैं, जिस परिवेश में हम पलते हैं, उसके असंतुलन को दूर करने की दिशा में हमारी भी थोड़ी बहुत भूमिका होनी चाहिए। इस विचार से प्रेरित होकर इन्होंने अपने स्तर पर जो भी संभव था, किया और उस क्षेत्र में अपनी पहचान बनायी। परिवार के भरण-पोषण की जिम्मेदारी निभाते हुए इन्होंने समाज, साहित्य तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में जो सक्रिय भूमिका निभायी वह अप्रतिम है।

'विचार-दृष्टि' के संपादक के रूप में इन्होंने जो अग्रलेख लिखे, निश्चिय ही वे चिंतन व मनन करने योग्य हैं। अपने-अपने विषय के विशेषज्ञ रचनाकारों द्वारा रचनाएँ मंगवा कर अपनी पत्रिका को स्तरीय बनाया और बुद्धिजीवी वर्ग में चर्चा का विषय बनने योग्य उसे रूपायित किया। इनका मानना है कि विचार वह बीज है जो उर्वर मस्तिष्कवाले पाठकों के हृदय में अँकुरित हो फलीभूत होता है और वह वैचारिक क्रांति का क्षेत्र निर्मित कर सकता है।

इसी विचार से प्रेरित होकर श्री सिद्धेश्वर ने भारत के अधिकांश राज्यों का भ्रमण करके राष्ट्रीय विचार-मंच की शाखाएँ स्थापित कीं और ये मंच के अखिल भारतीय महासचिव के रूप में सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि श्री सिद्धेश्वर जी वाणी तथा लेखनी द्वारा सामाजिक उन्नयन में समर्पित भाव से जुटे हुए हैं और अपने साथ समान विचारधर्मी बुद्धिजीवियों को सम्मिलित कर साठोत्तरवय में क्रियाशील हैं। निश्चय ही इनका यह मिशन अभिनंदनीय है।

उर्पयुक्त विशेषताओं से आकृष्ट होकर समाजसुधारवादी सक्रिय, पथप्रदर्शक एवं आचार्यश्री राम बुझावन सिंह ने श्री सिद्धेश्वर के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व को समाज के सम्मुख लाने का संकल्प किया और इन पर अत्यंत प्रामाणिक सामग्री पाठकों के समक्ष परोसने का सफल प्रयास किया। यह कार्य अन्य लेखकों के लिए दुर्लभ है, क्योंकि प्रो० राम बुझावन बाबू जैसे इन्हें बचपन से निकट से जानते हैं और इनकी जीवनयात्रा के जैसे प्रत्यक्षदर्शी रहे हैं, वैसे अन्य कोई नहीं रहे।

लेखक ने संग्रह के संदर्भ में श्री सिद्धेश्वर जी के जीवनचरित प्रस्तुत करने के प्रेरणा-स्रोतों पर जो इंगित किया है, वह यहाँ पर द्रष्टव्य है। उनका कहना है-"श्री सिद्धेश्वर जी का संघर्षमय जीवन लोकशिक्षण और लोकचेतना

जाग्रत करने में व्यतीत हो रहा है। इनके जीवन की सार्थकता का आकलन इनके जीवनमूल्यों और स्वार्जित उपलब्धियों के आधार पर किया गया है, जो समाज के लोगों के लिए प्रेरणास्पद होगा।..... "

इस कृति के संपादक डॉ. शाहिद जमील का मानना है कि श्री सिद्धेश्वर ने छात्रों तथा युवाओं को सामाजिक संघर्ष के लिए प्रेरित करने का काम किया है। प्राचीन सड़ी-गली परंपराओं तथा प्रथाओं को ढोने की बजाय उनके विरुद्ध विद्रोह करने का ये लगातार अनुरोध करते रहे हैं। सामाजिक संगठनों में रहकर उन्होंने जातिवाद, संप्रदायवाद, छुआछूत आदि को हमेशा निशाना बनाया और सभी जातियों, मजहबों, भाषाओं तथा क्षेत्रों के लोगों के लिए पटेल सेवा संघ का दरवाजा खोल रखा था, जो लौह पुरुष सरदार पटेल के आदर्शों तथा विचारों में आस्था एवं निष्ठा रखते हैं।

प्रोफेसर राम बुझावन सिंह ने इस कृति को विषय-क्रम के आधार पर पाँच खण्डों में विभाजित किया है, प्रथम खण्ड में साक्षात्कार के माध्यम से श्री सिद्धेश्वर जी के व्यक्तिगत, सामाजिक, साहित्यिक तथा विविध पक्षों से जुड़े इनके अंतर-बाह्य जीवन के विविध पड़ावों तथा दृष्टिकोणों की चर्चा की है, इसके साथ इनके दांपत्य जीवन, राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रति इनकी निष्ठा तथा सामाजिकता पर भी प्रकाश डाला है। तृतीय खण्ड में इनकी रचना प्रक्रिया और लेखन के विविध पक्षों पर विचार किया है। चतुर्थ खण्ड में श्री सिद्धेश्वर के कार्यकलापों की चर्चा करते हुए चित्रों द्वारा उनके जीवन के प्रमुख परिदृश्यों का परिचय कराया गया है। अंतिम खण्ड पाँच के सामाजिक संगठनों में इनकी क्रियाशीलता तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में इनके योगदान पर सटीक विश्लेषण किया गया है, साथ ही राष्ट्रीय विचार मंच के संयोजन में इनके अवदान की भी चर्चा की गयी है। इसी संदर्भ में इनके वैयक्तिक विचारों का भी आकलन किया गया है।

श्री सिद्धेश्वर जी पत्रकारिता एवं लेखन के माध्यम से उत्तर और दक्षिण के हिंदी पाठकों के लिए सुपरिचित हैं ही, साथ ही राष्ट्रीय विचार मंच के कार्यकलापों द्वारा ये असंख्य लोगों के बीच चर्चित हो रहे हैं। ऐसे एक निष्ठावान व्यक्तित्व के धनी श्री सिद्धेश्वर जी की जीवनी निश्चय ही पाठकों के लिए प्रेरणादायक सिद्ध होगी। इसी विश्वास के साथ मैं इन्हें शुभकामनाएँ देता हूँ कि ये अपना शेष जीवन विविध रचनात्मक कार्यक्रमों द्वारा लोगों के हितसाधन में व्यतीत करें।

12 जुलाई, 2005
'ज्योति निकेतन' 27, वडिवेलुपुरम
वेस्टमाबलम, चेन्नई-600033 (तमिलनाडु)

डॉ. बाल शौरि रेड्डी
अध्यक्ष, हिंदी अकादमी
चेन्नई

# सिद्धेश्वरः सादा जीवन उच्च विचार के प्रतीक

पटना विश्वविद्यालय के विद्वान् प्रोफेसर राम बुझावन सिंह जी की इस कृति 'सिद्धेश्वर : व्यक्तित्व और विचार' के प्रकाशन के पूर्व मुझे सिद्धेश्वर जी के कार्यकलापों और उनके विचारों को देखने-समझने का मौका तब मिला जब पिछले दिनों राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संस्था राष्ट्रीय विचार मंच की ओर से 'आजादी के बाद वैचारिक क्रांति के नए आयाम और हमारा दायित्व' विषय पर नई दिल्ली में दो-दिवसीय राष्ट्रीय अधिवेशन का अयोजन हुआ था। इस सिलसिले में वे मुझसे मिले और मुझे खुशी इस बात की है कि मैंने उसे सफल बनाने के लिए सहयोग दिया। तब से यह मेरे बहुत निकट आ गये हैं।

जीवनीकार प्रो. सिंह जी की इस कृति से यह स्पष्ट होता है कि सिद्धेश्वर जी ने कर्म को ही अपना धर्म माना है। यह जीवन-क्रम भी सृष्टि के अनुरूप आकृतियाँ ग्रहण करता सतत् प्रवहमान होता है और आत्मा की प्रत्येक जीवन-स्थिति उसके पूर्व के जीवन के ज्ञान, विद्या और कर्म द्वारा प्रतिबद्ध और निर्धारित होती है। सिद्धेश्वर जी ने इसे बखूबी समझते हुए कर्म को अपने जीवन में प्रमुखता दी है। इनके इसी कर्म और समर्पित भाव तथा विचारों की शुद्धता के चलते मेरे मन में इन्हें सहयोग करने की भावना जगी। वैसे भी 'धर्म' शब्द कर्त्तव्य के अर्थ में अधिक प्रयुक्त हुआ है। धर्म तो मुक्ति, आत्मशुद्धि का मार्ग है। इस लिहाज से यदि देखा जाए तो सिद्धेश्वर जी की दृष्टि पारदर्शी है, क्योंकि ये मानते हैं कि मोह, हिंसा और परिग्रह से जुड़ी प्रवृत्तियों पर काबू पाने की आवश्यकता है तथा ये यह भी स्वीकार करते हैं कि पारस्परिक सेवा-सहयोग सामाजिक जीवन का आधार है। सांसारिक जीवन में परोपकार कर्त्तव्य हैं, मंगल कार्य और लोकधर्म हैं।

सिद्धेश्वर जी गृहस्थ जीवन में रहते हुए परिवार के साथ आत्म-परिष्कार और समाज को स्वस्थ बनाने के लिए सुयोग्य नागरिक प्रदान करने में निरंतर प्रयासरत हैं। आत्म-परिष्कार और सुयोग्य नागरिक प्रदान करना केवल गृहस्थ जीवन में ही संभव है। मनुष्य चिरकाल से ही परिवार के साथ रहता आ रहा है और मानव-सभ्यता के विकास का अधिकांश श्रेय भी परिवार प्रथा को ही जाता है। इतिहास साक्षी है कि कुछ अपवादों को छोड़कर प्राचीन समय में भी महर्षि-मुनियों ने गृहस्थ जीवन बिताते हुए योग-साधना की। ईश्वर के अवतारों में भगवान राम और कृष्ण गृहस्थ ही तो थे। सिद्धेश्वर जी भी गृहस्थ-जीवन को हर प्रकार की सुख-शांति एवं सुसंस्कार का आधार मानते हुए दांपत्य जीवन की आवश्यकता एवं उपयोगिता को स्वीकार करते हैं। इसीलिए इन्होंने अनुशासन-मर्यादा

का पालन करने के लिए सद्‌गृहस्थ के रूप में ही अपना चरित्र प्रस्तुत किया है और इनके इस पक्ष को चित्रित करने में जीवनीकार ने कोई कोताही नहीं की है।

सिद्धेश्वर जी की हाल ही में प्रकाशित 'सेन्र्यू' काव्य-संग्रह 'जागरण के स्वर' की पांडुलिपि को देखने का मुझे अवसर मिला और मैंने पाया कि वे भगवान महावीर और महात्मा गाँधी के बताए रास्ते-सत्य एवं अहिंसा की ओर लोगों को प्रोत्साहित करने का सर्जनात्मक प्रयास कर रहे हैं। मैंने देखा है प्रखर वक्ता, मौलिक लेखक और ओजस्वी कवि के रूप में वे श्रोताओं के हृदय में बैठकर अपनी बात प्रस्तुत करने का सामर्थ्य रखते हैं। इनके कार्यकलापों में सामूहिकता एवं सहयोग की प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं। वे समता के साधक हैं। इनका चिंतन इतना सामयिक है कि उसे वर्तमान की धारा का स्रोत कहा जा सकता है। इनके जीवन से उत्पन्न अवदान न केवल आज काफी प्रासंगिक हैं, बल्कि आगे आनेवाले दिनों में भी उनकी प्रासंगिकता बनी रहेगी। इसलिए वे शाश्वत भी हैं।

जीवनीकार प्रो. राम बुझावन सिंह ने हमारे समय के सचेत और बा-शऊर रचनाकार श्री सिद्धेश्वर की जीवनी को इस ढंग से प्रस्तुत किया है, जो गहराई तक उन बिंदुओं को छूती है, जिनकी अनदेखी करना संवेदनशील रचनाकार के लिए मुश्किल होता है। एक अदीब का रिश्ता अपने समाज के साथ तकरार और प्यार, दोनों का, रहता है। लेखक ने सिद्धेश्वर के समाज के साथ इन दोनों रिश्तों को बड़े बेहतरीन ढंग से प्रस्तुत किया है। हमारा विश्वास है कि इनके विचार, आचार-व्यवहार तथा कार्यशैली को समझने में लोग रुचि लेंगे और उससे भावी पीढ़ी को नई रोशनी और प्रेरणा भी मिलेगी, क्योंकि इन्होंने अपने अब तक के जीवन में मर्यादा और अनुशासन को मूल्य देकर एक नई जीवन-शैली का सूत्रपात किया है। इनकी इसी जीवन-शैली को जीनेवाले लोग अपने जीवन में नए प्रकाश और नए स्पंदनों का अनुभव कर सकते हैं। मेरी शुभकामनाएँ सदैव इनके साथ हैं।

15 अगस्त, 2006
बी-139, पॉकेट-बी
मयूर विहार, फेज-2
दिल्ली-91

डॉ० धर्मेन्द्र नाथ 'अमन'
पूर्व प्राध्यापक, राजधानी कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

# पुरोवाक्

यह आस्वाद्य कृति है जीवनी। उल्लेख्य है कि हिंदी गद्य विधाओं में डायरी, पत्र, इंटरव्यू, यात्रा-साहित्य की भांति जीवनी को भी अद्यावधि एक अप्रमुख विधाओं के बीच ही श्रेण्य माना गया है यद्यपि इसका आधुनिक शैली में लेखन उन्नीसवीं सदी के नवम् दशक में प्रारंभ हो गया था। साहित्येतिहासकारों और समीक्षकों की दृष्टि में यह विधा न केवल अनुन्नत है, बल्कि आत्मकथा की सहोदरा भी है। जीवनी में किसी वरेण्य विशिष्ट व्यक्ति का अँकन नहीं, कलात्मक चित्रण होता है। बाबू गुलाब राय का यह कथन द्रष्टव्य है 'जीवनी लेखक अपने चरित नायक के अंतर्-बाह्य स्वरूप का चित्रण कलात्मक ढंग से करता है। इस चित्रण में वह अनुपात और शालीनता का पूर्ण ध्यान रखता हुआ सहृदयता, स्वतंत्रता और निष्पक्षता के साथ अपने चरित नायक के गुणदोषमय सजीव व्यक्तित्व का आकर्षक शैली में उद्घाटन करता है।''

यह ध्यातव्य है कि जीवनी अपनी आंरभिक अवस्था में प्राय: नायक पद उन्हें देती थी, जो महाकाव्योचित गुणों से भूषित होते थे, परंतु आज सामान्य व्यक्ति भी उस पद पर अभिषिक्त किये जाते हैं। यह तब संभव होता है जब कोई जीवनी लेखक उनके किसी वैशिष्ट्य पर रीझ जाता है। किसी जीवनी की उत्कृष्टता निर्भर करती है रचनाकार के विस्तृत परिज्ञान, प्रसंग-चयन, घटना-क्रम-निर्वाह और सहृदयता पर। डिजरायली जीवनी विधा के महत्त्व एवं सौंदर्य से इतने प्रभावित थे कि इतिहास को नहीं, जीवनी को पढ़ने की सलाह देते थे। तथ्यपरकता जीवनी में इतिहास का स्वाद पैदा करती है, रमणीय और रोचक निरूपण कथा का मज़ा जीवनी का लक्ष्य होता है सत्य एवं निष्पक्षतापूर्वक सत्य का उद्घाटन। इसलिए इसमें अनावश्यक असंबद्ध विवरणों के लिए एवं कल्पित घटनाओं के लिए स्थान नहीं होता। दीर्घजीवी जीवनी के वैशिष्ट्य हैं-संक्षिप्तता, सानुपातिकता और उपयुक्तता। रचनाकार की, कथानायक के प्रति अतिशय श्रद्धा-निंदा की दृष्टि उसकी कृति को कृत्रिम और अंतत: अपठनीय बनाती है साथ ही अविश्वसनीय भी। किसी भी प्रकार का पक्षपातपूर्ण रवैया जीवनी-सौंदर्य का घातक है। अत: घटना निरूपण में आद्योपांत लेखकीय निष्पक्षता नितांत अपेक्षित होता है।

गद्य विधा प्राय: अन्य साहित्यिक विधाओं से सहयोग लेती है, अत: जीवनी विधा भी संस्मरण, यात्रा वृत्तांत, डायरी, इंटरव्यू, रिपोर्ताज, आत्मकथा इत्यादि में आंशिक सामग्री से चरित नायक के उस परिदृश्य को विस्तार देने के लिए जीवनीकार सचेष्ट रहता है जिसके आघात-प्रतिघात से उनके व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व प्रभावित होते हैं। श्री दीनानाथ व्यास काव्यालंकार लिखित भूमिका पुस्तक की राम-कहानी से यह परिपुष्ट होता है "जहाँ तक

हो सका है इसमें प्राय: सभी पत्र-व्यवहार, दस्तावेज, वक्तव्य, भाषण समझौते, रियासती यथापूर्व समझौते, संघीकरण के प्रतिज्ञा-पत्र तथा तत्संबंधी अन्य कागजात, प्रांतीय विधान का मसविदा मूलभूत अधिकार समिति तथा अल्पसंख्यक समिति की रिपोर्ट तथा पूरक रिपोर्ट आदि अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं उपलब्ध तथा अनुपलब्ध सामग्री प्रस्तुत की ही नहीं गयी है, वरन् यथास्थान उस महत्त्वपूर्ण सामग्री का उपयोग भी किया गया है।'' (लौहपुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल, प्रकाशक: विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा)। प्रामाणिक और निष्पक्ष जीवनी यदि राजनीतिक महापुरुष की लिखनी है तो व्यास निर्दिष्ट स्रोतों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। साहित्यकार, शिल्पकार, पत्रकार और वैज्ञानिक की जीवनी लिखने के लिए जीवनीकार को प्रामाणिक सामग्रियों का संकलन करना ही होगा, भले ही वे इंटरव्यू, पत्र, डायरी इत्यादि क्यों न हो। चरित नायक की दिनचर्या, कार्यशैली, विचित्र आदत इत्यादि भी जीवनीकार के लिए अनुपेक्षणीय है। यह सूच्य है कि प्रेमचंद छाती के नीचे तकिये के सहारे लेटे-लेटे लिखते थे, रामचंद्र शुक्ल पेंसिल से, स्विटजरलैंड के जीना स्पायरी को शांत-एकांत में नहीं, बल्कि तेज रफ्तार से भागनेवाली ट्रेन में सर्जन करना प्रिय था; वर्ड्सवर्थ की कविता तब शब्द-बद्ध होती जब वे अपनी कलम में लगी इत्र बार-बार सूँघते, जर्मन के कवि कार्ल बोन हेम बोल्ट काव्य-सर्जन के समय रेडियो से ऊँची आवाज अवश्य सुनते। डॉ. जॉनसन लिखने के पूर्व अपनी कुर्सी में गोंद लगाते ताकि प्रतिदिन 20 पृष्ठ लिखने का प्रण-भंग न हो। तात्पर्य यह कि साहित्य स्रष्टा की जीवनी को ऐसी विस्मयकारी, आश्चर्यजनक बातें रोचकता और विश्वसनीयता देती हैं जो जीवनीकार के लिए महत्त्वपूर्ण हैं।

जीवनीकार की वह सर्जन-चेतना स्पृहणीय होती है जिसमें तटस्थ इतिहासकार और कुशल कथाकार की आंशिक, किंतु समन्वित छवि हो; क्योंकि इस वैशिष्ट्य के अभाव में जीवनी ऐतिहासिक सत्यता और रोचकता खो बैठती है। हिंदी के कई लेखकों की अवधारणा है कि चरित नायक की जीवनगाथा के निरूपण में आत्मवृत्त देना अनुचित नहीं है वस्तुत: आत्मचरित का महत्त्वपूर्ण अंश ही जीवनी विधा को सौष्ठव प्रदान करता है, विस्तृति नहीं। जिस जीवनी में लेखक के स्ववृत्त की प्रधानता होगी, वह कमजोर कृति होगी। खूब बारीकी और कौशल से लिखी गयी वही जीवनी उपादेय और कालजयी होती है जिससे समाज दिगंतव्यापी अँधेरे के विरुद्ध संघर्षपथ पर चलने के लिए प्रेरणा-प्रोत्साहन मिलते है। इस गद्यविधा को जिन साहित्यकारों ने अपनी कृतियों से संपन्न किया उनमें उल्लेख्य हैं--बाबू रामचंद्र वर्मा (महात्मा गाँधी), राहुल सांकृत्यायन (स्तालिन), अमृत राय, विष्णु प्रभाकर (आवारा

मसीहा), राम विलास शर्मा (निराला की साहित्य साधना), रामकमल राय (शेखर से सागर तक), चंद्रशेखर शास्त्री (राष्ट्रनिर्माता सरदार पटेल), पं. दीनानाथ व्यास (लौहपुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल), डॉ. दशरथ ओझा (एकता के देवदूत शंकराचार्य), डॉ. ब्रजलाल वर्मा इत्यादि। इस संदर्भ में यह रेखांकनीय है कि हिंदी अध्येताओं को डॉ. वर्मा जी की हनुमान प्रसाद पोद्दार, ''कविवर संत रज्जब'', महात्मा ज्योतिवा फूले, राजर्षि छत्रपति शाहू, 'सामाजिक न्याय के पुरस्कर्ता डॉ. भीम राव अम्बेडकर और सामाजिक क्रांति के अजेय योद्धा पेरियार ई. वी. रामा स्वामी जीवनीपरक कृतियाँ समर्पित हो चुकी हैं।

बिहार के जिन लेखकों से जीवनी विधा को उत्कर्ष मिला है उनमें परिगण्य हैं सर्वश्री शिवपूजन सहाय (भीम और अर्जुन), रामवृक्ष बेनीपुरी (कार्ल मार्क्स), परमानंद 'दोषी' इत्यादि। यह ध्यानाकर्षी तथ्य है कि 'दोषी' जी इस कृति के नायक सिद्धेश्वर सहित अब तक शताधिक लोकख्यात-अख्यान व्यक्तियों की अल्पमोली जीवनियाँ लिख चुके हैं और यह काबिले तारीफ है कि आज भी इनकी लेखनी इसी दिशा में गतिशील है। 'दोषी' जी वस्तुतः जीवनीकोशकार हैं।

प्रस्तुत कृति के सर्जक हैं--संत साहित्य के मर्मज्ञ,, नाट्य साहित्य के तत्त्वान्वेषी समीक्षक प्रो. राम बुझावन सिंह जी, जो पटना विश्वविद्यालय के माध्यम से गत छः दशकों से निरंतर हिंदी साहित्यानुरागी प्रतिभाओं को आलोकित, प्रेरित, प्रोत्साहित करते आ रहे हैं और जिनकी सारस्वत साधना का दीप आज भी निष्कम्प, निर्वात और अमंद है। आपको प्रभावित किया श्री सिद्धेश्वर जी के उदात्त व्यक्तित्व और महनीय कर्तृत्व ने, फलतः इस ग्रंथ का प्रणयन हुआ। यह सर्वविदित है कि श्री सिद्धेश्वर जी का व्यक्तित्व बहुआयामी है। ये सुधी संपादक हैं, अधीत समीक्षक हैं, ऊर्जस्वित कवि हैं। हिंदी में हाइकु के न केवल ये प्रतिष्ठापक हैं, बल्कि उन्नायक, समीक्षक और विस्तारक हैं। इस संदर्भ में यह भी संकेत्य है कि हिंदी और अँग्रेजी में समभावेन सर्जन करनेवाले चरित नायक का भाषण सुनकर श्रोतागण 'नैषधचरित' की इस सदुक्ति ''मितं च सारं च वचो हि वाग्मिता' को अत्यंत सार्थक पाते हैं। 'तथाप्येतद् भूमौ न हि परहितात् पुण्यमधिकम्' अर्थात् परहित से बढ़कर इस भूमि पर और कोई पुण्य नहीं है--इस शाश्वत सत्य को आत्मसात कर श्री सिद्धेश्वर जी अहर्निश इस भौतिकतावादी युग में दिग्भ्रमित और किंकर्त्तव्यविमूढ़ समाज के संगठन और मार्ग-दर्शन का पुनीत कार्य कर रहे हैं। इनकी चेतना लोकसंग्रही है, कार्यशैली पारदर्शी है। इनकी दिनचर्या है व्यावहारिकता, तत्परता, समयबद्धता और अटूटता का अपूर्व समन्वय। जिनका स्वयंप्रभ

व्यक्तित्व अनुकरणीय हो, कर्तृत्व वरेण्य हो उनके चरित्र का निरूपण होना ही चाहिए। इस जीवनी की विशेषता यह है कि जीवनीकार ने अपनी ओर से कुछ नहीं कहा है। जो कुछ सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व में आज स्पष्ट देखने को मिलता है, उसी की अभिव्यक्ति इस कृति की पंक्तियों में है। आज जीवनी लिखने का अर्थ होता है दूसरों को आधार बनाकर स्वयं अपनी प्रशस्ति प्रस्तुत करना, किंतु इस जीवनी में लेखक ने ऐसा नहीं किया है। फिर दूसरों की प्रशस्ति भी वही गा सकता है, जिसके हृदय में उस व्यक्ति के प्रति आकृष्ट होने की, उसके प्रति सम्मान व्यक्त करने की क्षमता है। यह क्षमता सबमें नहीं होती। सम्मान व्यक्त करने का अर्थ है दूसरे के महत्त्व को स्वीकार करना--किसी जोर-दबाव से नहीं, अपितु स्वेच्छा से, सहज भाव से और सम्मानित करनेवाले दूसरे के महत्त्व की स्वीकृति में आनंद की अनुभूति करे। आज के युग में सामान्यत: यह कम दिखायी देता है। जहाँ हर व्यक्ति स्वयं महान है, जहाँ हर सामाजिक कार्यकर्ता समाजसेवा और राष्ट्र का नाम लेने मात्र से महान् देशभक्त हो जाता है, जहाँ हर लेखक कलम उठाते ही महान् साहित्यकार हो जाता है, वहाँ किसी के महत्त्व की स्वीकृति बहुत कठिन काम है। प्रो. राम बुझावन बाबू ने सिद्धेश्वर जी के महत्त्व को बड़ी सहजता से स्वीकार किया है। आखिर तभी तो इस जीवनी से एक ऐसे व्यक्ति का परिचय मिलता है जिसमें बड़ी आत्मीयता और सहजता है। इसी वजह से यह जीवनी स्थान-स्थान पर बहुत मार्मिक बन पड़ी है। जीवनीकार की सहृदयता ने कहीं-कहीं करुणा तथा हास्य का पुट प्रदान कर इसे काफी जीवंत बना दिया है। अतएव इसके विषय अपने प्रकार के हैं, जिनका अपना वैशिष्ट्य है।

जीवनी लेखक प्रो. राम बुझावन सिंह जी ने अपनी सुकृति के चरित नायक पद पर श्री सिद्धेश्वर जी को अभिषिक्त कर अपनी गुणग्राहकता का तो परिचय दिया ही है, हिंदी जीवनी साहित्य को अपने सर्जन से उत्कर्षित-अभिमंडित भी किया है। डॉ० शाहिद जमील के संदीप्त संपादन-कौशल से यह संकलन उद्‌भासित हो उठा है।

आशा है कि प्रांजल, सरल भाषा शैली में सुरचित 'सिद्धेश्वर : व्यक्तित्व और विचार' जीवनी हिंदी के प्रबुद्ध सहृदय आस्वादकों द्वारा समादृत होगी।

'नारायणीयम्',
227, पंडितवाड़ी, फेज-2,
देहरादून (उत्तरांचल)

डॉ. राजनारायण राय
पूर्व प्राफेसर एवं प्राचार्य

# प्रकाशकीय

अपनी जीवन-यात्रा में मेरे पूज्य पिताश्री सिद्धेश्वर जी समाज व देश के शीर्ष व्यक्तियों से जुड़े जिनमें अधिकतर साहित्यकार, पत्रकार, चिंतक, विचारक, समाजसेवी तथा राजनेता ही रहे हैं। उनके सान्निध्य का प्रतिफल यह हुआ कि समाज तथा साहित्य के प्रति इनकी अभिरुचि शनैःशनैः बढ़ती गयी और आज तक वह बरकरार है। आज शब्दों के साथ नाता बनाये रखना और समाज के प्रति जागरूक रहना एक कठिन कार्य होता जा रहा है। पढ़ने-लिखने के सारे स्रोत सूखते जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में पिता जी अक्षर-साधना में तल्लीन हैं और सामाजिक प्रतिबद्धता बनाये रख रहे हैं, यह बड़ी बात है। वर्ष 2004-07 को अपने जीवन का पुस्तकवर्ष के रूप में मनाने का इनका निर्णय स्वागतयोग्य है। इसी वर्ष प्रो. राम बुझावन बाबू के द्वारा इनके व्यक्तित्व और विचारों को एक पुस्तक में सजाने का यह कृत्य सोने में सुहागा का काम कर गया। प्रो. साहब से पिताजी को कम-से-कम पिछले तीन दशकों से मार्गदर्शन प्राप्त होता रहा है और वे इनके कार्यकलापों से भली-भाँति परिचित रहे हैं। प्रो. राम बुझावन बाबू की इस प्रयोगधर्मी रचना के पीछे पिताजी के साथ एक लंबे अरसे से उनका लगाव, उनकी गहरी संवेदना, लगन और दीर्घकालिक शोध रहे हैं। उन्होंने अपनी स्मरण-शक्ति और बड़ी आत्मीयता से इनके व्यक्तित्व और जीवन से जुड़े तथ्यों को समेटकर इस पुस्तक का जो कलेवर दिया है, वह गागर में सागर की तरह है। सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन इस पुस्तक को आप सबों तक पहुँचाकर अत्यंत प्रसन्नता का अनुभव करता है। वैसे भी यह प्रकाशन नैतिक मूल्यों के जागरण तथा राष्ट्रीय चेतना के लिए समाज के सजग नागरिक आगे आएँ, इसी ध्येय को ध्यान में रखकर अपना कार्य करता है। हिंदी की साहित्यिक परंपरा के गहरे अध्येता प्रो० राम बुझावन बाबू की प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन इस उद्देश्य से किया गया है कि हम पिताजी के सामाजिक एवं साहित्यिक योगदान को रेखांकित कर सकें ताकि वह आनेवाली पीढ़ियों का सम्यक् मार्गदर्शक हो सके।

पिताजी ने सदैव मानवीय मूल्यों एवं सामाजिक मर्यादाओं के साथ-साथ विचारों को महत्त्व दिया है। इनका मानना है कि आज आम

व्यक्ति की सोच में जो खोट और विचारों में जो कुप्रवृत्तियाँ पनपती जा रही हैं, उसी का दुष्परिणाम है कि उनके आचरण और व्यवहार बदलते जा रहे हैं। इसका एक ही निदान है मानसिक परिष्कार, जिसके लिए वैचारिक क्रांति आवश्यक है। राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संस्था 'राष्ट्रीय विचार मंच' और उसके मुख-पत्र 'विचार दृष्टि' के माध्यम से पिताजी वैचारिक क्रांति की दिशा में निरंतर पहल कर रहे हैं। वैचारिक प्रतिबद्धता और आचरण की शुद्धता को ये काफी महत्त्व देते हैं। इसके अतिरिक्त गलत चीजों को ये कभी प्रश्रय नहीं देते। घर-परिवार के सदस्यों को भी ये हमेशा यही सलाह देते हैं कि किसी कीमत पर न तो वे गलत कार्य करें और न ही किसी को इसके लिए प्रोत्साहित करें। इस क्रम में ये यह भी कहते हैं कि इस तरह के जीवन जीनेवालों को परेशानी होती है। वैसे भी सामाजिक जीवन जीनेवालों को संघर्ष का सामना करना पड़ता है। दो होने का मतलब ही है टकराना। कभी-कभी अपने दो हाथ भी टकरा जाते हैं। इसमें घबड़ाने की कौन सी बात! सामाजिक जीवन में संघर्ष अनिवार्य है, यह मानकर ये चलते हैं।

वर्तमान में ये मंच तथा 'विचार दृष्टि' के रथ को आगे बढ़ाने में कार्यरत हैं। जहाँ तक मेरी समझ है इनके नेतृत्व में संगठन तथा पत्रिका का भविष्य उज्ज्वल है। इनके नेतृत्व में सक्षम एवं समर्पित कार्यकर्ताओं और सहयोगियों की एक टीम पूरे देश के पैमाने पर सक्रिय है। मंच तथा पत्रिका का इतिहास इनके रग-रग में समाया हुआ है। मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक जन-मानस को झकझोरने और राष्ट्रचेतना जाग्रत करने में सहायक सिद्ध होगी।

जहाँ तक इस पुस्तक के प्रकाशन का प्रश्न है यह पुनीत कार्य इस लिये सफल हो पाया कि पिपुल्स कोऑपरेटीव हाउस कंस्ट्रक्सन सोसाइटी लि० कंकड़बाग, पटना के सचिव प्रो० एम० पी० सिन्हा ने हाथ बढ़ाकर अपनी उदारता का परिचय दिया। निश्चित रूप से उनका यह बढ़ा हुआ हाथ इस पुस्तक के लेखक प्रो० रामबुझावन सिंह जी के प्रति उनकी सहृदयता का परिचायक है। यहाँ यह कहना सर्वथा समीचीन होगा कि सहकारिता में अटूट आस्था रखनेवाले तथा पिपुल्स कोऑपरेटीव के पर्याय बन चुके प्रो० एम० पी० सिन्हा का इस जीवनी के नायक श्री सिद्धेश्वर जी के साथ भी एक लंबे अरसे से गहरा एवं अत्यंत आत्मीय लगाव रहा है और समाज, साहित्य तथा पत्रकारिता में इनके उल्लेखनीय अवदान को प्रो० सिन्हा ने न केवल सदैव मुक्त कंठ से सराहा है, वरन् उन्हें हमेशा प्रेरित और प्रोत्साहित कर उनका मनोबल भी बढ़ाया

है। यही नहीं, उनके संवादकत्व में दिल्ली से प्रकाशित राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक पत्रिका 'विचार दृष्टि' यदि अबतक लगातार पिछले सात वर्षों से नियमित रूप से पठनीय सामग्रियों के साथ निकल रही है तो इसका बहुत कुछ श्रेय प्रो० सिन्हा को भी जाता है। प्रो० सिन्हा तहेदिल से यह महसूस करते हैं कि वर्तमान समय में सस्ती लोकप्रियता के नाम पर जिस प्रकार कचरा, विकृत और अश्लील चीजें आज के पाठकों के समक्ष परोसी जा रही हैं, सिद्धेश्वर जी अपने समाज और राष्ट्र से संपृक्त होकर पत्रकारिता और रचना-कर्म के प्रति निष्ठावान एवं ईमानदार हैं और पत्रिका के संपादन का एक जोखिम भरा कार्य कर रहे हैं। प्रो० एम० पी० सिन्हा इनके इस कार्य से आश्वस्त हैं कि इन्होंने अपने समय, समाज और साहित्य के लिये संघर्ष के सर्वोत्तम औजार का चयन किया है। सामाजिक सरोकारों से जुड़े प्रो० सिन्हा जी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना मैं अपना दायित्व समझता हूँ, जिनकी सदाशयता का ही प्रतिफल है कि पिताजी के जीवन और विचारों पर केंद्रीत यह संकलन इस कलेवर में आप पाठकों के सामने आ पाया। एक बार पुनः उनके प्रति मैं प्रकाशन की ओर से आभार व्यक्त करता हूँ।

इस पुस्तक के लेखक प्रो. राम बुझावन बाबू तथा संपादक डॉ० शाहिद जमील के प्रति प्रकाशन की ओर से मैं हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ।

सिद्धार्थ प्रिन्टोग्राफिक्स के भाई संजय जी, राजू, बहन अंजलि, भाई दीपक, पियूष और अनुज धन्यवाद के पात्र हैं, जिन सबों ने अथक परिश्रम कर इसकी पांडुलिपि का कंप्यूटर पर अक्षर-संयोजन किया।

दिनांक : 19 जुलाई 2006 — सुधीर रंजन

'दृष्टि', यू. 207, शकरपुर,
विकास मार्ग, दिल्ली-1100092.
दूरभाष: 011-22059410, 22530652

प्रकाशक
सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन
दिल्ली

# अनुक्रम


समर्पण..... 3
संग्रह के संदर्भ में..... 5
संपादकीय..... 10
दो शब्द सिद्धेश्वर के..... 15
अभिमत..... 19
शुभाशंसा..... 37
पुरोवाक्..... 42
प्रकाशकीय..... 46


## खण्ड-एक

### *सिद्धेश्वर जी से साक्षात्कार*


व्यक्तिगत प्रश्नोत्तर..... 53
सामाजिक प्रश्नोत्तर..... 56
साहित्यिक प्रश्नोत्तर..... 62
विविध प्रश्नोत्तर..... 69


## खण्ड-दो

### *व्यक्तित्व*


लक्ष्य की साधना और इच्छाशक्ति..... 80
व्यक्तित्व पर जन्मभूमि का प्रभाव..... 81
शैक्षिक पृष्ठभूमि..... 82
सरकारी सेवा काल..... 83
सामाजिकता विरासत में..... 85
राष्ट्रीयता की भावना..... 89
उत्तर-दक्षिण मैत्री का साहित्यिक दूत..... 92
व्यक्तित्व की विशेषताएँ..... 95
अनुशासनप्रियता..... 102
सकारात्मक सोच..... 109
आशावादी दृष्टिकोण और कर्म के प्रति अटूट आस्था 112
राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रति समर्पण..... 116
दांपत्य जीवन..... 119
वक्तृत्व कुशलता..... 125
सांस्कृतिक चेतना..... 127
समय का सही प्रबंधन..... 129
संपादन और संपादकीय लेखन..... 131

## खण्ड-तीन

### *रचनाधर्मिता*


आरक्षण-अक्टूबर, 1990 ई0..... 147
बिहार के कुर्मी (निबंध संग्रह) प्रथम खंड, मई 1993 ई0.... 149
बिहार के कुर्मी (निर्देशिका) द्वितीय खंड, जून 1993 ई0.... 152
कल हमारा है: अक्टूबर 1994 ई0..... 153
यादें: वर्ष 1997 ई0..... 155
पतझर की सांझ: हाइकु काव्यसंग्रह, वर्ष 1998 ई0 157
समता के सपने: अक्टूबर, 1999 ई0..... 159
आत्ममंथन: फरवरी 2004 ई0..... 159
सुर नहीं सुरीले: सेन्र्यू काव्यसंग्रह, मार्च 2004 ई0.. 161
जागरण के स्वर: सेन्र्यू काव्यसंकलन, अप्रैल 2004 ई0. 162
हम और हमारा समाज..... 166
यह सच है-काव्य संग्रह..... 167
एक स्वप्नद्रष्टा की अंतर्कथा-जीवनी, वर्ष 2006 ई०.. 172
डॉ. मोहन: एक तपस्वी मन..... 174
समकालीन यथार्थबोध..... 175
साहित्य पर इनके अनुभव..... 175


## खण्ड-चार


कार्यकलाप : बोलती तस्वीरें..... 177


## खण्ड-पाँच

### *सांगठनिक क्रियाकलाप*


संगठन का औचित्य..... 210
पटेल सेवा संघ..... 218
राष्ट्रीय विचार मंच..... 222
पत्रकारिता को अभिनव आयाम..... 227
विचार दृष्टि..... 233
पीत पत्रकारिता..... 238
राष्ट्रीय अधिवेशन..... 243
राजनीति से लगाव..... 245
सामाजिक दायित्व..... 252
दोस्ती-एक वरदान..... 260
धर्म-कर्म..... 263
जिन्होंने संबल प्रदान किया..... 268
प्रसाद-परिवार का वंश वृक्ष..... 270
सिद्धेश्वर जी का संक्षिप्त जीवन-वृत्त..... 271

# खण्ड : एक

## सिद्धेश्वर जी से साक्षात्कार

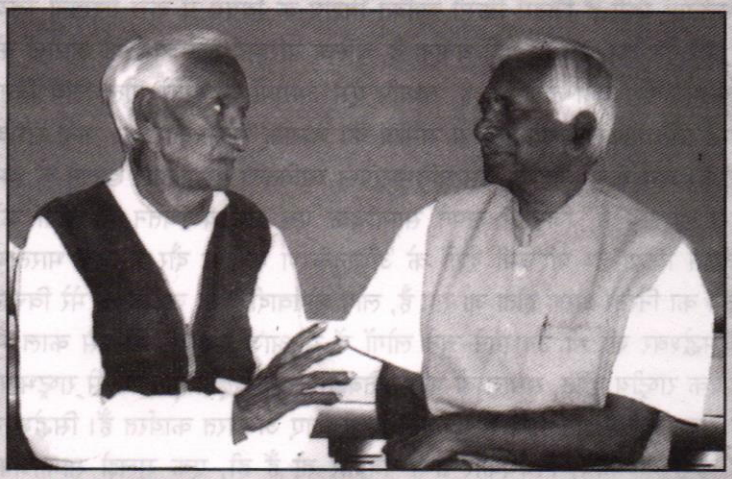

सिद्धेश्वर जी से साक्षात्कार करते हुए लेखक प्रो. राम बुझावन सिंह

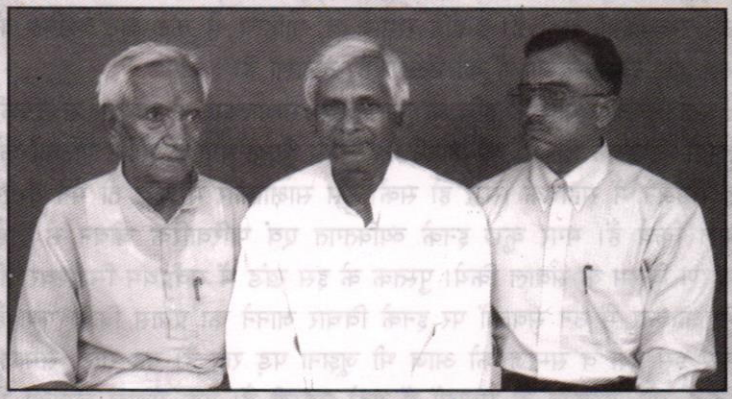

लेखक एवं संपादक के साथ श्री सिद्धेश्वर

# सिद्धेश्वर जी से साक्षात्कार

साहित्य में साक्षात्कार एक ऐसी उपयोगी विधा है जिससे किसी व्यक्ति या लेखक के बारे में सीधी-सीधी जानकारी मिल जाती है। साक्षात्कार में लेखक स्वयं अपने अच्छे-बुरे, पसंद-नापसंद विचारधारा के बारे में बयान देते हैं, इसलिए वे अधिक प्रमाणिक होते हैं।

इस बात से अवगत होते हुए भी कि आज के सामाजिक परिवेश की जटिलताएँ ऐसी हैं जिनमें किसी व्यक्ति विशेष के विषय में कुछ लिखना स्वयं को परिहास का पात्र ही नहीं बनाना है, बल्कि परिहार्य एवं व्यर्थ के आरोपों के लिये भागीदार बना लेना भी है, तथापि ऐसे आरोपों के खतरे मोल लिये बिना किसी प्रतिभाशाली व्यक्तित्व से समाज का सम्यक् साक्षात्कार कर पाना संभव नहीं है। सच कहा जाए तो वैसे प्रतिभासंपन्न व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने के हम आदी हो गये हैं, जिन्होंने अपने सामाजिक एवं राष्ट्रीय चिंतन से लोगों को उद्वेलित किया है। पश्चिमी देशों के अँधानुकरण के इस दौर में जब भारतीय मूल्यों का निरंतर क्षरण होता जा रहा है, लोग भोगवादी बनते जा रहे हैं, मेरे विचार से सिद्धेश्वर जी भी उन गिने-चुने लोगों में से आज एक हैं, जो इस काल में भी एक राष्ट्रीय दृष्टि, समाज के प्रति प्रतिबद्धता तथा दृढ़प्रतिज्ञ भाव से राष्ट्रभाषा की सेवा और मिशन भाव से पत्रकारिता के लिए अनवरत कार्यरत हैं। सिद्धेश्वर जी हिंदी के कवि, निबंधकार तथा पत्रकार तो हैं ही, एक सुलझे सामाजिक कार्यकर्त्ता भी हैं। इनकी छवि एक ऐसे साहित्यकार की है, जिसने जीवन की कठोर सच्चाईयाँ देखी हैं। इन्होंने समाज व साहित्य से कटे-कटे व्यक्ति के भीतरी मन और समस्याओं को टटोला है, तलाशा है।

साहित्य व समाज में रुचि के कारण इस साक्षात्कार के माध्यम से उनकी गुत्थियों पर इनके विचारों को जानने का प्रयास किया गया है, ताकि पाठकों को इन्हें समझने में सहायक सिद्ध हो सके। इस साक्षात्कार में कुछ तो मैंने गंभीर सवाल किये हैं। मगर कुछ इनके व्यक्तिगत एवं पारिवारिक जीवन से जुड़े साधारण किस्म के सवाल किये। पुस्तक के इस खंड में सर्वप्रथम सिद्धेश्वर जी से साक्षात्कार में उन सवालों पर इनके विचार जानने का प्रयास किया गया है जिनसे इस देश व समाज को आज भी जूझना पड़ रहा है। यह राष्ट्र, समाज, साहित्य और संस्कृति के सवालों में गहरे उतरती हैं। एक सवाल लेखकों से बार-बार पूछा जाता है, वह है साहित्यिक खेमेबाजी या गुटबंदी का। सिद्धेश्वर जी से भी यह सवाल किया गया है और इसका जवाब इन्होंने अपनी तरह से

दिया है। लेखकों के आपसी द्वेष, ईर्ष्या, लड़ाई, खींचतान और प्रतिद्वंद्विता पहले की तरह आज भी हैं जो स्वाभाविक है, लेकिन जो गुटबंदियाँ हैं वे साहित्य को कठघरे में बाँध देती हैं। बौद्धिक घृणा फैलाने के जो प्रयास चल रहे हैं, ये घटिया व्यापार हैं जो प्राय: प्रत्येक खेमा द्वारा किये जा रहे हैं।

इनके पूरे साक्षात्कार के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि सरल-सहज भाषा में अपने मन में उठे विचारों के बवंडर को व्यक्त कर देना इनकी सबसे बड़ी उपलब्धि है। समाज, साहित्य, कला, संस्कृति तथा पत्रकारिता जैसे विषयों पर अपने दो-टूक विचारों को व्यक्त कर इन्होंने अपनी जबरदस्त क्षमता और लेखन के विविध रूपों के दर्शन कराये हैं। साक्षात्कार में व्यक्त संवेदनाएँ यथार्थ की जमीन से उपजी हैं, सामाजिक समस्याओं की जड़ों में जाकर ये पड़ताल करते हैं। आप स्वयं दर्शन करें इनके विचारों के इस साक्षात्कार में।

## व्यक्तिगत प्रश्नोत्तर

**प्रश्न 1. आपकी उम्र 65 वर्ष से अधिक हो गयी है और अभी भी आप मन, बुद्धि और तन से स्वस्थ और सक्रिय हैं। आपके स्वास्थ्य और कर्मकौशल का क्या राज है ?**

उत्तर : शाकाहार, सादगी, आर्थिक शुचिता, कर्त्तव्य परायणता, सत्-संगति की आकांक्षा ही तन-मन और बुद्धि से स्वस्थ रहने के कारण हो सकते हैं।

**प्रश्न 2. आपकी पारिवारिक संरचना क्या है ? सामाजिक कार्यकर्ता होने और इसमें अधिक समय देने के कारण क्या आपको किसी पारिवारिक कठिनाई का सामना करना पड़ा ? यदि नहीं, तो इसका आधार क्या है ?**

उत्तर : मेरी पारिवारिक संरचना संयुक्त परिवार की रही है। भाई-बहनों में सबसे बड़े होने के कारण माता-पिता के अतिरिक्त परिवार के अन्य सदस्यों यथा चाचाओं, चाचियों, भाइयों तथा भाभियों का पूरा सहयोग मुझे बचपन से ही मिला। विशेष तौर पर पिता जी की सामाजिक मानसिकता होने के चलते सामाजिक कार्यों में उनका प्रोत्साहन मुझे भरपूर मिला। इनके अतिरिक्त मेरे पिताजी से भी अधिक उम्र की मेरे संयुक्त परिवार में एक ममतामयी भाभी थीं, जिनकी तेजस्विता और आचार-व्यवहार ने मेरे जीवन को काफी प्रभावित किया। बचपन में मेरे रहन-सहन, खान-पान आदि का पूरा दायित्व वे स्वयं संभालती रहीं और बाद में सरकारी सेवा में आने पर भी उन्होंने मेरे साथ रहकर मुझे पूरा स्नेह दिया।

शादी होने के बाद जब मेरी पत्नी श्रीमती बच्ची जी मेरे जीवन में आयीं तो उनका भी पर्याप्त सहयोग मुझे मिला और घर-परिवार के सभी कार्यों का दायित्व संभालकर उन्होंने मुझे सामाजिक तथा साहित्यिक कार्यों के लिए स्वतंत्र किया। कारण, कि मेरी सामाजिक प्रतिष्ठा से वे भी प्रभावित होकर उसे उन्होंने अपनी प्रतिष्ठा मान लिया और प्रतिष्ठा की कीमत पर पैसों से उन्होंने भी कभी समझौता नहीं किया, जिसका परोक्ष प्रभाव हमारे बच्चों पर भी पड़ा। आप इस बात से अवगत हैं कि विवाह एक ऐसा पवित्र बँधन है जो एक स्त्री व एक पुरुष को जीवन भर के लिए एक अटूट रिश्ते में बाँध देता है और जिसमें बँधकर पति-पत्नी एक-दूसरे के सारे सुखों व दु:खों को साथ-साथ बाँटकर आगे बढ़ने का निर्णय लेते हैं। पति-पत्नी के रिश्ते की यह बुनियाद परस्पर प्रेम, त्याग, सेवा व समर्पण रुपी ईंटों पर होती है, न कि अहम् रूपी ईंटों पर। इस बात का ख्याल हम दोनों पति-पत्नी को समान रूप से रहा। इसलिए हमारे सामाजिक कार्यों में कभी कोई व्यवधान नहीं आ पाया। संयुक्त परिवार के प्राय: सभी सदस्यों के सहयोग के कारण पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में मुझे किसी भी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। आज भी जब मुझे पटना से दिल्ली और दिल्ली से देश के विभिन्न राज्यों का दौरा करना पड़ता है, तो मेरी अनुपस्थिति में मेरी श्रीमती जी ही बच्चों की देख-रेख और उनके शिक्षण की व्यवस्था करती हैं। इसके परिणामस्वरूप हमारे परस्परावलंबन ने अधिक समय तक सामाजिक एवं साहित्यिक काम करने की सहूलियत दी।

**प्रश्न 3. आपका संबंध पटना के अतिरिक्त दिल्ली, चेन्नै, बैंगलोर, हैदराबाद, तिरुवनंतपुरम, मुंबई, अहमदाबाद, जयपुर, भुवनेश्वर तथा कोलकाता आदि स्थानों से रहा है। इनमें से किस स्थान के साथ आप अब भी अधिक जुड़ाव महसूस करते हैं, और क्यों ?**

उत्तर : रेलवे हिंदी सलाहकार समिति के सदस्य होने के नाते रेलवे में राजभाषा हिंदी के प्रगामी प्रयोग को बढ़ावा देने तथा राष्ट्रीय विचार मंच एवं उसके मुख-पत्र 'विचार दृष्टि' के कार्यों के समन्वय हेतु राज्यों की अधिकतर राजधानियों में जाने का मौका मुझे मिलता रहा है और इस क्रम में उन स्थानों के अनेक साहित्यसेवियों, रचनाकारों, पत्रकारों, अधिकारियों तथा समाजसेवियों का सान्निध्य मुझे मिला है, उनके साथ स्नेह-संबंध बना है। फिर भी इधर पिछले तीन-चार वर्षों से दिल्ली में मंच तथा 'विचार दृष्टि' पत्रिका के राष्ट्रीय कार्यालय स्थापित होने के चलते मुझे अधिक समय वहीं देना पड़ता है। फलत: दिल्ली में आत्मीय एवं एक जैसे मन के लोगों को हमारा एक वृहत समाज हो

गया है, जिसके सहयोग से सामाजिक एवं साहित्यिक कार्यकलापों को मूर्तरूप देने में मुझे बहुत सहूलियतें मिल रहीं हैं। सर्वश्री पद्मश्री डॉ० श्याम सिंह 'शशि', गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव, यू सी अग्रवाल, डॉ. धर्मेंद्रनाथ 'अमन', डॉ. रमाशंकर श्रीवास्तव, डॉ. अनिल दत्त मिश्र, जे० एन० पी० सिन्हा, अमर नाथ 'अमर', श्रीमती अलका सिन्हा, सी०एस० पटेल, मिथिलेश कुमार, पं० ओम प्रकाश कौशिक, डॉ० सोमदत्त शर्मा 'सोम', संजय सौम्य, डॉ. मेदिनी प्रसाद राय, सीताराम सिंह, उमेश प्रसाद सिन्हा, ज्ञानेन्द्र नारायण सिंह, प्राणेन्द्र, ब्रजेन्द्र, शशिभूषण, अजित, अवधेश प्र० सिंह, अवधेश शर्मा, अवधेश कुमार सिन्हा, ईश्वर गोयल, डॉ. विजय नारायण मणि त्रिपाठी तथा डॉ. देवेन्द्र आर्य जैसी हस्तियों के साथ-साथ अहिंसा एवं अणुव्रत आंदोलन से जुड़े अनेक मुनि-संतों का सान्निध्य पाकर मैं गौरवान्वित हूँ और गर्व का अनुभव करता हूँ।

**प्रश्न 4. आपके जीवन का कोई सपना अधूरा रह गया क्या ? यदि हाँ, तो क्या ?**

उत्तर : हमारे देश के जनजीवन में आज राष्ट्रीयता की भावना प्रायः लुप्त होती जा रही है और सामाजिक जीवन में अनेक विसंगतियाँ एवं विद्रूपताएँ मौजूद हैं। मंच तथा पत्रिका के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना के साथ-साथ सामाजिक चेतना जाग्रत करने का अभियान जारी है। इसके लिए मैं अनवरत पहरुए की तलाश कर रहा हूँ जिसमें कुछ सफलताएँ मिली हैं, किंतु यह मंजिल अभी भी बहुत दूर है। इसलिए बहुत धैर्य के साथ इस दिशा में मैं लगा हुआ हूँ। हमारा मानना है कि यह काम कठिन अवश्य है, पर असंभव नहीं। यह भी नहीं कि यह एक-दो बरस का कार्य है। इसमें बर्षों लग सकते हैं। अतएव अपनी क्षमता और पुरुषार्थ से काम करते रहना है।

**प्रश्न 5. आपके जीवन का कोई पश्चात्ताप भी है ? यदि हाँ तो क्या?**

उत्तर : मेरे जीवन में कार्यकलापों को लेकर कोई भी पश्चात्ताप मुझे नहीं हुआ। अव्वल तो यह कि मैं पीछे मुड़कर कभी देखता ही नहीं। हमेशा मेरा ध्यान ध्येय पर रहता है। इसलिए पश्चात्ताप का कोई कारण नहीं दिखता।

**प्रश्न 6. आपके जीवन में अब तक का सबसे सुखद क्षण क्या रहा है ?**

उत्तर : सच्चरित्र एवं विचारवान् समाजसेवियों एवं साहित्यकारों का सान्निध्य सदैव सुखद रहा, क्योंकि उनके ही साहचर्य में रहकर कुछ सीखने एवं उनके गुणों को आत्मसात् करने का मुझे सुअवसर मिला और उनकी प्रेरणा से आया मुझमें जज्बा, प्रेम, निष्ठा और दायित्वबोध।

**प्रश्न 7. आपके बारे में कहा जाता है कि आप अधिक आशावादी हैं, आपकी इस आशावादिता के पीछे क्या राज है?**

**उत्तर :** इसमें कतई संदेह नहीं कि मैं बेहद आशावादी हूँ। कारण कि मेरी मान्यता है कि आशावादी व्यक्ति ही अपने सपने को साकार करने की क्षमता रखता है। हमारी समझ ही इस आशावादिता के पीछे का राज है। मेरी समझ है कि किसी व्यक्ति को कर्मयोगी होने के साथ-साथ आशावादी भी होना चाहिए तभी वह जीवन में बड़े और अच्छा काम कर सकता है। आशावादी दृष्टि एक ऐसी प्रेरणात्मक शक्ति है जो हमें सकारात्मक लक्ष्य तक पहुँचने के लिए प्रेरित करती है, जो सभी बाधाओं को दूर कर सफलता की ओर ले जाती है और कठिन परिश्रम करने के लिए प्रेरित करती है।

**प्रश्न 8. क्या भाग्यवाद में आपका विश्वास है?**

उत्तर : नहीं, कतई नहीं। बल्कि सच तो यह है कि मैं भाग्यवाद का विरोधी हूँ, क्योंकि मेरा स्पष्ट मत है कि भाग्यवाद कर्म के प्रति विकर्षण पैदा करता है। फलत: भाग्यवादी व्यक्ति भाग्य के भरोसे हाथ पर हाथ धरे बैठा रहता है और अंतत: वह समाज पर बोझ के समान हो जाता है।

## सामाजिक प्रश्नोत्तर

**प्रश्न 1. आप प्राय: राष्ट्रीय विचार मंच एवं 'विचार दृष्टि' पत्रिका के उद्देश्यों एवं क्रियाकलापों की चर्चा किया करते हैं, आपने इन्हें किन रूपों में ग्रहण किया है ?**

उत्तर : 'राष्ट्रीय विचार मंच' राष्ट्रीय चेतना का एक वैचारिक मंच है और 'विचार दृष्टि' राष्ट्रीय चेतना की एक वैचारिक संवाहिका। यह एक ऐसा सार्थक एवं सशक्त मंच है जिसके माध्यम से सामाजिक-राजनीतिक ताने-बाने से लेकर साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक मुद्दों पर बड़ी निर्भीकता एवं निष्पक्षता से विश्लेषण किया जाता है और जनमानस को झकझोर कर उसमें राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने का प्रयास किया जाता है। कारण, कि आजादी के बाद देशवासियों में राष्ट्रीयता की भावना का द्रुत गति से ह्रास होते देखा जा रहा है। मंच की शाखा देश के प्राय: प्रत्येक राज्य में स्थापित है। राष्ट्रीय महासचिव की हैसियत से मैं उन सारे क्षेत्रों में जाकर उनके कार्यों के समन्वयन के साथ दिशा-निर्देश देने की कोशिश करता हूँ।

'विचार दृष्टि' मंच का मुख्य पत्र है, जो उसके उद्देश्यों को मूर्त्तरूप प्रदान करने में सहयोग करता है। यह शुद्ध रूप से एक वैचारिक पत्रिका है, जो प्रबुद्धजनों को स्वस्थ मानसिक खुराक प्रदान करती है और बुद्धिजीवियों को

नकली कुहासेवाले खोल से बाहर आकर तथा अपनी तटस्थता त्याग कर जनचेतना जगाने के लिए प्रेरित करती है। यह पत्रिका उत्तर और दक्षिण के बीच की खाई को भी कम करने का एक महत्त्वपूर्ण दायित्व निभा रही है। आज इस देश में जो कुछ धर्म-कर्म, अधर्म, कर्म-कुकर्म, सामाजिक विघटन, विध्वंश, राजनीतिक स्वार्थांधता आदि की अतिवादि वृर्तियाँ हो रही हैं, इन्हें लोग देख-सुन तो रहे हैं, फिर भी मौन हैं। शायद इसलिये कि इस कुचक्र में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में वे भी जुड़े हुये हैं या फिर तटस्थ बने हुये हैं। मैं न तो मौन रहना चाहता हूँ और न तटस्थ ही। कारण कि मैं यह महसूस करता हूँ कि अपने शाश्वत साहित्य, भारतीय संस्कृति, गौरवशाली परंपरा, राष्ट्रीय अस्मिता, सांप्रदायिक सद्भाव-सौहार्द, सामाजिक समरसता, राष्ट्रीय एकता व अखंडता आदि की रक्षा करना, उनकी श्रीवृद्धि करना हमारा नैतिक एवं राष्ट्रीय दायित्व ही नहीं, पावन कर्त्तव्य भी है। राष्ट्रीय विचार मंच और उसके मुख-पत्र 'विचार दृष्टि' के साथ-साथ साहित्य-लेखन के जरिये मैं अपने उस राष्ट्रीय दायित्व एवं कर्त्तव्य का निर्वहन कर रहा हूँ जिससे मुझे आत्मिक सुख व शांति मिलती है।

**प्रश्न 2. इलाहाबाद एवं पटना उच्चन्यायालय के माननीय न्यायाधीश तथा राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग के तत्त्कालीन अध्यक्ष स्व. बनवारी लाल यादव के संपर्क में आप कैसे आये ? न्यायाधीश श्री यादव का विश्लेषण आप किस रूप में करना चाहेंगे ?**

उत्तर : राष्ट्रीय विचार मंच की स्थापना के पूर्व मैं लौह पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल के आदर्शों एवं विचारों पर आधारित स्वैच्छिक संस्था पटेल सेवा संघ, बिहार का महासचिव था। लौह पुरुष सरदार पटेल के जयंती-समारोह में एक बार मैंने न्यायाधीश श्री बनवारी लाल यादव को मुख्य अतिथि के रूप में सादर आमंत्रित किया। उक्त समारोह में जब मैंने महासचिव का प्रतिवेदन प्रस्तुत किया तो माननीय न्यायाधीश उसके क्रियाकलापों से अवगत हुए और उसके दूसरे या तीसरे दिन ही उन्होंने मुझे भोजन पर आमंत्रित किया। संघ की सारी गतिविधियों और मेरे द्वारा किये जा रहे सामाजिक एवं साहित्यिक कार्यों से पूर्णत: अवगत होने के पश्चात् उन्होंने मुझे हर संभव सहयोग प्रदान करने का आश्वासन दिया तथा एक पत्रिका प्रकाशित करने का मुझसे अनुरोध किया। 'विचार दृष्टि' पत्रिका के प्रकाशन का श्रेय उन्हीं को जाता है। सेवा निवृत्त होने के बाद जब उन्होंने उच्चतम न्यायालय में वरीय अधिवक्ता की सेवा शुरू की, तो वे राष्ट्रीय विचार मंच की दिल्ली इकाई के अध्यक्ष और बाद में उसके राष्ट्रीय अध्यक्ष के पद पर रहकर उन्होंने मेरा मार्गदर्शन किया। यहाँ तक कि भारत सरकार द्वारा

राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग के अध्यक्ष बनाये जाने के बाद भी मंच के राष्ट्रीय अध्यक्ष के रूप में अपनी सेवा उन्होंने जारी रखी।

**प्रश्न 3. भारतीय प्रशासनिक सेवा के वरिष्ठ अधिकारी और भारत सरकार के पूर्व मुख्य सतर्कता आयुक्त श्री यू सी अग्रवाल के संपर्क में आप कब और कैसे आये ?**

उत्तर : दरअसल मंच के राष्ट्रीय अध्यक्ष न्यायाधीश श्री बी. एल. यादव की हृदय गति रुक जाने के कारण जब उनका अचानक देहावसान हो गया तब मंच के राष्ट्रीय अध्यक्ष पद के लिए न्यायाधीश श्री यादव सरीखे एक ईमानदार, कर्मठ, प्रखर वक्ता एवं कलम के धनी व्यक्तित्व की तलाश होने लगी। भारत सरकार के पूर्व विधि सलाहकार डॉ. विजय नारायण मणि त्रिपाठी जी के सौजन्य से एक बार श्री यू. सी. अग्रवाल जी को मंच की ओर से राजघाट स्थित गाँधी स्मृति एवं दर्शन समिति के सभागार में आयोजित एक संगोष्ठी में मुख्य वक्ता के रूप में आमंत्रित करने का मुझे अवसर मिला। उसके बाद से ही उनसे मैं जुड़ गया और डॉ. त्रिपाठी एवं डॉ. अनिलदत्त मिश्र के सहयोग से मंच के राष्ट्रीय अध्यक्ष के लिए उन्हें राजी किया गया। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि श्री अग्रवाल के जुड़ने से मंच को एक सच्चे ईमानदार एवं विचार के धनी व्यक्ति मिल गये हैं जिनके नेतृत्व में इसकी गतिविधियों को बल मिला है। वे नम्र, जिज्ञासु और योग्य प्रशासक तो हैं ही, व्यक्ति को परखने की अद्‌भुत क्षमता भी उनमें है। सबसे बड़ी बात यह है कि अपनी अंत:प्रेरणा से काम करने की विलक्षण शक्ति श्री अग्रवाल में है।

**प्रश्न 4. भारतीय समाज अस्वस्थ है, प्राय: ऐसा कहा जाता है। क्या आप इस अभिमत से सहमत हैं ? स्वस्थ समाज की क्या परिभाषा हो सकती है? राष्ट्र को सबल बनाने में उसकी क्या भूमिका हो सकती है ?**

उत्तर : भारतीय समाज आज अस्वस्थ है, इस बात से मैं सहमत हूँ क्योंकि इसमें नैतिक मूल्य-मर्यादाओं एवं सांस्कृतिक अस्मिता का जिस तेजी से क्षरण हो रहा है, वह चिंतनीय है। पश्चिमी उपभोक्तावादी संस्कृति ने भारतीय समाज को भीतर से तोड़ा है, इसे छिन्न-विच्छिन्न किया है, जिसके परिणामस्वरूप इसके सदस्यों में भौतिकतावादी प्रवृत्तियाँ हावी हैं, जिसके चलते सामाजिक विसंगतियों और विद्रूपताओं का दौर जारी है। संयुक्त परिवार में बिखराव आ गया है। भौतिक विज्ञान और तकनीक में भारतीय समाज ने जो विकास किया है, वह मानवकल्याण के लिए कितना उपयोगी है, यह विचारणीय है। आज उसका उपयोग शोषण, दमन और प्रकृति दोहन के लिए किया जा रहा है, क्योंकि उसके

समक्ष केवल भोगवाद का ही आदर्श है। इसलिए समाज अस्वस्थ है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी की शक्ति को जब मानवीय मूल्यों और मानव कल्याण की ओर मुखातिब किया जाएगा तभी भारतीय समाज को स्वस्थ और विकसित होने में मदद मिलेगी। बिना स्वस्थ समाज के सबल राष्ट्र की कल्पना नहीं की जा सकती, क्योंकि भारतीय समाज में व्याप्त विसंगतियों का प्रभाव राष्ट्र की प्रगति पर प्रतिकूल रूप से पड़ता है।

**प्रश्न 5. आपकी अभिरुचि राजनीति में भी प्रारंभ से ही रही है। क्या आप हमें यह बताएँगे कि राजनीति और धर्म का समन्वय कहाँ तक उचित और कहाँ तक अनुचित है ?**

उत्तर : हाँ, आपका यह कहना कि मुझे प्रारंभ से ही राजनीति में अभिरुचि रही है, सही है। मैं आज भी यह मानता हूँ कि बिना विचारवान् एवं अच्छे लोगों के प्रवेश से राजनीति अच्छी नहीं हो सकती। जहाँ तक राजनीति और धर्म के समन्वय के औचित्य अथवा अनौचित्य का सवाल है, आज राजनीति साम, दाम, दंड और भेद पर चलती है जिसकी वजह से राजनीति आज समाज को जोड़ने की बजाय तोड़ती है। किंतु धर्म तो समाज को धारण करता है अर्थात् इसको इकट्ठा करता है। यदि धर्म के इस सिद्धांत के अनुशासन में राजनीति काम करती है तो वह उचित है, परंतु आज तो अर्थ और काम दोनों धर्म के अंकुश में नहीं हैं। इसलिए उनकी स्वेच्छाचारिता एवं निरंकुशता के कारण समाज, सत्ता और राजनीति अनुचित रास्ते पर चल रही है। राजनीति में मजहब के इस्तेमाल का खेल एक लंबे अरसे से चल रहा है मगर आज तो इससे देश की राजनीति का चेहरा ही विकृत हो चुका है।

**प्रश्न 6. आप स्नातक तक अर्थशास्त्र के विद्यार्थी रहे हैं। इस नाते एक अहम प्रश्न हम पूछना चाहेंगे। अब तक समाज को सरकार शासित करती थी, पर अब इधर वह बाजार से शासित हो रहा है, सरकार हिंसा पर आधारित होती है और बाजार असत्य पर। ये दोनों ही सत्य और अहिंसा के सिद्धांत से विपरीत हैं। आप दोनों में अधिक घातक किसे मानते हैं ? अथवा तीसरा विकल्प क्या हो सकता है ?**

उत्तर : सरकार हिंसा पर निर्भर होती है और बाजार असत्य, स्वार्थ और दंभ पर आधारित है। ये दोनों नैतिकता के सिद्धांत के विपरीत हैं। सरकार अपनी तानाशाही से और बाजार अपने आर्थिक साम्राज्यवाद की वजह से व्यक्ति और समाज के लिए घातक है और आज के दौर में इन दोनों का परस्पर गठबंधन है। कारण, कि संपत्ति के बिना सरकार नहीं चल सकती और सरकार के संरक्षण

के बिना बाजार नहीं टिक सकता। इन दोनों के दमन और शोषण से यदि छुटकारा पाना है तो एक ही विकल्प है-ग्राम परिवारव्यवस्था। परिवार की स्नेहपूर्ण व्यवस्था मानव को स्वतंत्रता, समता और बंधुता का अनुभव करा सकती है। आज के वैज्ञानिक युग में जब सारी दुनिया एक-दूसरे के निकट आयी है तो वहाँ भारत जैसे गाँवों के देश में ग्राम-परिवार यानी गाँवों तक विकास की किरणों का जाना जरूरी है। जब तक इस देश के गाँव नहीं विकसित होंगे, राष्ट्र की प्रगति नहीं कही जा सकती।

यह सच है कि 'राज्य' की जगह 'बाजार' लेता जा रहा है। यह एक बहुत बड़े बदलाव की शुरुआत है। इसका संबंध भी किसी-न-किसी प्रकार वैकल्पिक सत्ताकेंद्रों के क्षय से है। आज जिस प्रकार समग्र जीवन का बाजारीकरण हो रहा है उससे नागरिक समाज की समृद्धि और उसके संकुल चरित्र को बाजारीय सतहीपन और सरलीकरण में सीमित कर दिया जाएगा यानी नाना प्रकार के नागरिक समाजों को विश्वव्यापी दैत्याकार सुपर मार्केट की शाखाओं में बदल दिया जाएगा। इसी क्रम में आगे चलकर विभिन्न प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं के ऊपर एक ही तरह की व्यापारिक और उपभोक्तावादी संस्कृति छा जाएगी। न गाँव बचेंगे, न हाट। इसके पीछे शक्तिशाली आर्थिक दबाव है। एक बड़े विचारधारात्मक हमले द्वारा जमीन तैयार की जा रही है। इसका एकमात्र विकल्प है राष्ट्रीय जनांदोलन।

**प्रश्न 7. जातिप्रथा को समाज का कोढ़ कहा जाता है, खासकर तब जब जाति का राजनीतिकीकरण हो गया। आप कहाँ तक इस बात से सहमत हैं ? जातिप्रथा की समाप्ति के लिए क्या किया जा सकता है।**

उत्तर : भारत की प्राचीनता व विशालता के साथ जाति, संप्रदाय, भाषा, प्रांत इत्यादि विभिन्नताओं ने समाज की संरचना को जटिलता प्रदान की है। इस देश में जाति, संप्रदाय, भाषा तथा क्षेत्रीयता राजनीतिक मूल में रहे हैं और यहाँ जातिविभाजन विकट रूप में पाया जाता है।

दरअसल वयस्क मताधिकार के प्रयोग ने जाति के राजनीतिकीकरण की प्रक्रिया को आश्चर्यजनक रूप से प्रभावित किया है। अंततः इसके दुरुपयोग से जाति का राजनीतिकीकरण हो गया है। यही कारण है कि सभी राजनीतिक पार्टियाँ जाति संगठनों का चुनाव में दुरुपयोग करती हैं और उनके नेतागण उन्हीं जातीय संगठनों के आधार पर एक-दूसरे को लड़ाने का काम करते हैं। जहाँ एक ओर जातीय व्यवस्था के परिणामस्वरूप राजनीतिक शक्ति उन वर्गों व समूहों में पहुँची है, जो अभी तक सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक दृष्टि से उपेक्षित एवं

वंचित रहे हैं, वहीं दूसरी ओर राजनीति में जाति की भूमिका को गलत रूप में ग्रहण करने की वजह से इसकी सकारात्मक एवं रचनात्मक भूमिका की अवहेलना की गयी है। फलतः जातीयता आज समाज के समक्ष कोढ़ के रूप में देखी जा रही है।

लोहिया के विचारों एवं सिद्धांतों के मद्देनजर हमें इतिहास को एक नयी दृष्टि से देखना होगा, ताकि ये उभरे हुए मूल्य, जो सामाजिक विषमता पर सीधे प्रहार करते हैं, कहीं एक बार फिर आभिजात्य वर्ग के कुचक्र का शिकार न बन जाए। इसलिए जातीयता पर प्रहार करने के लिए सदियों से उपेक्षित जातियों और वर्गों को विशेष अवसर के सिद्धांत के आधार पर शासनतंत्र संचालन में भागीदारी की सुरक्षा का प्रबंध करे, क्योंकि आज भारत वस्तुतः अस्मिता के संकट से गुजर रहा है। न दशा निश्चित है और न ही दिशा। कोई भविष्यवाणी संभव नहीं दिखती। आज स्थिति यह है कि समाज का प्रत्येक तबका, प्रत्येक व्यक्ति संविधान के मौलिक अधिकारों की माँग कर रहा है। आज तक ये मूल अधिकार अधिकांशतः संविधान के पन्नों तक सीमित रहे और कुछ ही लोगों को, एक वर्ग विशेष को, ये अधिकार वास्तव में मिले। समाज का वर्तमान ढाँचा इस माँग को पूरा करने में सक्षम नहीं है। सारा ढाँचा चरमराता दिखायी दे रहा है। प्रत्येक नागरिक के मन में स्वतंत्रता की भूख जगी है। केवल वोट देने की स्वतंत्रता नहीं, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्वतंत्रता भी चाहिए। उसे बराबरी का हक भी चाहिए। कोरा आश्वासन नहीं, ठोस बराबरी, जिसे वह महसूस कर सके। इसके अतिरिक्त वह बंधुत्व के साथ-साथ अंशत्व का बोध भी चाहता है। इसी अंशत्व के बोध का नाम अस्मिता है। जातीयता के कोढ़ से तभी मुक्ति मिल सकती है।

समाज में आज जो संकुचित जातीयता है, वह मानवता से कोसों दूर है। ऐसी संकुचितता इस विपरीत युग में अत्यंत निंदनीय और त्याज्य है। इस तथ्य के मद्देनजर सामाजिक जड़ता अर्थात् जातिवाद की बढ़ती प्रवृत्तियों पर प्रभावी अंकुश की जरूरत है। सच तो यह है कि लोहिया के अवतरित होते ही समाज में नये परिवर्तन के सूत्र बने--वोट, फावड़ा और जेल। देशवासियों में एक नयी ललक जगी। उनका पहला प्रहार जन्मना वर्णव्यवस्था पर रहा, जिसे तोड़ने के लिए विशेष अवसर यानी समान अवसर का सिद्धांत सामने आया, जिससे सदियों से उपेक्षित और समाज का अछूत बना हिस्सा समाज की मुख्य धारा से पुनः जुड़ने लगा। लोहिया का यह जीवनदर्शन समाज में समानता लाने का मौलिक मार्ग था, जिसने देश के चिंतन की धारा को एक नया मोड़ दिया।

## साहित्यिक प्रश्नोत्तर

**प्रश्न 1. क्या आप अनुभव की मौलिकता को साहित्य का मेरुदंड मानते हैं? यदि हाँ, तो क्यों?**

उत्तर : हाँ, अनुभव की मौलिकता ही साहित्य का चिरंतन मेरुदंड है। उनकी शाश्वत शिराओं में एक ही चिरंतन सत्य प्रवाहित है-अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता। उसके होने का एक ही सरोकार है-मानवता। मानव की स्वतंत्रता जीवन और समाज में नहीं, बल्कि साहित्य और कलाओं में सुरक्षित हैं। इनमें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का मसला सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। पिंजड़े का तोंता अंडे नहीं देता। वह अधिक-से-अधिक संस्कृत के रटे-रटाये श्लोक बोल सकता है। अंडे देने के लिए उसे मुक्त आकाश चाहिए। उसे स्वयं के श्रम से बनाया हुआ घोसला चाहिए। उसे मौलिकता का आकाश और अनुभव की लंबी उड़ानें चाहिए। सन् 1954 ई० में, साहित्य अकादमी पुरस्कार समारोह को संबोधित करते हुए डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने कहा था- "No great literature can be produced unless men have the courage to be lovely in their minds, to be free in their thoughts and to express whatever occures to them. Freedom of spirit is the first essential of any kind of literature. That must be protected."

**प्रश्न 2. भारतीय पत्रकारिता आज अपने दायित्व का निवर्हन नहीं कर पा रही है, इसलिए इसे पीत पत्रकारिता कहा जा रहा है। आप कहाँ तक इस बात से सहमत हैं ? इसकी भूमिका पर भी संक्षेप में प्रकाश डालिए।**

उत्तर : बिना किसी भेदभाव व पूर्वाग्रह के तटस्थ रहकर सामाजिक दायित्वों के निर्वहन हेतु लोककल्याण की भावना से जनजीवन में चेतना जागरित करने के ख्याल से पत्रकारिता की शुरुआत हुई थी, किंतु आजकल नकारात्मक पक्ष को उजागर करना मानो पत्रकारिता का युगधर्म बन गया है। समाज के रचनात्मक कार्यों को पत्र-पत्रिकाओं में कम महत्त्व दिया जाता है। आज तो हत्या, बलात्कार, अपहरण, चोरी, डकैती, भ्रष्टाचार, अपराध, राजनीतिक षड्यंत्र इत्यादि के समाचार ही अखबारों के मुख्य पृष्ठों पर सुर्खियों में देखने को मिलते हैं। विकास, सभ्यता, संस्कृति, साहित्य एवं अन्य सर्जनात्मक कार्य हाशिये पर चले गये हैं। इसी वजह से पत्रकारिता को आज पीत पत्रकारिता कहा जाता है। इसके चलते सामाजिक सरोकार की पत्रकारिता आज खण्डित हो रही है।

आज के बदलते परिवेश में पत्रकारिता का उद्देश्य लोक कल्याण और लोकहित है। सेवाव्रती संस्कार पत्रकारिता का प्राणतत्त्व है और सत्यान्वेषण पत्रकारिता का युगधर्म। सूचनाओं का संप्रसारण, लोकशिक्षण, मनोरंजन, लोकजागृति, सामाजिक विद्रूपताओं को दूर करना, जनमत तैयार करना, रुचि का परिष्कार इत्यादि सामाजिक दायित्वों के निर्वहन में पत्रकारिता की अहम भूमिका है। पत्रकार समाजिक सरोकारों का न्यासी होता है। इसके लिए वह न केवल अपने व्यक्तिगत स्वार्थ का त्याग करता है, बल्कि कभी कभी उसे अपने प्राणों की बाजी भी लगानी पड़ती है। आजादी के पूर्व पत्रकारिता एक मिशन थी, किंतु अब इस पर व्यावसायिकता हावी हो गयी है और सामाजिक सरोकार की अवधारणा गौण होती जा रही है।

आज सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार, बेईमानी आदि कुप्रवृत्तियों के काले बादल जिस भयावह रूप में यहाँ मंडरा रहे हैं, पत्रकारिता की भूमिका अहम हो जाती है। सामाजिक बुराइयों पर अंकुश लगाने के साथ-साथ जनता और सरकार के बीच पत्रकारिता एक कड़ी का काम कर सकती है, शोषितों और पीड़ितों की आवाज को बुलंद कर सकती है और मानवीय गुणों के विकास का मार्ग प्रशस्त कर सकती है। सामाजिक समस्याओं के समाधान हेतु विकल्प प्रस्तुत करने तथा लोगों की वैचारिक मान्यताओं के सुदृढ़ीकरण में भी पत्रकारिता की अहम् भूमिका है। इसी प्रकार सामाजिक विद्वेष और दंगों को रोकने तथा सामाजिक मूल्य-मर्यादाओं को अक्षुण्ण बनाये रखने में पत्रकारिता अहम् भूमिका अदा कर सकती है।

**प्रश्न 3. भारतीय संस्कृति का स्वरूप आज क्यों बिगड़ता जा रहा है ? धर्म के रास्ते भी आज विपरीत दिशा की ओर जाते दिख रहे हैं, आखिर क्यों ?**

उत्तर : वर्तमान समय की भोगवादी पश्चिमी संस्कृति में प्राचीन संस्कृति के सभी शाश्वत मूल्यों का क्षरण देखने को मिल रहा है। आधुनिकता की अंधी दौड़ में आज तेजी से संस्कारों की उपेक्षा हो रही है जो सामाजिकता के लिए घातक है। आज की आपाधापी के दौर में संस्कारवान् परिवारों की कमी होती जा रही है। पश्चिमी संस्कृति की चकाचौंध में अपनी ही संतानों में माता पिता के संस्कारों एवं मर्यादाओं का न होना भारतीय संस्कृति के बिगड़ते स्वरूप का द्योतक है। संस्कारहीन समाज की स्थिति जंगलराज जैसी होती है, जिसमें अराजकता का जन्म होता है।

हमारी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति हमें यही सिखाती हैं कि हमारा जीवन

तभी धन्य होगा जब हम अधिक-से-अधिक दूसरों के काम आ सकें। संस्कारों से ही व्यक्तित्व का निर्माण होता है। किंतु सभ्यता और विकास के नाम पर आज कुटिलता, स्वार्थ, प्रतियोगिता और आक्रामकता ही आज हमारी शिक्षा और समाज को खाती हैं। वैश्वीकरण और उदारीकरण के इस दौर में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के अति आकर्षक, चटक-मटक वाले सौंदर्य प्रसाधनों ने अंदर की प्राकृतिक सुंदरता को नष्ट कर दैहिक सुंदरता को ही बढ़ावा दिया है। साथ ही अपनी संस्कृति के अवांछित तत्त्वों को भी समाज में फैलाकर हमारी भारतीय संस्कृति की पवित्रता को भी नष्ट कर रही है। प्राचीन शास्त्रीय संगीतों एवं वैदिक लोकनृत्यों में घुसपैठ कर चुके पॉप संगीत एवं फूहड़ नृत्य इस अपसंस्कृति के ही उदाहरण हैं। इन्हीं सब कारणों से हमारी भारतीय संस्कृति का स्वरूप आज बिगड़ता जा रहा है।

जहाँ तक धर्म का सवाल है आज हम जिस परिवेश में जी रहे हैं इसमें धर्म और वैमनस्य के जाल में फँसा मनुष्य दिशाहीन हो रहा है। धरती अधर्म के भार से बोझिल हो रही है, मनुष्य-मनुष्य पर संदेह कर रहा है, क्योंकि धर्म, मत या मजहब आज उन्हें जोड़ने की बजाय तोड़ने का काम अधिक कर रहे हैं। ऊँच-नीच का भाव उनमें बरकरार है। अंध-विश्वास ने हमें अँधा बना रखा है जिसके कारण हम पथभ्रष्ट होते जा रहे हैं। वस्तुत: प्राणी मात्र की भलाई के लिए अपने स्वार्थों का त्याग करना और तदनुरूप कर्म करना ही मजहब है। किंतु धर्म के ठेकेदारों द्वारा मजहब की दुकान खोलने की वजह से उसके रास्ते विपरीत दिशा की ओर जाते दिख रहे हैं।

**प्रश्न 4. सामाजिक परिवर्तन में साहित्य की क्या भूमिका है ? अथवा साहित्य में सामाजिकता के मामले में आपका पक्ष क्या है ? कृपया स्पष्ट करें । साहित्य विधा में राजनीति के प्रवेश को आप किस रूप में देखते हैं ? भारतीय साहित्य के समक्ष आज कौन-सी नयी चुनौतियाँ हैं ?**

उत्तर : विचारों की अभिव्यक्ति के परिणामस्वरूप ही समाज में बदलाव आता है। साहित्य विचारों की अभिव्यक्ति है। इस प्रकार साहित्य के माध्यम से विचारों की अभिव्यक्ति द्वारा सामाजिक परिवर्तन को अंजाम दिया जा सकता है। प्रेमचंद, पंत, प्रसाद, 'रेणु' तथा शरद जैसे साहित्यकारों ने उच्च कोटि की साहित्य रचना द्वारा समाज को नयी दिशा प्रदान की है। साहित्य एक ऐसी विधा है जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने आपका, समाज का और राष्ट्र का मूल्यांकन कर सकता है। साहित्य और समाज का संबंध है। एक ओर जहाँ साहित्य समाज से प्रभावित होकर उसे प्रतिबिंबित करता है, वहीं दूसरी ओर उसे परिवर्तित तथा

संशोधित करने में भी अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वैसे साहित्य का उद्देश्य भी सामाजिक विकास रहा है। साहित्य एक ऐसे समाज की संरचना करना चाहता है, जो वर्तमान समाज से प्रत्येक स्तर पर अपेक्षाकृत उत्कृष्ट हो। साहित्य मात्र मानव के किसी वर्ग, जाति, विशिष्ट भाषा-भाषी या देश तक सीमित न होकर, अपने विभिन्न रूपों में, समस्त मानव जाति को एकता के सूत्र में पिरोने का कार्य करता है। साहित्य का मूल दृष्टिकोण मानवकल्याण, सामाजिक एकता एवं उत्थान रहा है। साहित्यकारों ने सदैव लोगों को प्रांतीयता, छुआछूत, ज़ातिवाद, सांप्रदायिकता, अनुशासनहीनता, स्वार्थपरता इत्यादि की भावनाओं एवं भाषाई संघर्ष से ऊपर उठने का संदेश दिया है। धार्मिक एवं सांप्रदायिक क्षेत्र में भले ही समय-समय पर कुछ उतार-चढ़ाव रहे हों, किंतु फिर भी साहित्य का मुख्य लक्ष्य सामाजिक उत्थान ही रहा है इस प्रकार सामाजिक परिवर्तन में साहित्य की महती भूमिका है।

चिंता का विषय यह है कि इधर हाल के वर्षों में साहित्य विधा के साथ भी राजनीति शुरू हो गयी है, जिसके चलते साहित्यलेखन के लिए जिसे सम्मानित किया जाना चाहिए, उसे न कर कुछ ऐसे साहित्यकारों को सम्मान दिया जा रहा है जो राजनीति के इर्द-गिर्द परिक्रमा करते हैं। साहित्य में राजनीति के प्रवेश से साहित्यकारों में भी चाटुकारिता की प्रवृत्ति बढ़ गयी है, जिसकी वजह से वे सत्साहित्य की रचना में ध्यान न देकर राजनीतिज्ञों की आरती उतारने तथा उनके गुणगान में महिमा चालीसा लिखने में अपना ध्यान केंद्रीत किये हुए हैं। यही नहीं, उनका अधिकांश समय साहित्यसर्जन की जगह गणेश परिक्रमा में जाता है, जो चिंतनीय है।

जहाँ तक भारतीय साहित्य के समक्ष खड़ी नयी चुनौतियों का सवाल है, आज भी समता, समानता और न्याय की वही पुरानी चुनौतियाँ जस-की-तस हैं। कहाँ सुलझ पाया है सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय का सवाल ? अमीर और गरीब के बीच विषमता तो और बढ़ती जा रही है। अशिक्षा, गरीबी, भुखमरी और बेरोजगारी वहीं-की-वहीं हैं। बल्कि सच तो यह है कि वैश्वीकरण और उदारीकरण के चलते तो उनमें और बढ़ोत्तरी हुई है।

इसके अतिरिक्त राजनीति का अपराधीकरण, जातिवाद को बढ़ावा, सांप्रदायिकता में इजाफा स्पष्ट नजर आते हैं। फिर सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास, अपसंस्कृति का शोर-शराबा, मूल्य-मर्यादाओं का हनन कुछ ऐसी चुनौतियाँ हैं जिनका सामना साहित्यकारों को करना है। सबसे बड़ी चुनौती तो है संवेदनहीनता की, जिससे भारतीय साहित्य को सामना करना पड़ेगा। आज संवेदना की साझी विरासत को

सहेजना भारतीय साहित्य का सबसे बड़ा दायित्व हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति को आज एक-दूसरे का पूरक होना होगा, तभी मानवता बच पाएगी। साहित्य के समक्ष एक प्रमुख चुनौती यह भी है कि लेखक एवं कवि का नाता जनोपयोगी साहित्यसर्जन से टूटता जा रहा है। जब तक पुस्तकें उत्कृष्ट व जनोपयोगी लेखन से सराबोर, सस्ती और लेखकों की खेमेबंदी से मुक्त नहीं होंगी, तब तक वे पाठकों को अपनी तरफ आकर्षित नहीं कर सकतीं। इसके लिए लेखक, प्रकाशक और प्रशासक को गंभीर विचार-विमर्श करना चाहिए। यह सच है कि कोई आदमी बुरा नहीं होता, बल्कि उसका विचार बुरा होता है और अगर उसे अच्छा और उत्कृष्ट साहित्य पढ़ने को मिले तो बुरे-से-बुरे आदमी के विचार को अच्छाई की ओर मोड़ा जा सकता है। किताब आदमी को अच्छा बना सकती है।

**प्रश्न 5. क्या आप ऐसा मानते हैं कि संचारमाध्यम आज समाज और साहित्य के समक्ष एक चुनौती के रूप में खड़े हैं ? यदि हाँ, तो कैसे ?**

उत्तर : आप इस बात से अवगत हैं कि टी वी और इंटरनेट हमारे जीवन की न केवल दशा अपितु दिशा भी निर्धारित करते हैं, किंतु आज संचार माध्यम मादक और कामुक संदेश दे रहे हैं। सारा समाज विचारहीन भोग के स्तर पर जीने को विवश किया जा रहा है। एक साजिश के तहत एक ओर जहाँ मनोरंजन को अत्यधिक महत्त्व दिया जा रहा है, वहीं दूसरी ओर साहित्य का बहिष्कार किया जाता है। साहित्य का बहिष्कार करने का सीधा अर्थ है समाज के मानसिक एवं बौद्धिक पोषण का बहिष्कार करना। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि साहित्य प्रगति के साथ जीवन के मानवीय मूल्यों का सामंजस्य करता है, मानवीय संवेदनाओं का विकास करता है, जबकि संचारमाध्यम इसके ठीक विपरीत मानवीय मूल्यों एवं संवेदनाओं की जगह विचारहीन भोग का प्रचार करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप बौद्धिकता महत्त्वहीन होती जा रही है। वस्तुओं एवं शरीर का भोग ही जीवन का प्रमुख ध्येय बनता जा रहा है। इसी प्रकार, पत्रकारिता आज लोकप्रियता के दबाव में आकर साहित्य को छोड़ इलेक्ट्रॉनिक्स के रंगीन माध्यम की सहेली बन गयी है और उसका अधिकांश काम अर्थोपार्जन के लिए किया जा रहा है। इस दृष्टिकोण से संचारमाध्यम आज समाज और साहित्य के समक्ष चुनौती के रूप में खड़े हैं।

**प्रश्न 6. कला के संबंध में आपकी क्या धारणा है ? आज के भौतिकतावादी दौर में इसकी क्या स्थिति है ?**

उत्तर : प्रत्येक व्यक्ति में बचपन से ही कला होती है। कला की न तो कोई

ऊँचाई होती है और न ही कोई गहराई। कला ही एक ऐसा क्षेत्र है जो सतत परिवर्तित होता रहता है। आज के भौतिकतावादी दौर में अन्य वस्तुओं को प्राथमिकता देने की वजह से कला मनुष्य में ही मरकर रह जाती है। वैसे हर क्षेत्र की तरह कला के क्षेत्र में भी राजनीति अपना असर दिखा रही है पर इतना जरूर है कि जहाँ कला का वास होता है, प्रगति भी वहीं होती है।

**प्रश्न 7. इधर हाल के वर्षों में पढ़ने की प्रवृत्ति लोगों में कम हुई है, आपके विचार से इसके क्या कारण हैं?**

**उत्तर :** सूचना-प्रौद्योगिकी (*Information Technology*) और डिजिटल युग के दौर में इलेक्ट्रॉनिक संचार एवं संप्रेषण के त्वरित माध्यमों की वजह से लोगों को आसानी से विभिन्न टी०वी० चैनलों एवं इंटरनेट द्वारा न केवल मनोरंजरन के साधन उपलबध हो रहे हैं, बल्कि उनके जरिए पढ़ाई-लिखाई के साथ-साथ तरह-तरह के ज्ञान-विज्ञान की चीजें मुहैया कराई जा रही हैं; जहाँ एक ओर उनसे अपसंस्कृति को बढ़ावा मिल रहा है वहीं उसकी वजह से लोगों में पढ़ने की प्रवृत्ति कम होती जा रही है।

इसके अतिरिक्त उपभोक्तावादी संस्कृति के पनपने और कम समय में ही अधिक से अधिक पा लेने की महत्त्वाकांक्षा के चलते लोगों के जीवन में अतिव्यस्तता आ गई है जिसके परिणामस्वरूप पढ़ने की संस्कृति प्रभावित हुई है, फिर मंहगी पुस्तकों और मौलिक पुस्तकों की कमी के चलते भी पढ़ने की प्रवृत्ति पर अच्छा खासा प्रभाव पड़ा है। इधर हाल के वर्षों में साहित्यिक चोरी, नकलवाद में वृद्धि तो हुई ही है, कोचिंग इंस्टीच्यूट की बाढ़-सी आ गई है जिनसे मौलिक चिंतन एवं लेखन के प्रति प्रतिबद्धता कम हुई है।

21वीं सदी का यह दौर भी उपभोक्तावादी संस्कृति का वीभत्स रूप है जो पिछली सदी के अपराह्न से विरासत में मिला है जिसका शिकार आज के पाठक भी हैं। सबकुछ झटपट पा लेने की हवस ने उन्हें साहित्य के असली लावण्य से दूर कर रखा है।

'जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ' लगता है इस पर से आज के पाठकों का विश्वास उठ गया है। वक्त बड़ी तेजी से भाग रहा है; गहराई में डुबकी लगाना आज के पाठकों को रास नहीं आ रहा है; उनका धैर्य टूट रहा है। चटपट सबकुछ पा लेने की बेचैनी उन्हें मुकाम पर पहुँचने में आड़े आ रही है। आज के पाठक शार्टकट से मंजिल पाना चाहते हैं। सत्साहित्य तथा श्रेष्ठ पुस्तकों की गहराई में नहीं जाना चाहते। पर सोना तो तपकर ही कुंदन बनता है, गुलाब की पंखुड़ियाँ एक लंबी प्रक्रिया से निकल कर ही फूल बनती हैं जिसकी

खुशबू से माहौल में ताजगी आती है।

इस संदर्भ में एक और बात काबिल-ए-गौर है कि जिस प्रकार सर्वसाधारण को पेट की भूख होती है उसी प्रकार प्रबुद्ध वर्ग को दिमागी खुराक की जरूरत होती है। पेट की भूख तो किसी भी तरह के भोजन से मिट जाती है, मगर दिमाग की भूख गुणवत्ता की कसौटी पर कसी हुई श्रेष्ठ, कलात्मक और सारगर्भित प्रस्तुति रूपी खुराक से ही शांत हो सकती है। इसलिए प्रबुद्ध वर्ग को श्रेष्ठ व सत्साहित्य रूपी खुराक चाहिए जिसका आज अभाव है। इसके कारण भी लोगों में पढ़ने की प्रवृत्ति घटी है। समाज में प्रबुद्ध लोगों का दायरा बढ़ा है, इसलिए साहित्य एवं पत्र-पत्रिकाओं के प्रति रुझान में अभिवृद्धि हुई है, किंतु साहित्य का स्तर नीचे गया है, कारण कि बाजार में चटपटी और मसालेदार चीजें परोसी जा रही हैं। व्यवसायीकरण का शिकंजा बढ़ने से साहित्य और कला बाजारू होती जा रही है जिससे उसकी बारीकियाँ, गहराई, नफासत और स्तरीयता तिरोहित होती जा रही है। यही कारण है कि आज की पुस्तकें अच्छे पाठकों को आकर्षित नहीं कर पा रही हैं। इसीलिए प्रशिक्षण, अध्ययन, चिंतन और मनन के ये सूत्र इन दिनों मात्र पुस्तकों की शोभा बनकर रह गए हैं।

**प्रश्न 8. आप कई सालों से दक्षिण भारत में राष्ट्रीय विचार मंच और उसके मुख-पत्र 'विचार दृष्टि' के माध्यम से राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रयोग और प्रचार-प्रसार में अपनी सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं। हिंदीतर राज्यों में राष्ट्रभाषा हिंदी की वर्तमान स्थिति पर क्या आप अपने अनुभवों से मुझे अवगत कराएँगे? हिंदी साहित्य की समृद्धि में किन साहित्यकारों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है?**

**उत्तर :** हिंदीतर राज्यों में हिंदी की लोकप्रियता इधर हाल के वर्षों में बढ़ी है। खासकर दक्षिण भारत के विश्वविद्यालय एवं दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा शोध एवं अनुसंधान के जरिए हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन में लगे हैं और अनुवाद के कार्य भी निरंतर चल रहे हैं जिसके द्वारा भारतीय साहित्य के साथ-साथ हिंदी साहित्य के कई पहलुओं पर प्रकाश फैल रहा है। यही नहीं, जन सामान्य के बीच हिंदी पढ़ने की आवश्यकता और उपयोगिता अब महसूस की जा रही है। राजनेताओं को भी आज यह अहसास हो रहा है कि हिंदी के खिलाफ राजनीति करने की बजाय हिंदी सीखकर ही राष्ट्रीय राजनीति की जा सकती है और केंद्र में सत्ता हासिल की जा सकती है। आज की स्थिति यह है कि अप्रबुद्ध जनता स्वयं हिंदी पढ़ने-लिखने में रुचि लेने लगी है।

इसी प्रकार सरकारी क्षेत्र के बैंकों तथा भारतीय रेल के विभिन्न कार्यालयों में भी हिंदी का अधिकाधिक प्रयोग हो रहा है। रेल मंत्रालय की रेलवे हिंदी सलाहकार समिति की ओर से जब कभी भी सदस्य की हैसियत से रेलवे की क्षेत्रीय राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकों में प्रेक्षक के रूप में अथवा विभिन्न कार्यालयों के निरीक्षण के दौरान मैं उपस्थित रहा, राजभाषा अधिनियम का अनुपालन करने में संबंधित अधिकारियों व कर्मचारियों को मैंने तत्पर देखा। राजभाषा संसदीय समिति एवं हिंदी प्रशिक्षण संस्थानों द्वारा भी हिंदी के प्रगामी प्रयोग की दिशा में निरंतर प्रयत्न चल रहा है और उनके सहयोग, प्रेरणा, स्नेह, प्रोत्साहन व संतुलित व्यवहार से अच्छे नतीजे सामने आए हैं। कुल मिलाकर दक्षिण के राज्यों में हिंदी की वर्तमान स्थिति संतोषप्रद है।

जहाँ तक इन राज्यों में हिंदी साहित्य को समृद्ध करने एवं राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण साहित्यकारों के योगदान का सवाल है तमिलनाडु में डॉ० बाल शौरि रेड्डी, डॉ० एन० शेषण, डॉ० आर. शौरि राजन, डॉ०मधु धवन, डॉ० ईश्वर करुण, डॉ० अमर सिंह बधान, डॉ० विद्या शर्मा, डॉ० एस० विष्णुप्रिया, डॉ० एस. विश्वनाथन, डॉ० कमला विश्वनाथन, डॉ० पी. के. बाला सुब्रहमण्यन, रमेश गुप्त 'नीरज', प्रहलाद श्रीमाली, सुनीता जाजोदिया, डॉ० गुलाबचंद कोटाड़िया, डॉ० चुन्नीलाल शर्मा, पी. आर. वासुदेवन, डॉ० निर्मला एस. मौर्च, डॉ० ए.बी. साईं प्रसाद आदि का नाम उल्लेखनीय है।

इसी प्रकार आँध्र प्रदेश, कर्नाटक और केरल राज्यों में हिंदी के प्रयोग और प्रचार-प्रसार को बढ़ावा देने में डॉ० (प्रो०) नेहपाल सिंह वर्मा, डॉ० ऋषभदेव शर्मा, कविता वाचक्नवी, चंद्रमौलेश्वर प्रसाद, डॉ० एन. चंद्रशेखरन नायर, प्रो० टी. मोहन सिंह, प्रो० एम. वेंकटेश्वर, प्रो० के.एल. व्यास, डॉ० प्रतिभा गर्ग, डॉ० अहिल्या मिश्र, डॉ० लारी आजाद, डॉ० शुभदा वांजपे, गोरखनाथ तिवारी, डॉ० माधवराव रेगुलपाटी, डॉ० पी . के. जयलक्ष्मी, डॉ० रमा द्विवेदी आदि ने अपनी अहम भूमिका निभाई है।

## विविध प्रश्नोत्तर

**प्रश्न 1. सार्वजनिक जीवन में रहकर क्या पूरी तरह ईमानदार बने रहना संभव है?**

उत्तर : ईमानदारी से जीवन जीना कठिन अवश्य है, परंतु असंभव नहीं। सार्वजनिक जीवन में पूरी तरह ईमानदार बने रहना संभव है, किंतु उसके लिए जरूरी शर्त है--पारदर्शिता। इसके अभाव में कई बार ईमानदार व्यक्ति पर भी

भ्रष्टाचार का आरोप लग जाता है। मेरी धारणा है कि समाज में जब तक विषमता रहेगी तब तक लोगों के ईमानदारी बरतने में कठिनाई होगी और यह भी जब तक राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था में खुलापन और ईमानदारी नहीं होगी, समाज में विषमता बनी रहेगी।

**प्रश्न 2. पिछले दिनों भारत के तत्त्कालीन मुख्य चुनाव आयुक्त लिंगदोह ने राजनेताओं के लाइलाज कैंसर से ग्रस्त होने की बात कह दी। क्या आप उनकी इस टिप्पणी से सहमत हैं ? यदि हाँ तो, क्यों ? क्या आप इससे मुक्ति के उपाय बता सकते हैं ?**

उत्तर : यह सच है कि भारत के राजनेताओं ने, चंद अपवादों को छोड़कर, लोकतंत्र की पूरी प्रणाली को ही जिस प्रकार 'अपराध' और 'लूटतंत्र' में परिणत कर दिया है और भारत की जनता को भेड़ों में तब्दील करते नेता नजर आ रहे हैं, उससे तो ऐसा लगता है कि उनमें कैंसरग्रस्त होने के लक्षण ही दिखायी देते हैं। आजादी के पश्चात् लगातार स्खलन की दिशा में बढ़ रही भारतीय राजनीति का चेहरा बीमार राजनेताओं की वजह से दुनिया भर में स्याह हुआ है। किंतु मेरा मानना यह भी है कि इससे मुक्ति के लिए केवल टिप्पणियाँ नहीं, बल्कि सक्रिय पहल और भागीदारी भी जरूरी हैं। ये तब और धारदार होंगी जब उस पर माकूल समय पर समेकित प्रहार हो। कार्यपालिका, विधायिका, न्यायपालिका और मीडिया को भी अब एकजुट होकर पुरजोर प्रहार करना होगा। इसके अतिरिक्त, देश के प्रबुद्धजनों, बौद्धिक एवं विचारवान् राजनेताओं को भी लिंगदोह की टिप्पणी को गंभीरता से लेना चाहिए। हम सब मिलकर इन व्याधियों को दूर करें, यही समय का तकाजा है।

लिंगदोह जैसे स्वच्छ व ईमानदार छवि के पढ़े-लिखे बुद्धिजीवियों का नेताओं पर गुस्सा आना इस माने में स्वाभाविक है कि पिछले 58 वर्षों में हमारी व्यवस्था में काफी सड़ाँध पैदा हो चुकी है। हालांकि इसके लिए केवल नेताओं पर जिम्मेदारी थोपना सही नहीं है। लोकतंत्र को सफलतापूर्वक चलाने के लिए जनता की जागरूकता भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। जागरूकता के अभाव में जनता काबिल प्रतिनिधि कहाँ चुन पा रही है? समाज में जागरूकता पैदा करने के लिए लिंगदोह जैसे चिंता करनेवाले बुद्धिजीवी न तो सार्थक पहल करते हैं और न ही व्यवस्थागत बीमारियों के लिए कोई ठोस इलाज की रूपरेखा सुझाते हैं।

**प्रश्न 3. भारत में वर्तमान शिक्षा सूचनाओं का संग्रहालय मात्र अथवा नौकरी प्राप्त करने की व्यवस्था है। इसमें कैसे सुधार हो सकता है, क्या**

आप मुझे कुछ बताएँगे ?

उत्तर : मैं आपकी बात से पूर्णत: सहमत हूँ कि आज की शिक्षा मात्र सूचनाओं का संग्रहालय है अथवा युवाओं को नौकरी प्राप्त करने का एक जरिया। सूचनाओं का संग्रह तो आज कंप्यूटर भी करने लगा है तो शिक्षक की क्या सार्थकता रह गयी है? सच तो यह है कि शिक्षक की सार्थकता विद्यार्थियों के स्वाभाविक गुणों और विशेषताओं को विकसित करने में, सहयोग करने में है जो आज नहीं हो पा रहा है। विद्यार्थियों को तो ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे उन्हें ज्ञान और चरित्र के विकास की प्रेरणा मिल सके, उन्हें आत्मनिर्भर और आत्मविश्वासी बना सके। दूसरी बात यह है कि आज की बहुत सारी समस्याओं की जड़ में अनैतिकता का बढ़ता जाना और मूल्य-मर्यादाओं का हनन होता जाना है जिनकी वजह से समाज में विसंगतियाँ पैदा हो रही हैं। इसे तभी दूर किया जा सकता है जब शिक्षा में नैतिकता का पाठ्यक्रम हो। विद्यार्थियों को नैतिक शिक्षा आज नहीं दी जा रही है और विद्यालयों में भी इसके लिए उचित माहौल का अभाव दिख रहा है। विद्यालयीय शिक्षा तो जैसे मात्र नौकरी पाने का साधन और धन कमाने का जरिया बनती जा रही है। नौकरी और धन की जरूरत को नकारा नहीं जा सकता, पर स्वस्थ समाज के लिए आवश्यक वातावरण तथा अन्य तत्त्वों की मजबूती को समुचित महत्त्व देकर इसमें सुधार लाया जा सकता है।

**प्रश्न 4. आज के राजनीतिक, सामाजिक और राष्ट्रीय मंच पर बापू, जे. पी., पटेल, लोहिया, सुभाष, अबुल कलाम आजाद और कर्पूरी जैसे व्यक्ति क्यों नहीं नजर आते ? आपके विचार से अवगत होना चाहेंगे।**

उत्तर : आज के राजनीतिक, सामाजिक और राष्ट्रीय मंच पर बापू, पटेल मौलाना आजाद, जे. पी. और कर्पूरी जैसे व्यक्ति इसलिए नजर नहीं आते कि आज की राजनीति सस्ती लोकप्रियता के कारण जातियों, संप्रदायों, भाषाओं और क्षेत्रों में बँट गयी है। सत्ता और संपत्ति पाने की लालसा राजनीति में इस कदर बढ़ती जा रही है कि राजनेता सारी लक्ष्मण रेखाओं को पार कर जाने में किसी तरह की हिचकिचाहट महसूस नहीं करते। राजनीति में लोग सेवा के लिए नहीं, बल्कि मेवा पाने के उद्देश्य से आते हैं। दूसरी बात यह है कि राजनीतिक अथवा सामाजिक जीवन में लोग नैतिकता को तिलांजलि देते जा रहे हैं जिसके अभाव में समाज के तथाकथित हितचिंतक नेताओं का आकर्षण पद, पैसा और भोग-विलास की तरु हो गया है। राजनेता हों या सामाजिक

कार्यकर्ता, वे संकुचित स्वार्थ की भावना से ग्रसित होते जा रहे हैं। त्याग की भावना तो खत्म हो चुकी है। बापू, जे पी, लोहिया और कर्पूरी जैसे सत्यनिष्ठ, ईमानदार, अहिंसानिष्ठ एवं करुणानिष्ठ लोग तो अब विरले देखने में आते हैं। विचार और चिंतन तो हाशिए पर चला गया है। जब तक गाँधी, लोहिया, मौलाना आजाद, जयप्रकाश और कर्पूरी ठाकुर जैसे नि:स्वार्थ और कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्ति राष्ट्रीय मंच पर नहीं आएँगे, उनके जैसा समाज व देश के हित-चिंतक और मार्गदर्शक नहीं आते, जनकल्याण और देश की प्रगति में कठिनाई होगी।

**प्रश्न 5. क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि विचार धारा के आधार पर सशक्त संवाद की बजाय राजनीतिक दलों में एक दूसरे की सिर्फ टांग-खिंचाई हो रही है, ऐसा क्यों?**

**उत्तर** : सामूहिक उत्तरदायित्व के क्षरण होते जाने के कारण आज राजनीतिक दलों में विचारधारा के आधार पर सशक्त संवाद नहीं हो पा रहा है। सामाजिकता पर वैयक्तिकता हावी होती जा रही है। दरअसल राजनीति हो या समाज विश्वसनीयता के लिए आधार होते हैं आचरण, स्वभाव, संस्कार एवं निष्ठा। इनकी कमी से प्राय: सभी राजनीतिक पार्टियाँ जनता के दु:ख दर्द में भागी न बनकर तथा समाज की दिशा और दशा में कोई बदलाव न लाकर मात्र तमाशबीन हो गई हैं और देश का धन लूट कर उस धनबल से बाहुबल खरीदकर सत्ता हासिल करती हैं या फिर सत्ता पर काबिज होने की कोशिश करती हैं। मंत्री एवं नेता कुर्सी एवं अधिकार वर्त्तमान राजनीतिक संदर्भ में घोटाले एवं घोटाले की कहानी, वोट की राजनीति एवं स्वार्थपूर्त्ति हेतु दलबदल के किस्से बन गए हैं। चुनाव के वक्त या चुनाव के बाद सत्ता परिवर्त्तन होने पर आज जिस प्रकार नेताओं को दल बदलते देखा जा रहा है उससे यह स्पष्ट है कि विचारधारा को नेताओं ने तिलांजलि दे रखी है। यही कारण है कि संसद एवं विधानमंडलों में विभिन्न राजनीतिक दलों से आए जनप्रतिनिधि देश व समाज के ज्वलंत एवं मुख्य मुद्दों पर बहस न कर फजूल की बातों पर परस्पर एक दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप करते रहते हैं और एक दूसरे की टाँग-खिंचाई को यहाँ की जनता अपनी खुली आँखों देखती रहती है।

**प्रश्न 6. शाकाहारी भोजन से दीर्घ आयु और आरोग्य प्राप्त होता है, ऐसा कहा जाता है। आप कहाँ तक इससे सहमत हैं? क्या आप मानते हैं कि शाकाहारी भोजन अपनाने से जीव जंतुओं की हिंसा में कुछ कमी आएगी ?**

उत्तर : भारत में वैदिक काल से शाकाहार की दिशा में काफी प्रयोग हुए

हैं और निष्कर्ष निकाले गये हैं। निष्कर्ष के अनुसार आहार तीन प्रकार के होते हैं--सात्त्विक, तामसिक और राजसिक। मानसिक एकाग्रता, ध्यान आदि के लिए सात्त्विक आहार अधिक अनुकूल होता है। शरीरशास्त्री और मानवशास्त्री भी अब मानने लगे हैं कि शाकाहार भोजन मनुष्य को दीर्घायु और नीरोग बनाता है। इसलिए अब तो विज्ञान भी शाकाहारी भोजन को दुनिया में पूरी तरह लागू कराने के लिए सहमत है, किंतु मेरा मानना है कि जब तक भोगवादी दृष्टि पर स्वयं की प्रेरणा से अंकुश नहीं लगाये जाएँगे, तब तक विश्व में न तो इसे पूरी तरह लागू किया जा सकता है और न ही जीव-जंतुओं की हिंसा में कोई कमी आ पाएगी।

**प्रश्न 7. सुख और शांति की क्या अवधारणा है ? क्या धन-संपत्ति से ही इसे प्राप्त किया जा सकता है ? आप अपने विचार से मुझे अवगत कराएँ।**

उत्तर : हमारी दृष्टि बहुत ही बाहरी, ऊपरी और सतही है। हम संपत्ति, शक्ति, बड़े मकानों और दुनिया भर की उपयोग की वस्तुओं से अपने अंतस् की गरीबी और खालीपन को दूर कर सुख का अनुभव करना चाहते हैं, अंतस् को देखने जानने की जरूरत ही महसूस नहीं करते, जबकि सच्चाई यह है कि सुख, शांति और संतुष्टि एकदम भीतरी और निरी व्यक्तिगत चीजें हैं। बहुत लोग हैं संसार में, जो धन, वैभव, समृद्धि, प्रतिष्ठा से संपन्न हैं; हर प्रकार की वस्तुओं से भरे हैं, मगर उनके जीवन में प्यार, मैत्री, संवेदनात्मक व्यवहार का अभाव है, उनके जीवन में सुख, शांति, आनंद और संतुष्टि नहीं है। उन्हें इन सबकी दरकार है, लेकिन ये सब उन्हें वही व्यक्ति दे सकता है, जो इन भावदशाओं से भरा है। इसलिए मात्र धन-संपत्ति से सुख और शांति नहीं प्राप्त की जा सकतीं।

**प्रश्न 8. व्यक्तित्व के निर्माण में आचरण और ज्ञान का क्या योगदान होता है ? कृपया यह भी बताएँ कि आचरण का सज्जनता से क्या संबंध है?**

उत्तर : सच कहा जाए तो आचरण व्यक्तित्व का प्रतिबिंब है। व्यक्तित्व के निर्माण में आचरण का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। आचरण व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए ज्ञान का परिचय करा देता है। हमारा उठना, बैठना, खाना, पीना इत्यादि हमारी दैनिक क्रियाएँ हैं ये सब हमारे आचरण से संबंध रखती हैं। आचरण से ही यह झलकता है कि उस व्यक्ति में सज्जनता कितनी है। वह सज्जनता ही है, जो सान्निध्य में आये हुये व्यक्ति को भी अपने प्रभाव में ले लेती है। आप में अगर सज्जनता है तो आचरण भी उसी के अनुरूप अच्छा होगा और

वह आपके व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक सिद्ध होगा। इसलिए आचरण में मानवता का भाव अवश्य होना चाहिए, क्योंकि मानवता ही सामाजिकता को स्वस्थ और सुदृढ़ बनाती है। बीमार मानसिकता समाज को भी रुग्ण बनाती है। यदि आपका आचरण ठीक है और मानसिकता स्वस्थ है तो आपको अपने निजी जीवन से कुछ समय निकालकर समाज के लिए उपयोग करना चाहिए। इसके लिए आपको केवल मन बनाने की जरूरत है। यह भी आपके व्यक्तित्व का एक हिस्सा बने, जो आपके आचरण से संभव है। आपसे जितना जिसका अधिक हित सध सके प्राथमिकता के आधार पर आपको वैसा ही व्यवहार करना चाहिए, क्योंकि उसी में आपका भी हित निहित है।

जहाँ तक व्यक्तित्व के निर्माण में ज्ञान के योगदान का प्रश्न है, सिर्फ ज्ञान प्राप्त करने से ही नहीं, बल्कि ज्ञान बाँटने से भी व्यक्तित्व का विकास होता है। किसी को कुछ बताने, समझाने की आदत आपके व्यक्तित्व को निखारने में भी बेहद मददगार होती है। ज्ञान बाँटकर सम्मान प्राप्त करने से आत्मबल अथवा आत्मविश्वास बढ़ता है। यदि हम कोई भी कार्य पूर्ण आत्मविश्वास से करते हैं तो आगे सफलता मिलती है और इस तरह हमारा व्यक्तित्व भी बेहतर होता चला जाता है। इसके अतिरिक्त ज्ञान बाँटने के क्रम में ही व्यक्ति में सही और गलत के निर्णय की क्षमता बढ़ने लगती है। ज्ञान बाँटना वैसे भी भलाई करने का दूसरा रूप भी माना जाता है। यह विमोचित सेवा है।

**प्रश्न 9. क्या सिद्धि अथवा सफलता के लिए साधन और साध्य दोनों की उत्कृष्टता एवं एकरूपता आवश्यक है ? यदि हाँ, तो क्यों ?**

उत्तर : साधना क्रिया के संबंध में कहा गया है--'रचकर्मणा तमध्यचर्य सिद्धि विंदति मानव:।' अर्थात् जो व्यक्ति सच्चाई के साथ अपना कार्य करता है, उसे ही सिद्धि मिलती है। कर्मसाधना ही साध्य की अर्चना है। साध्य कितना ही पवित्र, उत्कृष्ट, महान क्यों न हो, यदि उस तक पहुँचने का साधन गलत है, दोषयुक्त है, तो साध्य की उपलब्धि भी असंभव है। उत्तम साध्य के लिए उत्तम साधनों का होना जरूरी है।

चाहे सामाजिक क्रांति हो या व्यक्तिगत साधना, लक्ष्य की प्राप्ति तभी होगी, जब साधन और साध्य को जोड़कर मनुष्य साधन निष्ठ बनेगा। साधनों में भ्रष्टता व्यक्ति और समाज दोनों के लिए अहितकर साबित होती है। जिस प्रकार साधनों की पवित्रता आवश्यक है, उसी प्रकार साध्य की उत्कृष्टता भी जरूरी है। अत: जिनके पास साधन है, माध्यम है उन्हें आवश्यकता है उत्कृष्ट लक्ष्य के निर्धारण

की। सिद्धि अथवा सफलता प्राप्ति के लिए उत्कृष्ट साध्य का चयन एवं उसके अनुकूल ही उतकृष्ट साधनों का समुचित उपयोग आवश्यक है। अतएव साध्य और साधन की उत्कृष्टता और एकरूपता ही सफलता की आधारशिला होती है।

**प्रश्न 10. अहिंसा आंदोलन से आप कब और कैसे जुड़े? अहिंसा यात्रा के प्रवर्तक आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने अहिंसा समवाय का दायित्व आपके कंधों पर सौंपा है। आखिर क्यों? क्या आप अहिंसा समवाय पर भी अपनी संक्षिप्त टिप्पणी प्रस्तुत करेंगे?**

उत्तर : यों तो अप्रत्यक्ष रूप से अहिंसा आंदोलन से मैं एक लंबे अरसे से जुड़ा रहा हूँ, कारण कि हमारे द्वारा स्थापित राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संस्था राष्ट्रीय विचार मंच और उसके मुख-पत्र 'विचार दृष्टि' भी अपने उद्येश्यों के अनुरूप वैचारिक क्रांति के उसी रास्ते पर अग्रसर है जिस रास्ते को महावीर, बुद्ध, तुलसी और गाँधी जैसे अहिंसा आंदोलन के प्रणेताओं ने दिखाया है। इसे महज संयोग ही कहा जाए कि राष्ट्रीय स्तर पर मंच का विस्तार होने के बाद राष्ट्रीय राजधानी नई दिल्ली के राजेन्द्र भवन में विगत 15 एवं 16 नवंबर 2002 को 'आजादी के बाद वैचारिक क्रांति के नए आयाम और हमारा दायित्व' विषय को केंद्र में रखकर जब मंच एवं 'विचार दृष्टि' द्वारा दो-दिवसीय महाधिवेशन आयोजित किया गया तो अहिंसा आंदोलन तथा अणुव्रत से जुड़े प्रो० धर्मेन्द्र नाथ 'अमन' तथा डॉ० रमाशंकर श्रीवास्तव के साथ-साथ कई मुनि व संतों ने अपनी अहम् भूमिका निभाई और इन्हीं मनीषियों के सौजन्य से मैं अहिंसा यात्रा के प्रवर्तक आचार्यश्री महाप्रज्ञ के सान्निध्य में आया। इसी दौरान आचार्य प्रवर के चातुर्मास प्रवास की अवधि में राजस्थान के सिरियरी, गुजरात के सूरत, नई दिल्ली के महरौली तथा पंजाब के जगराओं में अणुव्रत महासमिति तथा अहिंसा समवाय द्वारा आयोजित विचार संगोष्ठियों में अणुव्रत एवं अहिंसा से संबंधित विविध विषयों पर आचार्य श्री महाप्रज्ञ की उपस्थिति में मुझे अपने विचार प्रस्तुत करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैं इस बात पर गर्व महसूस करता हूँ कि विभिन्न मंचों पर प्रस्तुत हमारे विचारों से प्रभावित होकर ही अणुव्रत महासमिति के अध्यक्ष डॉ० महेन्द्र कर्णावट के साथ-साथ मुनिश्री सुखलाल और अंततः आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने अहिंसा समवाय का दायित्व मेरे कंधों पर सौंपा। इसके कार्यों को गति प्रदान करने में मैं गर्व महसूस करता हूँ।

अहिंसा समवाय मिले-जुले प्रयास की कार्य-संस्कृति को विकसित करने का एक सार्थक प्रयास है जिसके तहत सुख के साथ-साथ बोझिल दु:ख को भी बाँटने का कार्य किया जाता है। इतिहास साक्षी है कि जिस प्रकार बहेलिए के षड्यंत्रपूर्ण जाल को खगवृंद ने मिलकर सामूहिक प्रयास से उड़ाकर विफल किया था और सभी पक्षियों की जान बचाई थी, उसी प्रकार समाज व देश के समक्ष उत्पन्न संकट और खड़ी चुनौतियों का मुकाबला भी मिलजुल कर किया जा सकता है।

दरअसल समाज व देश की समस्याओं के समाधान हेतु किए गए बड़े-बड़े प्रयासों का हश्र जब देखा गया तो छोटे-छोटे प्रयासों से ही उम्मीद की गयी, कारण कि एक छोटा प्रयास चाहे अकेले में बहुत असरदार न हो, पर लाखों छोटे स्तर के प्रयासों से बहुत बड़े बदलाव की कल्पना की जा सकती है। अणुव्रत आंदोलन इसी अवधारणा की उपज है। इसके तहत छोटे-छोटे प्रयासों के लिए संकल्प लिया जाता है। अहिंसा को गृहस्थ जीवन में प्रतिष्ठित करने के लिए जिन व्रतों की जरूरत है, वे अणुव्रत कहे जाते हैं। समाज हित की दृष्टि से अणुव्रत आंदोलन का व्यक्तिगत व्यवहार-शुद्धि के इस आंदोलन के प्रति समाज के लोगों में थोड़ी भी निष्ठा पैदा हो जाना एक उत्तम लक्षण है। मन की भूमि में एक बार यह भाव रूपी बीज पड़ा तो बाद में वह बड़ा वृक्ष भी बन सकता है। आचार्यश्री तुलसी ने इसी वृक्ष का बीज बोया और उनके बाद आचार्यश्री महाप्रज्ञ उसी बीज से पनपे पौधों को सींच रहे हैं ताकि वे बड़े वृक्ष बन सकें। किंतु अणुव्रत की स्थापना की आधी सदी बीत जाने के बाद आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने यह महसूस किया कि छोटे-छोटे प्रयास तो हो रहे हैं, फिर भी अपेक्षाकृत परिणाम नहीं निकल पा रहे हैं। इस ख्याल से उन्होंने अहिंसा समवाय की कल्पना कर अणुव्रत महासमिति की एक स्वतंत्र इकाई के रूप में उसका गठन किया। उसके तहत अहिंसक शक्तियों के एक मन के लोग और समानधर्मी संस्थाएँ अपने-अपने कार्यों को यथावत चलाते हुए एक साथ मिल-बैठकर समाज व देश की विभिन्न समस्याओं सहित हिंसा व आतंकवाद के बढ़ते कदम को रोकने के लिए सामूहिक रूप से विचार कर निर्णय लेते हैं और उन्हें कार्यान्वित करने के लिए साझा कार्यक्रम चलाते हैं।

आज जिस प्रकार देश व समाज का नैतिक व चारित्रिक पतन तेजी से होने की वजह से राष्ट्र दुर्बल और निस्तेज बनता जा रहा है, जनांदोलन भी दिनों दिन कमजोर पड़ता जा रहा है, जड़वत स्थितियों में दखल देनेवाली शक्तियाँ बहुत कम होती जा रही हैं और लोकतांत्रिक मूल्य-मर्यादाओं का खात्मा

होता जा रहा है, उसमें समाज की सामूहिक प्रगति और नैतिक विकास के लिए विचारों का साम्य जरूरी है, क्योंकि विचारों से ही व्यक्ति एक दूसरे के निकट आता है। अहिंसा समवाय उत्कृष्ट विचारों की अभिव्यक्ति का एक माध्यम है और इसके द्वारा समझदारी में आत्मविश्लेषण और आत्मआलोचन का अवसर भी प्रदान किया जाता है। यही नहीं, इसके जरिए रचनात्मक दृष्टि, आचार-व्यवहार तथा गुणवत्ता में सुधार के प्रयत्न के साथ-साथ आत्मकेंद्रीत लोगों के अंदाज को बदलने का हर संभव प्रयत्न किया जाता है और अलग-अलग मरने की अपेक्षा एकात्म होकर सम्मान की जिंदगी जीने की प्रेरणा प्रदान किया जाता है। कुल मिलाकर देखा जाए तो बदलते परिवेश में बल प्रयोग की जगह हृदय परिवर्तन की जरूरत को महसूस कर त्याग और संयमपूर्वक जीवन जीते हुए व्यक्ति को अनैतिकता एवं अनाचार से मुक्ति का प्रशिक्षण दिया जाता है।

भारत सहित दुनिया के कई देशों में हिंसा और आतंक का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। फलतः देश-विदेश के स्तर पर आतंकवाद और हिंसा का नया विस्फोट और स्वातंत्र्योत्तर युग का मूल्य ह्रास राक्षसी रूप ग्रहण कर चुका है। ऐसे समय में भी सचेत न होना अपने राष्ट्र को अपने हाथ से खो देना है और यह अपने समाज के भविष्य को अंधकारमय कर देना है। अहिंसा समवाय ने इसे स्वीकार किया है और अपनी व्यवस्था के तहत यह व्यक्ति को टूटने से बचाने के लिए प्रयासरत् है। एक ओर जहाँ यह व्यक्ति को उचित मार्ग पर खड़ा करने के लिए प्रयत्नशील है, वहीं समाज के लोगों के बीच टूटते संबंधों को स्थापित करने की कोशिश में है। सच कहा जाय तो आदमी के लिए किसी भी सपने का समाज और सामूहिकता के बाहर कोई अर्थ नहीं है और सपने वही फलते-फूलते हैं जहाँ सबको साथ लेकर चलने की कोशिश होती है। व्यक्तिगत सपने व्यक्ति के साथ ही समाप्त हो जाते हैं, मगर सामूहिक सपने की अवधि लंबी होती है। अहिंसा समवाय के द्वारा व्यक्ति एवं अहिंसक शक्तियों से जुड़ी संस्थाओं की सारी ताकत को सामूहिकता में बदलने का प्रयत्न किया जा रहा है।

**प्रश्न 11. आपकी दिनचर्या क्या है?**

उत्तर : जाड़ा हो या गर्मी सुबह 4 बजे मैं उठ जाता हूँ। शौच आदि से निवृत होने के पश्चात् मैं अपनी दाढ़ी भी प्रतिदिन बना लेता हूँ। दो-चार बिस्कुट लेकर सुबह चार-पाँच बजे के आस पास कुछ पढ़ने या लिखने बैठ जाता हूँ। डेढ़ से दो घंटे पढ़ने-लिखने के बाद एक घंटा अपने पटना निवास के बरामदे अथवा छत पर मैं टहलता हूँ तथा कुछ कसरत भी करता हूँ। दिल्ली रहने पर हमारा यह टहलना यमुना के किनारे स्कूल ब्लॉक, शकरपुर स्थित डी.डी.ए. के गार्डन

में होता है। फिर निवास आकर दो चार समाचार-पत्र पढ़ता हूँ। कुछ देर बाद सालों भर मैं अपना पसंदीदा दही-चूड़ा का नाश्ता करता हूँ। फिर पढ़ने-लिखने में व्यस्त हो जाता हूँ या अन्य आवश्यक कार्यों से निपटता हूँ अथवा मित्रों से मिलना-जुलना होता है। ग्यारह-बारह के आसपास मौसम के अनुसार केले, संतरा, अँगूर, अमरूद, आम आदि लेना पसंद करता हूँ। फिर दो बजे अपराह्न शुद्ध शाकाहारी भोजन में दही-रोटी के साथ दाल, हरी सब्जी खाता हूँ। चावल कभी-कभार ही लेता हूँ। थोड़ी देर आराम करने के उपरांत पुन: पढ़ने-लिखने में व्यस्त हो जाता हूँ। फिर हल्का नाश्ता लेने के बाद संध्या छह से सात बजे तक मैं नित दिन टहलता हूँ। सात बजे से साढ़े नौ बजे रात्रि तक मैं फिर पढ़ता-लिखता हूँ या परिवार के सदस्यों के बीच परिवार, समाज व देश-दुनिया की बातचीत करता हूँ या फिर टी.वी. देखता हूँ। रात का भोजन मैं साढ़े नौ से दस बजे के बीच दूध-रोटी के साथ हरी सब्जी खाता हूँ। याद रहे दिन का भोजन हो अथवा रात का मैं केवल दो ही रोटियाँ खाता हूँ और हर हाल में मुझे रात दस बजे तक सो जाने की आदत है। यही मेरी दिनचर्या है। इस संक्षिप्त साक्षात्कार के लिए मैं आपके तथा संपादक के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ और आशा रखता हूँ कि ऐसी ही प्रेरणा और प्रोत्साहन आप मुझे देते रहेंगे, तो जीवन के शेष वर्ष में ही मैं सक्रियता से काम करता रहूँगा।

**मेरे द्वारा पूछे गए प्रश्नों के वांछित उत्तर आपने बड़े धैर्यपूर्वक दिए। धन्यवाद!**

**'बसेरा', पुरन्दरपुर, पटना-1** **राम बुझावन सिंह**

# खण्ड : दो

# व्यक्तित्व

श्री सिद्धेश्वर जी
के माता-पिता

श्री सिद्धेश्वर जी की
मातृतुल्य भाभी स्व. गुलाबी जी

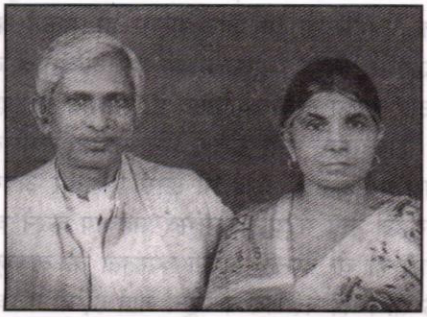

श्री सिद्धेश्वर जी
अपनी पत्नी
श्रीमती बच्ची जी के साथ

# व्यक्तित्व

## लक्ष्य की साधना और इच्छाशक्ति

किसी मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण तभी होता है जब उसकी स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ एक लक्ष्य को दृष्टि में रखकर व्यवस्थित की जाती हैं। एक पूर्णतया नैतिक आदर्श के नेतृत्व में जब हम अपनी इच्छाओं को नियमित करते हैं, तभी चरित्र का निर्माण होता है। यह नियमन किसी लक्ष्य की साधना में ही आवश्यक है। किंतु लक्ष्य की प्राप्ति की प्रेरणा के साथ-साथ इच्छाशक्ति भी आवश्यक है। मांझी को यदि नदी के किनारे पहुँचने की इच्छा न हो तो नौका को चलाने की प्रेरणा कौन देगा? जो लोग संसार की लहरों पर खेलना ही जिंदगी समझते हैं, वे कभी संयमित जीवन नहीं बिताते। सिद्धेश्वर जी लहरों पर खेलने को ही जिंदगी नहीं समझते हैं। इनकी प्रवृत्ति एक लक्ष्य को दृष्टि में रखकर अग्रसर है और उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए इनकी इच्छाशक्ति भी प्रबल है। ये दूसरे तट पर पहुँचने के लिए संयम से अपनी जीवन नौका को एक निश्चित दिशा की ओर खेते हैं। इनकी मानसिकता द्वंद्व से होकर नहीं गुजरती, चूंकि इनका लक्ष्य स्पष्ट है और उस लक्ष्य की प्राप्ति की ओर अग्रसर होने में इन्हें संतोष का अनुभव होता है, कारण कि ये उत्साही हैं और ऊँची आकांक्षा रखते हैं। इसके साथ ही ये आशावादी भी हैं।

किसी व्यक्ति की ऊँचाई का शायद सबसे बड़ा प्रतिमान है उसका खुला व्यक्तित्व, उदार स्वभाव, सहजता एवं किसी के लिए सुलभ हो सकने की क्षमता। इस मानदण्ड पर जब सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व को हम आँकते हैं तो ये खरे उतरते हैं, कारण कि एक ओर इनका खुला व्यक्तित्व है, स्वभाव से उदार भी ये उतने ही हैं और किसी के लिए सहज और सुलभ भी। आखिर तभी तो जब ये दिल्ली या पटना के निवास पर होते हैं, कोई भी इनसे मिलकर अपनी व्यथा कथा कह सकता है और सहज रूप से ये यथासंभव सहयोग करने का प्रयास करते हैं। इसी प्रकार निवास हो या दफ्तर, अपनी व्यस्तता के बावजूद '*विचार दृष्टि*' के अद्यतन अंक के साथ मेरे घर जब ये पहुँच जाते हैं, तो पत्रिका के संपादक अनुज तुल्य के प्रति मेरे मन में स्नेह-भाव उभर आते हैं और ये भी

कितना उदार हृदय रखते हैं कि मेरी एक प्याली चाय ही अवश्य स्वीकार कर प्रसन्न होते हैं। यही है इनके व्यक्तित्व की सहजता और उदारता, जिसके हम कायल हैं।

कोई व्यक्ति जन्म से बड़ा नहीं होता। वह बड़ा होता है अपने कार्य से, क्रियाकलाप से, जीने की शिल्प शैली से, भावों की गहन संवेदनशीलता से या कि विचारों की ठोस शिला पर आधारित, स्थापित मौलिक सर्जनात्मक दार्शनिक चिंतन से। प्रबल इच्छाशक्ति और उस बलबूते पर संपादित कार्यविशेष ही आदमी को मील का पत्थर बना देता है। इसी प्रकार व्यक्तित्व की पहचान आचरण एवं चिंतन से होती है और चिंतन की अभिव्यक्ति उसके कार्यकलाप से होती है। इस दृष्टि से जब हम सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व को परखते हैं तो ये खरे उतरते हैं। इन्होंने अपने क्रियाकलाप से, अपने आचरण व चिंतन से अपनी एक अलग पहचान जनसामान्य के बीच बनायी है और उनसे बेहद लगाव स्थापित कर अपना जीवन बड़ी ईमानदारी से ये जी रहे हैं। इनका दिल बड़ा है। मशहूर कवि नजरुल इस्लाम ने भी कहा है- *''आदमी के दिल से बड़ा कुछ नहीं है। आदमी का दिल ही तमाम तीर्थों का स्थान है। यही मंदिर, मस्जिद, गिरजा, काबा और जेरूसलम है। ईसा और मूसा ने यहीं बैठकर सत्य का साक्षात्कार किया था।''*

## व्यक्तित्व पर जन्मभूमि का प्रभाव

सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व में सौम्यता, सात्त्विकता, सदाशयता, सहिष्णुता जैसे सद्गुण सहज दिखायी पड़ते हैं। इसके पीछे और चाहे जो कारण हों, संभवत: जिस भूमि पर इनका जन्म हुआ उसका प्रभाव भी इनके जीवन पर पड़ा। वह धरती, जिसने गौतम को बुद्धत्व प्रदान किया; जहाँ माता त्रिशला के पुत्र वर्द्धमान सन्मति, वीर, अतिवीर की सीमाओं को लाँघकर भगवान् महावीर हो गये; जिस धरती ने गुरु गोविन्द जैसी विभूति को जन्म दिया; जहाँ कौटिल्य ने अर्थशास्त्र की रचना की; जो विक्रमशिला और नालंदा जैसे विश्वविद्यालयों की पवित्र भूमि है; जो महाभारत के कर्ण की कर्मभूमि है; जहाँ कलिंग के युद्ध के बाद सम्राट् अशोक ने अपनी तलवार गंगा की गोद में डाल दी, उसी भूमि बिहार प्रांत के नालंदा जिलांतर्गत हरनौत प्रखंड के बसनियावाँ गाँव में कुर्मी समाज के कृषि पृष्ठभूमि वाले एक मध्यमवर्गीय किसान परिवार में इनका जन्म हुआ। याद रहे, चंद नेताओं के भ्रष्टाचार, घोटालों, वर्तमान विधि-व्यवस्था एवं अपहरण की घटनाओं से इनकी जन्मभूमि का मूल्याँकन भले न हो, किंतु बिहार के आम व्यक्ति मेहनती, प्रतिभावान् और ईमानदार हैं, बिना जिनके श्रम से पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, गुजरात जैसे राज्य भी रातोंरात शून्य पर आ जाएँ।

## शैक्षिक पृष्ठभूमि

सिद्धेश्वर जी की प्रारंभिक शिक्षा अपने पैतृक गाँव बसनियावाँ के विद्यालय में हुई और फिर छठे एवं सातवें वर्ग तक की पढ़ाई इन्होंने अपने समीप के खरथुआ मध्य विद्यालय में की। जब इन्होंने सातवें वर्ग की परीक्षा पास की तो अपने समीप के गोनावाँ-पोआरी उच्च विद्यालय के आठवें वर्ग में अपना नामांकन कराया। थोड़े ही दिनों के बाद जब स्कूल की राजनीति को लेकर गोनावाँ और पोआरी के बीच उलझनें पैदा हुईं तो स्थिति ठीक नहीं भाँपकर सिद्धेश्वर ने नालंदा जिले के हुसेनपुर स्थित एक प्रतिष्ठित चौधरी उच्च विद्यालय के आठवें वर्ग में अपना नामांकन करा लिया और चार वर्षों तक उसके छात्रावास में ही रहकर पढ़ाई पूरी की। इस अवधि में उसी विद्यालय में पदस्थापित इनके ग्रामीण शिक्षक श्री उमेश्वर प्रसाद का इन्हें भरपूर मार्गदर्शन मिला जिसके लिए सिद्धेश्वर जी आज भी उनके प्रति आभार व्यक्त करते हैं। सन् 1956 ई० में मैट्रिक की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् बिहार शरीफ स्थित नालंदा कॉलेज के प्रथम वर्ष में अपना नामांकन कराया। नामांकन के मात्र एक माह के भीतर ही राजधानी पटना स्थित पटना कॉलेज से इंटरमीडियेट के प्रथम वर्ष कला में नामांकन के लिए इन्हें बुलावा मिला और ये वहाँ चले गये। उल्लेखनीय है कि कला की पढ़ाई के मामले में उन दिनों पटना विश्वविद्यालय के अंतर्गत पटना कॉलेज बिहार राज्य में सर्वश्रेष्ठ माना जाता था। इस ख्याल से उस कॉलेज में पढ़ना किसी छात्र के लिए गर्व की बात मानी जाती थी। इस अवधि में इनके पूज्य बड़े मामा तथा संगीत के मर्मज्ञ श्री बासूदेव नारायण का सन्निध्य इन्हें मिला और उनके व्यक्तित्व ने सिद्धेश्वर जी के जीवन को न केवल प्रभावित किया, बल्कि एक अमिट छाप छोड़ी।

## उच्च शिक्षा

सन् 1958 ई० में इंटरमीडियट करने के बाद पुनः बी०ए० के लिए पटना कॉलेज में ही इन्होंने अपना नामांकन कराया और वहाँ के सर्वश्रेष्ठ जैक्सन छात्रावास में रहने लगे। इस अवधि में इन्होंने एन०सी०सी० भी ज्वॉयन किया और अपनी निष्ठा के चलते उसका सर्वोच्च *'सी'* सर्टिफिकेट हासिल किया। इसी बीच इन्हें पटना कॉलेज स्थित एन०सी०सी० क्लब का आजीवन सदस्य मनोनीत किया गया। कॉलेज के दिनों में सांस्कृतिक-साहित्यिक एवं अन्य आउटडोर सक्रियताओं के चलते इन्हें पटना कॉलेज की ओर से सम्मान के रूप में *'कॉलेज कलर'* प्रदान किया गया। सन् 1960 ई० में स्नातक की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् जब ये पटना विश्वविद्यालय के श्रम एवं समाज कल्याण विभाग में

स्नातकोत्तर के छात्र हुए तब भी इन्होंने अपनी सक्रियता कायम रखी, जिसके परिणामस्वरूप पटना विश्वविद्यालय छात्रसंघ में अपने विभाग का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक सदस्य के रूप में इनका चयन किया गया और उसमें दो वर्षों तक अपनी अहम भूमिका निभायी। स्नातकोत्तर अध्ययन की अवधि में ये पटना कॉलेज के सटे पूरब स्थित न्यू हॉस्टल में रहे।

## सरकारी सेवाकाल

सन् 1962 ई० में आपने पटना विश्वविद्यालय से श्रम एवं समाज कल्याण विषय में स्नातकोत्तर की डिग्री हासिल करने के बाद सन् 1963 ई० में मात्र छह माह के लिए भारतीय रेलवे के एक प्रतिनिधि के रूप में इनका पदस्थापन दक्षिण-पूर्व रेलवे के अंतर्गत राउरकेला इस्पात नगर में हुआ। इस अवधि में इन्हें जो दायित्व सौंपा गया वह यह था कि स्टील प्लांट की जो सामग्रियाँ रेलवे से आती थीं, प्लेटफार्म पर इनकी उपस्थिति में उतारे जाने के पश्चात् जो सामान गायब अथवा टूटे-फूटे पाये जाते थे तो उस आशय का एक प्रमाण-पत्र इन्हें निर्गत करना पड़ता था, ताकि राउरकेला स्टील प्लांट को उसके दावे का सही-सही भुगतान हो सके। इस बीच रेलवे के कार्यों को अपनी क्षमता के अनुरूप नहीं देख इन्होंने नौकरी छोड़ने का मन बनाया और विभिन्न विभागों की प्रतियोगिता परीक्षाओं में बैठने लगे। संयोग ऐसा रहा कि भारतीय लेखा एवं लेखापरीक्षा विभाग (*Indian Audit & Accounts Department*) में लेखापरीक्षक के पद के लिए इनका चयन हो गया जिसपर इन्होंने राँची में अप्रैल 1963 ई० में पदभार ग्रहण किया। फिर विभागीय प्रतियोगिता परीक्षा में इन्होंने बैठना प्रारंभ किया और उसके प्रथम भाग की परीक्षा में सन् 1971 ई० में उत्तीर्ण हुए। 1973 ई० में पुन: उसके दूसरे और अंतिम भाग की परीक्षा दी जिसका परीक्षाफल इनका पटना कार्यालय में स्थानांतरण होने पर निकला और ये सफल हुए। 1973 ई० में एस०ए०एस० (*Subordinate Accounts Service*) की अखिल भारतीय प्रतियोगिता में सफल होने के उपरांत अनुभाग अधिकारी के पद पर प्रोन्नति हो गई और इनका पदस्थापन राँची से पटना महालेखाकार कार्यालय में हो गया। फिर तो तीन-तीन सालों की अवधि में क्रमश: सहायक लेखापरीक्षा अधिकारी, लेखापरीक्षा अधिकारी और अंत में वरिष्ठ लेखापरीक्षा अधिकारी के पद पर संवर्ग 'क' के वेतनमान में प्रोन्नति होती गयी और उसी पद पर रहते हुए सन् 2000 के जून से आपने अपना शेष जीवन सार्वजनिक रूप से बिताने के क्रम में व्यापक और वृहत्तर सेवा प्रदान करने हेतु स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति ले ली।

राँची के सेवाकाल के दौरान जिन सहकर्मियों की प्रेरणा और सहयोग इन्हें प्राप्त हुआ और जिनके कार्यकलाप से इनका व्यक्तित्व प्रभावित हुआ उनमें इनके अग्रजतुल्य राजेंद्र प्रसाद सिन्हा का नाम सर्वप्रथम आता है। फिर रामविलास साहू, श्याम किशोर प्रसाद तथा आर० डी० राय के नाम भी ये अपने शुभेच्छुओं की सूची में बड़े सम्मान के साथ गिनाते हैं। इसी प्रकार दफ्तर के बाहर के इनके मित्रों में प्रेमन गराई, लाल बिहारी सिन्हा, रामदेव प्रसाद सिंह, उपेन्द्र सिंह, डॉ० बाँके बिहारी सिन्हा, नवरतन सिन्हा, डॉ० रणविजय प्रसाद सिंह, अयोध्या प्रसाद, भागवत प्रसाद इत्यादि इनके जेहन में आज भी मौजूद हैं। आर.पी. सिन्हा के इस वर्ष देहावसान से इन्हें बहुत बड़ा धक्का लगा और इन्होंने अपनी व्यक्तिगत क्षति महसूस की।

सेवा के साथ ही संघ के कार्यकलाप में भी इन्होंने अपनी सक्रियता कायम रखी। इसके अतिरिक्त, विभागीय पत्रिका *'प्रहरी'* एवं *'संघमित्रा'* के संपादक का दायित्व भी निभाया। इनकी कर्मठता, निष्ठा और क्षमता का ही परिणाम था कि बिना कोई व्यवधान के इन्हें समय पर प्रोन्नति मिलती रही। यह इनकी कुशलता, दक्षता और इनके व्यक्तित्व का परिचायक है।

सेवावधि के दौरान ही भारत सरकार के रेल मंत्रालय में सिद्धेश्वर जी को रेलवे हिंदी सलाहकार समिति का सदस्य मनोनीत किया गया जो भारतीय लेखा एवं लेखापरीक्षा विभाग के लिए गौरव की बात इसलिए थी क्योंकि विभाग से अब तक ये ही एक ऐसे अधिकारी हुए जिन्हें रेलवे की उच्चस्तरीय समिति के लिए चुना गया। यहाँ यह कहना यथोचित होगा कि इस समिति के सर्वश्री आलोक मेहता, प्रभाष जोशी, मृणाल पाण्डेय, तरुण विजय, संजय पुगलिया, रामबहादुर राय, प्रेम कुमार मणि, विकास कुमार झा, नैमिष राय, कण्णन, हरिवंश सरीखे वरिष्ठ पत्रकार एवं साहित्यकारों के सान्निध्य में रहने से न केवल सिद्धेश्वर जी को उनके अनुभव का लाभ मिला, बल्कि उचित मार्गदर्शन भी। आखिर तभी तो पूरे हिंदुस्तान में भारतीय रेल के विभिन्न कार्यालयों की यात्रा कर इन्होंने राजभाषा अधिनियम के कार्यान्वयन की स्थिति देखी और उसके अधिकारियों/ कर्मचारियों को हिंदी में काम करने की प्रेरणा मिली। इस अवधि में रेल मंत्रालय ने पूर्व रेलवे, दक्षिण रेलवे, उत्तर-पूर्व सीमा रेलवे, चितरंजन लोकोमोटिव, इरकॉन जैसे रेलवे के क्षेत्रीय कार्यालयों में स्थित राजभाषा कार्यान्वयन समिति के प्रेक्षक के रूप में इन्हें नियुक्त किया। इस पद पर रहकर आप प्राय: सभी बैठकों में शामिल हुए और लोगों को हिंदी के प्रयोग-प्रसार के लिए प्रोत्साहित किया तथा समय-समय पर विभिन्न कार्यालयों में राजभाषा हिंदी में किये जा रहे कार्यों का औचक निरीक्षण भी किया। यह कहने की

आवश्यकता नहीं कि भारतीय लेखा एवं लेखापरीक्षा विभाग में वरिष्ठ लेखापरीक्षा अधिकारी के पद पर रहने के कारण निरीक्षण का इन्हें भरपूर अनुभव था जिसका लाभ रेलवे को मिला। इनके निरीक्षण करने का ढंग भी कुछ ऐसा था कि रेलवे के अधिकारियों / कर्मचारियों से इन्हें भरपूर सहयोग मिला और उन लोगों ने इनके कार्यों को मुक्त कंठ से सराहा। छोटे से छोटे और बड़े कर्मचारी / अधिकारी तक अत्यंत प्रेमभाव से इनका मिलना और उन्हें उचित मार्गदर्शन देना सबको भाया। यही कारण है कि अपने तीन साल की अवधि में रेलवे बोर्ड से लेकर मंडल कार्यालय तक के लोगों के बीच ये सर्वप्रिय रहे।

## सामाजिकता विरासत में

18 मई, 1941ई॰ को बसनियावाँ गाँव में जन्मे सिद्धेश्वर जी के पिता का नाम श्री इन्द्रदेव प्रसाद था। श्रीमती फूलझार प्रसाद इनकी माता थीं। तीन भाइयों तथा चार बहनों में सिद्धेश्वर जी सबसे बड़े हैं। इसलिए इनकी शिक्षा-दीक्षा में इनके माता-पिता प्रारंभ से ही बहुत सतर्क थे। इनके पिता अत्यंत अनुशासनप्रिय थे। देश के क्रांतिकारी आंदोलन से भी वे जुड़े थे। इसी प्रकार सिद्धेश्वर जी की ममतामयी माँ शुद्ध रूप से एक गृहिणी और सात्त्विक विचार की महिला थीं। अपने समय की अधिकांश महिलाओं की तरह वे भी अशिक्षिता थीं। अपने माता-पिता के विविध गुणों का सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव पड़ा। किसान परिवार में जन्म लेने के चलते कर्म के प्रति इनके मन में प्रारंभ से ही भाव जागरित हो गया और माता-पिता की सरलता, निर्लिप्तता और ईमानदारी की वजह से इनके जीवन की शुरुआत प्यार, संतोष और निर्लिप्तता के वातावरण में हुई। इनके होठों पर हमेशा एक शांत मुस्कान खेलती थी। आज भी वह मुस्कान इनकी गयी नहीं है। इनके चेहरे पर वह मुस्कराहट बरकरार है। निश्चित रूप से इनके माता-पिता एवं इनकी एक मातृतुल्या भाभी इनके प्रेरणा-स्रोत बनी।

सिद्धेश्वर जी के जन्म के वक्त इनके पिता एक किसान तो जरूर थे, पर उन्होंने अच्छे दिन देखे थे। उस समय के मापदण्ड के मुताबिक उनका परिवार अपने इलाके में सम्मानित था। सिद्धेश्वर जी के दादा दो भाई थे- श्री दीनदयाल प्रसाद तथा श्री लालजी प्रसाद। दोनों को समाज में बड़े आदर के साथ देखा जाता था, क्योंकि वे दोनों भाई सुसंस्कृत तथा आचार-व्यवहार में बड़े कुशल थे जिसकी छाप सिद्धेश्वर जी के पिता पर पड़ी। इनके पिता तीन भाइयों में मँझले थे। बड़े का नाम श्री रामजी प्रसाद था और श्री अयोध्या प्रसाद सबसे छोटे भाई हैं। सिद्धेश्वर जी के पिता न तो अपने पर किये गये अत्याचार को सहन कर पाते थे और न ही दूसरों पर किये जा रहे अत्याचारों को बर्दास्त करते थे। यही कारण

था कि वे दूसरों के दु:खों को सदैव बाँटते रहे और सामाजिक कुरीतियों के सुधार की दिशा में आगे बढ़ते रहे। साथ ही अत्याचारियों व सामंतों के खिलाफ संघर्ष भी करते रहे।

इनके पिता श्री इन्द्रदेव प्रसाद गाँव के प्रतिष्ठित तथा निष्ठावान व्यक्ति तो अवश्य थे, किंतु आजकल की दृष्टि में विशेष शिक्षित नहीं थे। फिर भी सिद्धेश्वर जी के सामाजिक ज्ञानार्जन एवं सांस्कृतिक चेतना के विकास में वे बाधक नहीं बन सके, बल्कि सच तो यह है कि उन्होंने अपने सुपुत्र को अच्छी-से-अच्छी शिक्षा दिलाने में काफी अभिरुचि ली। वे सदाचरण एवं व्यावहारिक ज्ञान से संपन्न और सहज स्वभाव गृहस्थ थे और गाँव में खेती के लिए बैल और दूध के लिए गाय एवं भैस भी रखते थे। उन दिनों खेती करना अथवा कराना और अतिथि सत्कार करना उनके विशेष गुण एवं कार्य होते थे। उनके गाँव में किसी के यहाँ जब कोई अतिथि पहुँचते थे या उनके दालान के आगे से गुजरते थे तो बिना शरबत-पानी के उन्हें अपने संबंधी के यहाँ जाने की इजाजत वे नहीं देते थे। इनके पिता जी के लिए इतना कहना प्रासंगिक होगा कि वे उदार स्वभाव एवं स्वाभिमानी किस्म के सौम्य पुरुष थे। किसी के प्रति घृणा या द्वेष करना उनका स्वभाव नहीं था। वे विरुद्ध परिस्थिति को भी शांति के साथ सहन करते थे। सहिष्णुता तथा संवेदनशीलता उनके व्यक्तित्व की विशेषताएँ थीं। सिद्धेश्वर जी को विरासत और संस्कार के रूप में जहाँ अपने पिता के ये गुण प्रचुर मात्र में प्राप्त हुए हैं, वहीं अपनी ममतामयी माँ और मातृतुल्या भाभी की वात्सल्यमयी छाया भी।

अपने माता-पिता के संस्कार का प्रभाव तो इनके व्यक्तित्व पर पड़ा ही, साथ ही इनके परिवार की एक और अत्यंत सरल, सौम्य एवं सात्त्विक गुणों से संपन्न महिला की सहृदयता ने सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व को निखारा और रस घोला, वे थीं श्रीमती गुलाबी देवी, जो रिश्ते में इनकी भाभी लगती थीं, पर वे माँ से किसी माने में अधिक नहीं तो कम भी नहीं थीं। जैसा कि मैंने पूर्व में कहा कि सिद्धेश्वर जी के दादा दो भाई थे-दीनदयाल प्रसाद और लालजी प्रसाद। दीनदयाल के परिवार में सिद्धेश्वर जी के पिता एवं उनका भरा-पूरा परिवार और लालजी प्रसाद के परिवार में एकमात्र श्रीमती गुलाबी देवी बचीं, जो संयुक्त परिवार की सबसे बुजुर्ग एवं सम्मानिता नारी थीं। उनके पति श्री प्रसादी जी, जो रिश्ते में सिद्धेश्वर जी के बड़े भाई थे का निधन बहुत पहले हो गया था। सिद्धेश्वर जी पर उनका अपार स्नेह था। सच कहा जाए तो इनकी देख-रेख, खान-पान, वेश-भूषा की सारी व्यवस्था वे ही करती थीं। जब तक सिद्धेश्वर जी राँची के महालेखाकार कार्यालय में सेवारत रहे, वे इनके साथ रहीं और

उनकी सुखद छाया इन्हें मिलती रही। फिर जब इनका तबादला पटना हुआ, तब भी कुछ वर्षों तक वे इनके साथ रहीं। कुछ ही वर्षों के बाद लगभग सौ की उम्र पार करने पर उनका निधन 6 जून 1989 ई० में हो गया। कहा जाता है कि उन्होंने सिद्धेश्वर जी के पिता को भी गोद में खेलाया और खिलाया था। सिद्धेश्वर जी का कहना है कि वैसी उदारमना सहृदया महिला की उपस्थिति से उनका पूरा परिवार गर्व का अनुभव करता रहा। सिद्धेश्वर जी उनकी मधुर स्मृति को आज भी संजोये हुए हैं और उन्हें याद कर ये भावविह्वल हो जाते हैं।

अपनी उम्र के 66 वर्षों में सिद्धेश्वर जी ने अब तक बहुत-कुछ पाया, जिसका हिसाब आपके समक्ष प्रस्तुत करना कठिन है। फिर भी इन्होंने जो कुछ स्मृतियाँ संजोकर रखी हैं वे बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। किसी चीज का पा जाना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना कि उसे स्थायी रूप से सुरक्षित रखना। इस दृष्टि से सिद्धेश्वर जी ने अपने परिवार के सदस्यों में माता-पिता के अतिरिक्त जिस सात्त्विक और सुसंस्कृत भाभी की स्मृतियों को सुरक्षित रखा है उसे सराहनीय कहा जाएगा। इससे इनके उदात्त मानव मूल्यों एवं परिवार के सदस्यों के प्रति आत्मीयता झलकती है।

सिद्धेश्वर जी से बातचीत के सिलसिले में इनसे एक बार की रोमांचक घटना सुनने को मिली, जिसे यहाँ प्रस्तुत करने के लोभ का संवरण मैं नहीं कर पा रहा हूँ, ताकि सामंतों एवं अत्याचारियों के विरुद्ध इनके पिता द्वारा किये गये संघर्ष का अहसास आज की पीढ़ी को हो सके। घटना यों थी कि जब लगातार कई वर्षों तक इनके पिता श्री इन्द्रदेव प्रसाद मुखिया के पद पर आसीन होकर अपनी ईमानदारी और कर्मठता का परिचय देते रहे तो उनके विरोधियों को यह नागवार लगा। सच मानिए, गाँव की नालियों से लेकर कुओं के निर्माण और उनके जीर्णोद्धार तक में उन्होंने काफी अभिरुचि ली, जिसकी वजह से अपने ग्रामपंचायत के लोगों के बीच उनकी लोकप्रियता बढ़ गयी और उन्होंने एक अलग पहचान बना ली। किंतु तथाकथित सामंती किस्म के विरोधियों को उनकी यह पहचान ही अखर गयी और लगे सिद्धेश्वर जी के पिता के विरुद्ध षड्यंत्र रचने। इसी बीच जब ग्रामपंचायत के चुनाव की बारी आयी तो वही सामंती वर्ग के लोगों ने एक साजिश रची, ताकि इनके पिता मुखिया के उम्मीदवार ही न हो सकें। इस साजिश के तहत उनके विरोधियों ने एक घृणित और अकल्पनीय जघन्य अपराध यह कर डाला कि एक अति गरीब परिवार को धन का लालच देकर उसकी नौ-वर्षीया बेटी की हत्या कर दी और इनके पिता को मुकदमे में इसलिए फँसाया कि वे मुखिया के लिए नामांकन ही न कर पाएँ। लेकिन विधाता का विधान भी तो विचित्र होता है। उस बालिका की हत्या के तुरंत बाद

असलियत का भंडाफोड़ हो गया और कानोंकान इस असलियत की जानकारी पुलिस-प्रशासन तथा न्यायपालिका तक पहुँच गयी। इनके पिता को अपनी सदाशयता और सत्य के रास्ते पर चलने के चलते यहाँ तक कि जेल के दरवाजे तक भी नहीं जाना पड़ा और मामला रफा-दफा हो गया। उन्हें शीघ्र ही न्याय मिला और वे मुखिया पद पर पुन: विजयी हुए। उनकी ईमानदारी, सहृदयता और उदारता उन्हें काम आयीं। उसके बाद तो वे उस इलाके में एक नायक के रूप में सामने आये। सत्य की विजय होती है, इसे लोगों ने अक्षरश: चरितार्थ होते देखा।

इसके बाद तो जब भी इनके पिता किसी नये पथ पर पग धरते तो वापस होने का नाम न लेते। '*दो कदम आगे और एक कदम पीछे*' उनके स्वभाव के विपरीत बात थी। प्रारंभ से ही उन्होंने जान लिया था कि ग्रामीण राजनीति की यह लंबी और दु:साध्य यात्रा होगी, उन्हें कई मुश्किलों का सामना करना पड़ेगा और यह कि अकेले ही उन्हें समाज के समक्ष तनकर खड़ा होना पड़ेगा। इसलिए वे रवीन्द्रनाथ टैगोर के '*एकला चलो*' के रास्ते पर चल पड़े। वे यह भी जानते थे कि यह संघर्ष व्यक्तियों से कम, किंतु उन दिमागों से अधिक थां, जो वर्षों या यों कहिए कि सदियों से जड़ता के आदी हो गये थे। वे यह भी जानते थे अब कभी आराम करने या थोड़ा थमने की उन्हें आशा नहीं करनी चाहिए। उस हत्या के मामले से बरी होने के बाद उनके इरादे फौलादी बन गये और वे निरंतर आगे बढ़ते गये। फिर वे कई मोर्चे पर लड़ते रहे। उनकी यह लड़ाई तब रुकी जब वे अपनी उम्र के आठवें दशक को पार कर गये और तब तक उनके बड़े सुपुत्र यानी सिद्धेश्वर जी ने अपने पिता से विरासत में सामाजिकता संभाल ली। 80 की उम्र पार करने के पश्चात् सिद्धेश्वर जी के अनुरोध पर इनके माता-पिता पटना के पुरन्दरपुर स्थित '*बसेरा*' निवास में सन् 1985 ई० से रहने लगे, जहाँ सिद्धेश्वर जी सहित इनके परिवार के सदस्यों को न केवल उनकी छत्र-छाया में रहने का सुखद अनुभव हुआ, बल्कि उनकी सेवा-शुश्रूषा करने का एक सुनहला अवसर भी मिला। आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि पटना में अपने परिवार के सभी सदस्यों के साथ रहकर इनके माता-पिता को बड़ी खुशी हुई। इस संदर्भ में एक उल्लेखनीय बात यह भी है कि इनके माता-पिता जीवनपर्यंत किसी रोग के शिकार नहीं हुए। न तो उन्हें ब्लड प्रेशर था और न ही मधुमेह की बीमारी जिनसे आम लोग ग्रसित रहते हैं। पिता जी का प्रोष्टेट ग्लैंड भी बढ़ा तो पटना के इंदिरा गाँधी आयुर्विज्ञान संस्थान में उसका सफल ऑपरेशन कर दिया गया और वे रोग से मुक्त हो गये।

मनुष्य के जीवन पर संस्कारों का बहुत प्रभाव पड़ता है। सिद्धेश्वर जी के

आचरण में न तो कोई दोहरापन रहा है और न इनकी कथनी-करनी में कोई अंतर। इनकी सामाजिकता में बहुत कुछ इनके पिता जी की देन रही है, कारण कि इनके पिता जी लगभग दो दशकों तक ग्राम पंचायत के मुखिया के पद पर रहकर बड़ी निष्ठा और ईमानदारी से ग्रामवासियों की सेवा की। उनके द्वारा निष्काम भाव से की गयी सेवाओं की सराहना आज भी उस क्षेत्र के लोगों के द्वारा की जाती है। स्वतंत्रता-संग्राम में सक्रिय रूप से भाग लेने के बाद भी आजादी के बाद उन्होंने स्वतंत्रता-सेनानी के रूप में पेंशन लेना कभी स्वीकार नहीं किया। अपने पिता की इसी सेवाभावना का अनुसरण सिद्धेश्वर जी भी अपने जीवन में कर रहे हैं। अपने पिता के आचरण में इन्होंने न तो कोई बेईमानी पायी, न दोहरापन और ना ही प्रदर्शन। अपने पिता के आचरण की उत्कृष्टता को सिद्धेश्वर जी ने सदैव महसूस किया और उनसे प्रेरित होते रहे किंतु उनके विरुद्ध इनकी कोई शिकायत नहीं रही और थोड़ी बहुत रही भी तो बहुत अल्पजीवी ही। यही कारण है कि जब इनके पिताजी 80 वर्ष की उम्र पार कर गये तो सिद्धेश्वर जी ने माता-पिता को पटना के आवास में अपने साथ रखा और उनकी सेवा-शुश्रूषा एवं देखरेख का पूरा भार इनकी धर्मपत्नी श्रीमती बच्ची प्रसाद के कंधों पर रहा। इन्होंने भी अपने ससुर-सास की सेवा लगभग 15-20 वर्षों तक बड़ी ईमानदारी से की। इनकी सुपुत्री सुधा एवं अंजलि का इनके इस कार्य में महत्त्वपूर्ण सहयोग मिला। सिद्धेश्वर जी की माँ सन् 1998 ई॰ में चल बसीं तथा पिता का साया 96 वर्ष की उम्र में 7 मई 2001 ई॰ को उठ गया। सच तो यह है कि पिता जी ने अपने पुत्र को बचपन से जो संस्कार दिये उनके चलते सिद्धेश्वर जी की अपनी एक सोच बन गयी। उसी का परिणाम है कि हर चीज को ये मात्र पैसे से नहीं तौलते हैं, पैसे को ही सब कुछ नहीं समझते हैं। भावना और संवदेना का इनके जीवन में स्थान है। इन्होंने अपने स्वाभिमान से कभी समझौता नहीं किया। एक मध्यमवर्गीय परिवार से आये सिद्धेश्वर जी ने बचपन से आज तक सीधा-सादा जीवन गुजारा है। संयोग से इनके माँ-बाप सहित पत्नी एवं बच्चे भी इनके सादगी भरे जीवन से संतुष्ट रहे हैं।

## राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत

सिद्धेश्वर जी राष्ट्रप्रेम की भावना को प्राथमिकता देते हैं। आखिर तभी तो ये निजी स्वार्थों से ऊपर उठकर एक ऐसा सपना देखने की बात करते हैं जो समाज में खुशहाली लाए और देश को विकास की दिशा में ले जाए। सभा-संगोष्ठियों में अक्सर इन्हें यह कहते सुना जाता है कि *"यह मत सोचिए कि एक अकेले के करने से क्या होगा। विश्वास कीजिए इसमें से हर एक यही सोच कर अपनी क्षमताओं को दबाए हुए है। आप जागिए, देश जागेगा।"* यह सच

है कि यदि समाज का हर व्यक्ति जाग जाए तो मुट्ठी भर भ्रष्ट नेता भी या तो बदलेंगे या फिर समाज के सामने टिक ही नही पाएँगे, क्योंकि जो भ्रष्ट नेता होता है वही अंदरूनी तौर पर कमजोर होता है। सिद्धेश्वर जी इसी ख्याल से लोगों को अपने निजो स्वार्थ या यों कहा जाए कि दाल-रोटी की जद्दोजहद से आगे भी सोचने की बात करते हैं और दूसरे क्या कहेंगे इसकी परवाह न करते हुए राष्ट्रप्रेम की भावना को सम्मान से जोड़ते हैं।

दरअसल सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि शासक प्रवृत्तियाँ मानसिक बनावटों को जिस प्रकार जड़वत् स्थिति में बनाये रखना चाहती हैं, उसमें दखल न देनेवाली शक्तियाँ बहुत थोड़ी होती हैं। उनकी पहुँच समाज के बड़े हिस्से तक तब तक नहीं हो पाती, जब तक कि वे शक्तियाँ एक आंदोलन के रूप में स्वयं को विकसित नहीं कर लेती है। सिद्धेश्वर जी इन्हीं थोड़ी-सी शक्तियों को एक आंदोलन के रूप में विकसित करने की बात कर रहे हैं ताकि देश के विकास में वे काम आ सकें। अभी तक सिद्धेश्वर जी के जीवन में दो चीजें प्रमुखता से उभर कर आयी हैं: एक राष्ट्र के प्रति इनका अगाध प्रेम और दूसरा इनकी सामाजिकता। इसके बाद ही आता है साहित्य से इनका लगाव और हिंदी के प्रति इनकी निष्ठा। इनके संपादकीय एवं अन्य लेखन से इनका एक ऐसा व्यक्तित्व उभरता है जो सदैव देश व समाज के कल्याण की बात सोचता है। आखिर तभी तो इनकी कृतियों व भाषणों में '*राष्ट्रीयता*' और '*कर्त्तव्य*' की ध्वनि बार-बार सुनायाँ पड़ती हैं। इनके लिए कर्त्तव्य या कर्म एक नैतिक आदर्श ही नहीं, बल्कि अपने आदर्शों को अभिव्यक्ति प्रदान करने का एक माध्यम भी है। इस आदर्श के केंद्र में हम परिवार, समाज व देश के प्रति कर्त्तव्य की बात पाते हैं, जो वस्तुत: स्वयं के प्रति कर्त्तव्य की भावना का एक रूप है। इनकी कर्त्तव्य भावना के मूल में मानवीय चेतना छिपी है। निश्चित रूप से इनके व्यक्तित्व में राष्ट्रीय चेतना का उदात्त रूप देखने को मिलता है।

सिद्धेश्वर जी का जीवनदर्शन, जीने की कला से संबंधित इनके विचारों से ध्वनित होता है। एक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में सीधे-सादे जीवन जीने का इनका प्रयत्न व्यावहारिक व वास्तविक है। इन्होंने अपने वयस्क जीवन के आरंभ में ही सादा जीवन बिताने का निश्चय कर लिया था। आखिर तभी तो अपनी सेवावधि के दौरान ही इन्होंने सार्वजनिक जीवन में सक्रिय रहने की योजना बना ली थी और स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेकर अपनी योजना को आज ये कार्यरूप में परिणत भी कर रहे हैं। त्याग की भावना के व्यावहारिक रूप को व्यक्त करते हुए, उसे कर्त्तव्य व कर्म की भावना से संबंधित करते हुए ये कहते हैं- जहाँ कहीं भी कोई रहे, वहीं से अपना कर्म प्रारंभ कर दे। पहला कर्त्तव्य ये परिवार के प्रति मानते हुए समाज को स्वस्थ रखना पंसद करते हैं, ताकि देश सबल हो सके। ये बराबर कहते हैं कि जो व्यक्ति स्वार्थसाधना से संचालित होता है, हर काम केवल अपने लिए करता है, वह अंतत: दुख पाता है। वैसे तो जीवन

दुखों से भरा है, मगर व्यक्ति दूसरों के लिए जी कर जीवन में शांति, सुख तथा अर्थ पा सकता है। यही कारण है कि खोखले, जहरीले सामाजिक आचारों-विचारों व पाखंडों का ये जोरदार शब्दों में विरोध करते हैं। इनका कहना है कि लोग अंधकार में भटके हुए हैं, अंधविश्वास पहाड़ की तरह तने हुए खड़े हैं और राष्ट्रीय स्तर पर सुधार की धारा को गलत दिशा की ओर मोड़ रहे हैं। हमारे देश की प्रतिभा के विकास को अवरुद्ध करने के लिए नकली दीवारें खड़ी की जा रही हैं। देश के पढ़े-लिखे लोगों की बढ़ती आकांक्षाओं का गला घोंटा जा रहा है और आश्चर्य की बात है कि बिना किसी प्रतिरोध के गरीबी को खुले आम बढ़ने दिया जा रहा है, बल्कि सच तो यह है कि देश की कुछ राजनीतिक पार्टियाँ और उनके नेताओं द्वारा उसे प्रोत्साहित किया जा रहा है और अँधविश्वास को खुलकर बढ़ावा दिया जा रहा है। इसी से प्रेरित होकर सिद्धेश्वर जी समाजकल्याण के कई कार्यों में भाग लेकर अंधविश्वास पर चोट कर रहे हैं और लोगों को दिशा प्रदान कर रहे हैं। ये एक ऐसे विचारशील व्यक्ति हैं जिनके पास एक विचार पद्धति है। इसके परिणामस्वरूप ये स्वयं भी परिवार के विवाह, दाह-संस्कार या इस तरह के अन्य कार्यों में अपनी सामाजिक जागरूकता का परिचय देते हैं और गलत परंपराओं, रीति-रिवाजों को नकारते हैं, किंतु उन विचारों, परंपराओं व रीति-रिवाजों में जो कुछ श्रेष्ठ हैं उन्हें जीवन-पद्धति से समन्वित करते हैं और इस समन्वय को कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं, क्योंकि इनके जीवन का प्रमुख सिद्धांत कर्माभिमुख त्याग को जीवन में उतारना है। ये एक लंबे अरसे से सामाजिक व्याख्याता के रूप में विभिन्न सामाजिक-साहित्यिक मंचों से समाज व देश के विविध मुद्दों पर अपनी बात रखते रहे हैं और '*विचार दृष्टि*' सहित अनेक पत्र-पत्रिकाओं में अपनी टिप्पणियाँ लिखते रहे हैं।

सिद्धेश्वर जी ने अभी तक के अपने जीवन में अपनी भावनाओं की नि:स्वार्थता की रक्षा बड़ी विनम्रता से की है। अपनी मर्यादा की कीमत पर धन-दौलत और पक्षपात जैसी प्रवृत्तियों तक से समझौता इन्होंने कभी नहीं किया है। एक ही इशारे पर सहायता के लिए बिछ जानेवाले समर्थ लोगों व अधिकारियों तथा सत्ता की प्रभावशाली हस्तियों से इन्होंने कभी कुछ नहीं कहा। राजनीति में इतने लंबे अरसे से रहने के बावजूद न तो कभी किसी की चाटुकारिता की और न ही अपने लिए मुँह खोला।

सचाई, सादगी, सहिष्णुता, कर्मठता और श्रमशीलता के गुणों से भरपूर सिद्धेश्वर जी सदैव कथनी और करनी में एकरूपता पर बल देते हैं। ऊँचे-नीचे, छोटे-बड़े, अगड़े-पिछड़े के भेदभाव से दूर रहकर ये सामाजिक समरसता को बढ़ावा देने का निरंतर प्रयास करते हैं।

अभ्यास और स्वभाव से सिद्धेश्वर जी लिखने-पढ़ने वाले व्यक्ति हैं। लेकिन

लेखन तक ही इन्होंने अपने को सीमित नहीं किया, बल्कि अपने अब तक के जीवन काल में सामाजिक व साहित्यिक सेवाओं और गतिविधियों में अपने को जितना अर्पित किया है वह अनुकरणीय है। ये अच्छी तरह जानते हैं कि सच्चे साहित्य का समाज पर सहज ही कितना शक्तिशाली प्रभाव पड़ता है, अन्यथा अपने जीवन को ये लेखन की ओर न मोड़ते। किंतु ये यह भी जानते हैं कि लेखन के लिए जितने समय की आवश्यकता है उतने ही समय सक्रिय कार्य करने की भी जरूरत है। यह भी जरूरी है कि जो कुछ हम पुस्तक में लिखते हैं उसे साहस और तत्परता के साथ अमल में भी लाएँ। इस क्रम में धार्मिक एवं सामाजिक सुधारों को अमल में लाने का साहस इन्होंने अपने जीवन में बटोरा है और इस माने में इन्होंने किसी प्रकार का समझौता नहीं किया है। बिना नतीजे की कोई परवाह किये विरोधों को ठेलते हुए आगे बढ़ने की इन्होंने कोशिश की है। यही कारण है कि बड़ी ईमानदारी से इन्होंने अपने विचारों को कार्यान्वित किया है।

## उत्तर-दक्षिण की मैत्री के साहित्यिक दूत

सिद्धेश्वर जी ने अपने मंच, अपनी पत्रिका तथा लेखनी के माध्यम से देश की सामाजिक एवं साहित्यिक संपदाओं का मूल्याँकन कर उत्तर एवं दक्षिण भारत को ही नहीं, अपितु समूचे देश को एक सूत्र से जोड़ने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। ये खोजी प्रकृति के न केवल एक सशक्त रचनाकार हैं, बल्कि एक लोकप्रिय पत्रकार भी। आप पिछले एक दशक से भी अधिक समय से दक्षिण भारत के चैन्नई, बैंगलोर, तिरुवनंतपुरम तथा हैदराबाद का दौरा कर मंच तथा पत्रिका की योजना को अंतिम रूप दे रहे हैं। इन राजधानियों के अतिरिक्त पश्चिम भारत के मुंबई, जयपुर और अहमदाबाद तथा पूर्वी भारत के कोलकाता, भुवनेश्वर एवं पटना की कोटि-कोटि जनता के साथ सैंकड़ों साहित्यकारों का स्नेह प्राप्त करने में इन्होंने सफलता हासिल की है। इनके कार्यकलाप सुंदर एवं कलात्मक रूप में व्यंजित हो रहे हैं तथा इनकी नैतिकता उन प्रदेशों में शिक्षित एवं सुधी जनों के कंठों में गूँज रही है। यायावरी इनके लेखक जीवन का अभिन्न अंग रही। इस यायावरी ने इन्हें यह जानने-समझने की दृष्टि दी कि पूरे भारत के नागरिकों में आम आदमी के प्रति सोच एक हैं। इन्होंने अपने यायावरी-जीवन से अनुभव के बहुमूल्य मोती बटोरे।

दक्षिण, पूरब तथा पश्चिम भारत की जनता को उत्तर भारत की जीवनशैली, भाषाओं एवं साहित्यों से परिचित कराने तथा इन क्षेत्रों के बीच मैत्री संबंध प्रगाढ़ कराने के ध्येय से इन्होंने हिंदी साहित्य की उत्कृष्ट कृतियों के दक्षिण भारतीय भाषाओं में अनुवाद करने की प्रेरणा प्रदान की। मुंशी प्रेमचंद,

शरच्चन्द्र और रेणु के लेखन से काफी प्रभावित सिद्धेश्वर जी ने प्रेमचंद और शरच्चन्द्र की कथाओं का विश्लेषण करके उनकी यथार्थ जीवन की पकड़, सामयिक और सामाजिक समस्याओं की गहरी समझ और उनके यथार्थवादी दृष्टिकोण की विशेष चर्चा की। उसके बाद विभिन्न संगोष्ठियों, परिसंवादों एवं परिचर्चाओं के माध्यम से उनके उपन्यासों, कहानियों एवं साहित्यिक विचारों का सविस्तार इन्होंने विवेचन किया और विद्वान् साहित्यकारों से कराया है। सिद्धेश्वर जी सरीखे देश में चंद लोग ही ऐसे हैं जो अपना काम चुपचाप कर रहे हैं, जो दिखावा से दूर भागते हैं। ये प्रचार-प्रसार से दूर बड़ी निष्ठा से समाज व हिंदी साहित्य की सेवा में लगे हैं और जो भी महत्त्वपूर्ण कार्य हो रहे हैं उन्हें राष्ट्रीय विचार मंच के मुखपत्र '*विचार दृष्टि*' के माध्यम से पाठकों तक पहुँचा रहे हैं।

सिद्धेश्वर जी ऐसी मिट्टी के बने हैं, जिसके लिए कर्म ही अराधना है। स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के बाद अपनी पत्रिका का संपादन और प्रकाशन ये नियमित रूप से कर रहे हैं। इसके साथ ही इनकी लेखनी पुस्तक लिखने में भी निरंतर चल रही है और सामाजिक कार्यकलाप को भी गति प्रदान कर रहे हैं। इस बीच राजनीति के माध्यम से जनता के हित में न्यायिक लड़ाइयाँ लड़ते रहे हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि जितने ही ज्यादा कार्य इनके सामने आते हैं, उतने ही ये श्रम करते आगे बढ़ते जाते हैं।

इसमें कतई संदेह नहीं कि ए० जी० ऑफिस के वरिष्ठ लेखापरीक्षा अधिकारी के पद को जब इन्होंने छोड़ा, तो इसके पीछे भी इनकी मंशा थी समाज व राष्ट्र के व्यापक हित में काम करना, अन्यथा नौकरी छोड़ने के तुरंत बाद दिल्ली में पेंशन के पैसे से फ्लैट न खरीदा होता और न ही अपने पैतृक निवास बसनियावाँ में एक नया घर बनवाया होता, बल्कि बसनियावाँ की सारी गृहव्यवस्था ही समेट लेते और पाटलिपुत्र में रहकर अपना शेष जीवन आराम से बिताते। किंतु '*आराम*' को नेहरू जी के शब्दों में सचमुच इन्होंने '*हराम*' समझा है और इसीलिए ये अनवरत गतिमान हैं।

जहाँ तक इनकी पुस्तकों के प्रकाशन का प्रश्न है, ये स्वयं दिल्ली तथा पटना के अपने निवास पर कंप्यूटर रखे हुए हैं और सुधा एवं अंजलि अपनी दोनों बेटियों को कंप्यूटर का प्रशिक्षण दिला रखा है। बेटा सुधीर तो कंप्यूटर इंजीनियर है ही। यहाँ तक कि बेटे की शादी हो जाने के बाद पुत्रवधू सुनीता भी कंप्यूटर पर काम कर लेती हैं और इन दिनों वह डायटिशियन के पद पर कार्यरत हैं। इस प्रकार सिद्धेश्वर जी की पुस्तक के प्रकाशन के दौरान न केवल कंप्यूटर पर शब्दसंयोजन इनकी बेटी अंजलि करती है, बल्कि उसका प्रूफ भी ये स्वयं ही पढ़ते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बचपन के दृश्य, युवावस्था में अपना पैर जमा सकने के लिए किये गये संघर्ष और अपनी शिक्षा पूरी कर लेने के बाद अपने सेवाकाल में कड़वे-मीठे संघर्ष तथा कर्त्तव्य-बोध इन्हें समाज व राष्ट्र की ओर खींच रहे थे। अत: तकनीकी ढंग से अपनी सेवावधि से एक वर्ष पहले अवकाश प्राप्त करने के लिए इन्हें आज्ञा माँगने को विवश होना पड़ा, कारण कि समाज व देश के प्रति कर्त्तव्य-बोध सरकारी सेवा से भारी पड़ गया। चूंकि अपने कार्यालय में सर्वप्रिय एवं अपने कार्यों में सक्रिय थे, इसलिए उच्चाधिकारियों की अनिच्छा के चलते स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति में कुछ देर से अनुमति मिली। पुनरुत्थान शक्ति एवं इच्छाशक्ति इनमें ऐसी दृढ़ थी कि सेवा निवृत्ति के बाद समाज, साहित्य एवं पत्रकारिता के कार्यों में तहेदिल से ये जुट गये तथा संगठन एवं राजनीति में अपनी अपेक्षित भागीदारी में इन्होंने कोई कोर-कसर नहीं उठा रखी।

राष्ट्रीय विसंगतियों की पीड़ा इनके चिंतन-मनन में सर्वत्र परिलक्षित होती है। यही कारण है कि इनकी कृतियों में राष्ट्रीय चेतना की झलक है। इन्होंने जनमानस में राष्ट्रप्रेम, राष्ट्रीय अस्मिता को प्रतिबिंबित किया है। ये सभी शोषणों के खिलाफ हैं।

## व्यक्तित्व में कटुता नहीं

सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व में किसी तरह की कटुता नहीं देखने को मिलती है और यही विशेषता इन्हें औरों से अलग करती है। न तो ये किसी गुत्थी को पालते हैं और न ही किसी कुंठा के शिकार होते हैं, जबकि समाज व साहित्यसेवियों तथा राजनीतिक कार्यकर्ताओं का अधिकांश वक्त क्रमश: सामाजिक, साहित्यिक एवं राजनीति के ताने-बाने बुनने में ही बीत जाता है। व्यक्तित्व की तीन रेखाओं को इन्होंने आत्मसात् कर लिया है--कृतित्व, नेतृत्व और वक्तृत्व। इन्हीं गुणों की वजह से इन्होंने समाज में अपनी एक अलग पहचान बनायी है। इनका व्यक्तित्व किसी खेमे या खूंटे से आज तक नहीं बाँधा जा सका। ये न तो वामपंथी की परिधि में आते हैं और न तो इन्हें कोई प्रतिक्रियावादी खेमे में कैद करने का साहस कर सकता है, क्योंकि इनका बराबर का सरोकार आम आदमी से है और ये हमेशा अपने को भीड़ का व्यक्ति मानते हैं।

इन्होंने किसी व्यक्ति के परिवेश में भी अपने को नहीं रखा है। यही कारण है कि इनका राष्ट्रीय विचार मंच आज तक गैरसरकारी और गैरराजनीतिक संगठन बना हुआ है और उसकी '*विचार* दृष्टि' शुद्ध रूप से राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संवाहिका। वैसे भी ऐसे सहृदय और उदार कार्यकर्ता को किसी फ्रेम में जकड़कर

रखना कभी न्यायोचित नहीं है। ये सहृद तो हैं ही, सुहृद भी हैं।

सिद्धेश्वर जी ने ऐश्वर्य और सत्ता के शिखर पर अनपेक्षित मार्ग से पहुँचने की कामना कभी नहीं की। इनका अभी तक का जीवन समर्पित भाव से साहित्य और समाज की सेवा का रहा है। ये बराबर कहा करते हैं कि जीवन की सार्थकता इसी में है कि सेवायज्ञ में ही वह अपनी आहुति देता रहे। इसी को केंद्र में रखकर ये अपना जीवन जीते हैं। स्वाभिमान की रक्षा के लिए विपदाओं का स्वागत करना इनके स्वभाव और शील का अविच्छिन्न अंग बन गया है। सच कहा जाए तो स्वावलंबन और पुरुषार्थ ही इनके सच्चे जीवन सहचर हैं। कर्म को ही ये पूजा मानते हैं। इसलिए कर्म ही इनका असली धर्म है। बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी सिद्धेश्वर जी हिंदू-मुस्लिम एकता के समर्थक हैं। रोशनी जलाते रहना इनकी नियति बन गयी है। निम्न पंक्तियाँ इन पर सटीक बैठती हैं-

*अपना तो काम है जलाते चलो चिराग,*
*खाह दोस्त का घर मिले, वा दुश्मन का घर मिले।*

## व्यक्तित्व की विशेषताएँ

अक्सर ऐसा देखा जाता है कि लेखक, पत्रकार अथवा समाज सेवी वृद्धावस्था में आध्यात्मिक बन जाते हैं। भीष्म सहनी, कृष्ण बलदेव वैद, कृष्णा सोबती, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव आदि इसके अपवाद हैं। ठीक इसी प्रकार सिद्धेश्वर जी को भी कभी तथाकथित आध्यात्मिक बुखार ने नहीं सताया। इनके व्यक्तित्व की एक विशेषता यह भी है कि जिस प्रकार आज के अधिकतर लेखक वर्ग और खासकर युवा वर्ग अपनी रचनाओं में समाज में व्याप्त दूषणों के साथ समझौता करने के लिए तैयार नहीं है, उसी प्रकार सिद्धेश्वर जी किसी भी दशा में समाज में दूषणों के साथ समझौता नहीं कर पा रहे हैं। यही कारण है कि इनकी रचनाएँ पाठक और साहित्य के बीच सेतु का काम करती हैं। यानी अपनी खाशियतों से इनकी रचनाएँ पाठकों को साहित्य की तरफ खींचती हैं।

सिद्धेश्वर जी अपने समय के दबावों में रहकर अतीत से संवाद करके ही ये स्वयं को और परंपरा को जीवंत बनाए रखते हैं। यानी ये लकीर के फकीर नहीं हैं। आखिर तभी तो सर्जनात्मक लेखन में जीवनी लेखन का अनुपात कम होते हुए भी इन्होंने स्वतंत्रता-सेनानी तथा सुप्रसिद्ध बैक्ट्रोलॉजिस्ट डॉ॰ मोहन सिंह के जीवन पर 'एक स्वप्नद्रष्टा की अंतर्कथा' जीवनी लिखकर अपने व्यापक अध्ययन का परिचय दिया है। किसी व्यक्ति की जीवनी लिखने का काम इसलिए अधिक चुनौती बन जाता है कि वह व्यक्ति एक ही समय में समाज सेवी, संगठनकर्ता और चिकित्सक तीनों समझा जाता है। सिद्धेश्वर जी ने डॉक्टर

साहब को एक इंसान के रूप में देखने और सिद्धेश्वर जी का जीवन बहुत लुक-छिपकर जीनेवाले लोगों में से नहीं है। इनके जीवन में एक चारित्रिक स्पष्टता है जो अपने प्रति भी उतनी ही मुँहफट है, जितनी दूसरों के प्रति। अपनी कमियों, कमजोरियों और आदतों को लेकर न तो कोई खास दुराव ही रहा है इनमें, न ही अपराधबोध। भले ही ये अपनी पारिवारिक जीवन की समस्याओं और कार्यालय-समाज-मित्र वर्ग आदि को एक-दूसरे से अलग रख पाते हों पर अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता जीवन से अलग नहीं रख पाते। किसी भी सामाजिक अथवा साहित्यिक बैठकों में सिद्धेश्वर जी की मौजूदगी हम सबके लिए एक खास माने रखती है। मूल्यवान को ग्रहण करने में ये जितने कुशाग्र हैं, 'मूर्खतापूर्ण' पर भी निशाना साधने में उतने ही अचूक भी। इनकी दृष्टि में एक खास तरह का पैनापन है जिसकी जड़ें, केवल भाषाई नहीं हैं, वह जो आदमी के चरित्र में मूर्खतापूर्ण, दंभी और विडंबनापूर्ण है, उसका सूक्ष्म अवलोकन और निरीक्षण है। निगाह में वह खास तरह की 'एक्स-रे' क्षमता, जो आदमी को उसके इरादों और हरकतों को, आर-पार देख सकने में समर्थ है। इनके आचरण और व्यवहार इनके नैतिकता-बोध और गहरे भारतीय संस्कारों से जुड़े हैं। इनका जीवनबोध समाज और व्यक्ति के प्रति बराबर से संवेदनशील है। आज हम नौवें दशक के करीब पहुँच रहे हैं और इन्होंने छठे दशक को पार किया है। दोनों की आयु में लगभग तीन दशक का अंतर है, हम दोनों अपनी-अपनी तरह से शिक्षा, समाज तथा लेखन में सक्रिय हैं और हमारी मैत्री और निकटता अब भी पूर्ववत् बरकरार है, ऐसे में मैं अपना बहुत बड़ा सौभाग्य मानता हूँ।

विचारों को व्यक्ति के विचार का आईना माना जाता है। जीवन में विचारों और चिंतन का अपना एक विशेष महत्त्व है। सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व की यह विशेषता है कि उनके विचार अच्छे हैं। इनके अब तक के संपूर्ण जीवन में सार्थक विचारों और चिंतन का एक खास महत्त्व रहा है जो राष्ट्रीय विचार मंच तथा 'विचार दृष्टि' के जरिए लोगों तक पहुँच रहे हैं। मैंने महसूस किया है कि व्यर्थ की सोच के पचड़े में पड़कर ये कभी तनावग्रस्त नहीं होते। इनकी सोच सदैव सार्थक और सकारात्मक होती है। इनका मानना है कि अधिकतर लोग व्यर्थ की सोच के चलते खुद का अहित करते हैं। मनोचिकित्सक भी मानते हैं कि अधिकांश लोग बेवजह की बातों पर अधिक सोच की वजह से तनावग्रस्त हो रहे हैं। सिद्धेश्वर जी हमेशा अपने दोस्तों के बीच चर्चा के दौरान कहते हैं कि ऐसी बातें जो मायने ही नहीं रखती, उनपर घंटों सिर खपाकर अपनी ऊर्जा क्यों जाया की जाए। तमाम धर्मों के अध्ययन और व्याख्या के बाद इन्होंने मानवता के धर्म से बड़ा कोई धर्म नहीं माना और राष्ट्रीयता की मूल प्रवृत्ति ही इनकी

नजर में सबसे बड़ा दायित्व है जिस प्रकार भारतीयता की मूल प्रवृत्ति ही सबके लिए सुख की कामना है-

*'सर्वे भवंतु सुखिनः, सर्वे संतु निरामयाः।'*

दरअसल इनकी विचारधारा लोकतांत्रिक विवेक के आधार पर ही ज्यादा गढ़ी हुई है। इनकी सामाजिक दृष्टि की वजह से ही साहित्य और समाज से जुड़े इनके विचार अधिक प्रगतिशील हैं। स्वस्थ मानसिकता पर जोर देते हुए व्यक्ति के आचरण, व्यवहार को ये जीवन का यथार्थ मानते हैं और इसे झुठलाने के नतीजों को व्यक्ति और समाज के लिए पीड़ादायक भी। यही कारण है कि मानवीय जीवन में शुचिता और सार्वजनिक जीवन में पारदर्शिता पर ये सर्वाधिक बल देते हैं। इनके स्वयं के जीवन में भी ये गुण स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं। जिसे केवल मैं ही नहीं, बल्कि इनके समकालीन भी महसूस करते हैं। इनका पूरा-पूरा प्रयास यह रहता है कि मन, वचन और कर्म पर पूर्ण नियंत्रण रहे। इनकी नैतिक शक्ति और चारित्रिक पवित्रता बड़ी-से बड़ी भौतिक शक्ति को अपने आगे झुकाने की ताकत रखती है। बंधन मुक्त जीवन, सच्चाई, सरलता, निर्मलता, सुख और दुख में अविचल अवस्था, निर्भयता, आत्मत्याग और अहिंसा से हमें आत्मसाक्षात्कार में सहयोग मिलेगा, यही सिद्धेश्वर जी की अवधारणा है। इनकी इस अवधारणा से सहमत होना इसलिए लाजिमी है कि तेजी से बदलते इस डिजिटल युग में शांति से जीने के लिए इसके अलावा और कोई चारा नहीं है।

यह बात ठीक है कि सामाजिक एवं साहित्यिक कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने में सिद्धेश्वर जी ने अकेले अहम भूमिका अदा की है, किंतु इन्होंने कभी अकेलेपन का अनुभव नहीं किया। जब कभी किसी कार्य को लेकर ये आगे बढ़े, डॉ० साधु शरण, जियालाल आर्य, मनोज कुमार, रवीन्द्र प्रसाद यादव, डॉ० शाहिद जमील, दुर्गा शरण मिश्र, डॉ० अरुण कुमार गौतम, डॉ० रामशोभित प्रसाद सिंह, ज्योति शंकर चौबे, डॉ० धर्मेन्द्रनाथ अमन, डॉ० अनिल दत्त मिश्र, डॉ० रमाशंकर श्रीवास्तव, जे० एन० पी० सिन्हा, प्रो० डॉ० विश्वेन्द्र कुमार सिन्हा, कुंज बिहारी लाल, डॉ. देवेन्द्र आर्य, संजय सौम्य, दिनेश कुमार, अवधेश प्र० सिंह, सी० एस० पटेल, मिथिलेश कुमार, एस० के० कटियार सरीखे प्रबुद्धजनों एवं सहयोगियों को अपने साथ पाया। ये इन महानुभावों के सद्गुणों को ग्रहण करने के लिए सदैव लालायित रहते हैं और इनके दिशा निर्देशों का पालन करते हैं। इनके व्यक्तित्व की एक और विशेषता यह है कि ये अपने दुर्गुणों के प्रति हमेशा सजग हैं और जो व्यक्ति अपने दुर्गुणों के प्रति सचेत है, वही दूसरों के सद्गुणों को ग्रहण करने के लिए लालायित

रहेगा। यही कारण है कि सिद्धेश्वर जी की कृतियों एवं आलेखों में मानव के दुर्गुणों का संकेत मिलता है। हमारा विश्वास है कि सरल, सहज एवं सरस भाषा में कहे गये इनके विचार से आज के सामाजिक एवं सार्वजनिक जीवन में उठनेवाली शंकाओं के निदान ढूँढ़ने में सहायक सिद्ध होंगे। **राष्ट्रीय विचार मंच** और **विचार दृष्टि** के ध्वज-धारक सिद्धेश्वर जी के अथक परिश्रम और निष्ठा से पूरे भारत में इनके सहयोगी, प्रबुद्धजन तथा मंच एंव विचार दृष्टि के पदाधिकारी और सदस्य क्रियाशील हैं और राष्ट्रीय चेतना का अलख जगाने में प्रयासरत हैं। मेरा यह सौभाग्य है कि मैं भी यथासंभव इनके इस पावन कर्म में इनका एक सहयोगी हूँ और ये भी मुझे अपने अभिभावक से अधिक अपना अभिन्न मित्र समझते हैं। आखिर तभी तो ये साधिकार मुझे बेहिचक कोई कार्य सौंप देते हैं और मैं इनके आग्रह को आदेश मान उस कार्य में लग जाता हूँ। आलस को त्याग उद्यम करना और समय के महत्त्व को समझना हमने इन्हीं से सीखा है। इनका मानना है कि त्याग जीवन को सबसे बड़ा सुख देता है और उसी से शक्ति मिलती है।

मैंने बराबर इनसे यह कहते सुना कि राजनीति में मैं कुछ देने आया हूँ, कुछ लेने नहीं। न तो राजनीति में आकर मुझे कुछ पाने की लालसा है और न ही कुछ खोने का भय। कल्पना करें इस व्यक्ति के त्याग की भावना की। इनके त्याग की भावना ने इन्हें सुख के उच्चतम शिखर पर पहुँचा दिया है। सच मानिए तो देने का जो सुख है, लेने के सुख से बहुत बड़ा है। वस्तुत: मन का सुख सबसे बड़ा सुख है।

सिद्धेश्वर जी आत्मश्लाघा पंसद नहीं करते और न दूसरों की निंदा सुनना चाहते हैं। यह किसी भी व्यक्तित्व की बहुत बड़ी विशेषता है। आमतौर पर आदमी अपने गुणों की प्रशंसा और दूसरों की निंदा सुनना चाहता है, किंतु अपने गुणों की प्रशंसा सुनने का त्याग इनके व्यक्तित्व की एक बड़ी विशेषता है। इसी प्रकार दूसरों से ईर्ष्या भी ये नहीं करते, बल्कि दूसरों के अच्छे गुणों का आत्मसात् करने की चाहत रखते हैं। ईर्ष्या से मुक्त होना भी बड़ी बात है, जो इनके व्यक्तित्व में है और वह औरों से इन्हें अलग करता है। दु:ख का एक कारण यह भी है कि मनुष्य दूसरों से ईर्ष्या करता है और दूसरों के सुख से वह दुखी है। इसलिए सिद्धेश्वर जी का यह कहना है कि व्यक्ति जितना अपने दु:ख से दुखी नहीं है उससे अधिक वह दूसरों के सुख से दुखी है। भले ही बहुत से मुद्दों पर उनके वैचारिक विरोधी इनके विचार से सहमत न हों, मगर इनकी सादगी, स्पष्टवादिता, वैचारिक प्रखरता और सतत् सक्रियता-कर्मठता का लोहा अवश्य मानते हैं। वैचारिक स्तर पर

इन्हें दूर-दूर तक सम्मान मिलता है क्योंकि ये देश के विभिन्न क्षेत्रों, विशेषकर दक्षिण-पश्चिम के राज्यों में घूम-घूमकर साहित्यकारों, पत्रकारों, विचारकों एवं नौजवानों को इकट्ठा कर उन्हें विचारशीलता में दीक्षित करते हैं। सिद्धेश्वर जी सरीखे विचारकों एवं सामाजिक कार्यकर्ताओं की प्रजाति आज लुप्त प्राय है। इनकी चिंता है कि आज विचार और विचारधाराओं के नाम पर सरासर बेईमानी की जा रही है। छद्म विचार प्रचारित किये जा रहे हैं।

इनके व्यक्तित्व की एक बड़ी विशेषता यह है कि ये स्पष्ट रूप से यह मानते हैं कि प्राय: सभी धर्ममत अपनी नियामिका शक्ति खो चुके हैं। आधुनिकता के हमलों ने उनकी जीवनी शक्ति क्षीण कर दी है क्योंकि वे राजनीतिक और आर्थिक ताकतों के पिछलग्गू की भूमिका में आ गये हैं। यही वजह है कि उनके आचरण और सिद्धांत में कोई तारतम्य दिखाई नहीं देता। फलत: विचार धाराओं के विखंडन और आस्थाकेंद्रित सांप्रदायिकताओं के घालमेल ने भारतीय समाज को गहरे संकट में डाल दिया है। सिद्धेश्वर जी यह जरूरत महसूस करते हैं कि इन सभी प्रचलित ढाँचे को तोड़ा जाए और भारतीय समाज की नयी संकल्पना की जाए, किंतु यह भी बिना एक सुविचारित आध्यात्मिक दर्शन के संभव नहीं। यदि ऐसा होता है तभी लोगों में बढ़ती निरंतर निराशा पर रोक लगाया जा सकता है और समस्याओं का समाधान भी खोजा जा सकता है।

महानगरों की भागदौड़ में और आपाधापी भरी जिंदगी में जहाँ हर कोई एक दूसरे को पछाड़ने की होड़ में लगा है और ऐसे में शानो-शौकत दिखाना ही उसकी जिदंगी का मकसद बन गया है सिद्धेश्वर जी निश्चित रूप से '*कमीज ज्यादा सफेद क्यों*' के द्वंद में फँसे लोगों की पंक्ति में आज खड़े नहीं दिखते हैं। एक भरे-पूरे परिवार के पल भर में लाश में तब्दील हो जाने के पीछे बाजारवाद के चलते महानगरीय जीवन में आया बदलाव भी उनके जीवन को प्रभावित नहीं कर सका है जबकि ये भी दिल्ली तथा पटना जैसे महानगरों में अपनी जिंदगी के अधिकतर क्षण व्यतीत करते हैं। यह इनके व्यक्तित्व की एक अलग विशेषता कही जाएगी। सुख-सुविधा और शानो-शौकत की तमाम चीजों से भरे बाजार का आकर्षण और उधार देने को लालायित तमाम सरकारी व निजी बैंकों की आपसी होड़ जिसने एक मामूली व्यक्ति की इच्छाओं को आसमान पर पहुँचा दिया है, सिद्धेश्वर जी आज भी उससे अप्रभावित हैं।

समाजशास्त्रियों का मानना है कि जेब से एक फूटी कौड़ी खर्च किये बगैर सुविधा के तमाम साधन रातों-रात जुटा लेने का आकर्षण इतना बढ़ा है कि इससे

बच पाना हर किसी के लिए आसान नहीं है मगर सिद्धेश्वर जी ने अपने को इससे बचाया है, क्योंकि कर्ज की अँधेरी गुफा इस महानगरीय व्यक्ति को अपने में समा लेने में असमर्थ रही है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रतिस्पर्धा की परिभाषा बदल जाने से लोग तनाव में जी रहे हैं। अपनी इच्छाओं को प्राप्त करने की होड़ को प्रतिस्पर्धा का नाम दे देना ही तनाव की मुख्य वजह है। क्षमता के हिसाब से ही प्रतिस्पर्धा में शामिल होना चाहिए। ऐसा करनेवाले कभी अतिरिक्त दबाव में नहीं आते। सिद्धेश्वर जी इसी राह पर चल रहे हैं क्योंकि प्रतिस्पर्धा का क्षमता के बीच सामंजस्य बिठाने में ये माहिर हैं। जो लोग यह सामंजस्य नहीं बिठा पाते हैं तो वे तनाव व द्वंद्व से घिर जाते हैं। सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व की यह विशेषता है कि ये अपने द्वारा निर्धारित लक्ष्य को क्षमता के हिसाब से आँकते हैं और लक्ष्यों के विकल्प को भी स्वीकार करने की आदत डालते हैं। इस संदर्भ में एक छोटा-सा संस्मरण याद आया, वह यों है- एक बार इनके सुपुत्र सुधीर रंजन जब दिल्ली से पटना के प्रवास में थे तो बिजली के गुल हो जाने के बाद उन्होंने अपने पिता सिद्धेश्वर जी को एक सुझाव दिया, 'पिताजी, मात्र दस हजार रुपए लगेंगे, आप एक इनवर्टर खरीद लें। सिद्धेश्वर जी ने अपने सुपुत्र को एक सीधा उत्तर दिया, बेटे, दस हजार रुपए यदि मेरे पास जमा हो जाएँ तो उससे मेरी एक किताब प्रकाशित हो जाएगी, जिसकी चिंता मुझे पहले है। यही है निर्धारित लक्ष्य को उनकी अपनी क्षमता के हिसाब से आँकना और लक्ष्यों के विकल्प को भी स्वीकार करने की आदत डालना। इसी तरह आज जब महानगरीय जीवन जीनेवाले 80 प्रतिशत के पास कोई-न-कोई मोबाइल है, सिद्धेश्वर जी के लक्ष्य में आज भी वह निर्धारित नहीं है, क्योंकि अतिरिक्त रेकरिंग खर्च से ये हमेशा बचना चाहते हैं। आखिर तभी तो जून 2005 में अपने सुपुत्र के द्वारा उपलब्ध कराए गए मोबाइल को रखने से इन्होंने इनकार कर दिया। यह भी उनके व्यक्तित्व की एक अलग विशेषता है।

किसी व्यक्ति के व्यवहार उसके व्यक्तित्व का आईना होता है और इसकी कथनी व करनी का अंतर ही जीवन के प्रति उसके दृष्टिकोण को दर्शाता है। जब कोई दूसरा उससे वादा करता है तो वादे के इर्द गिर्द दूसरा व्यक्ति अपनी आशाओं का तानाबाना बुन लेता है और जब वादा पूरा नहीं किया जाता तो यही आशाएँ बिखर जाती हैं। वह व्यक्ति जिसने वादा किया था, दूसरे की नजरों में अपनी विश्वसनीयता खो बैठता है। सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व की एक खास विशेषता यह भी है कि भूल से भी ये ऐसा वादा नहीं करते हैं जिसे ये निभा न पाएँ क्योंकि जब कभी किसी कार्य को पूरा करने का वादा ये कर लेते हैं तो ये समझते हैं कि

किसी ने अपना विश्वास इन्हें सौंपा है और यदि ये अपना वादा पूरा नहीं करते हैं तो ये उन लोगों की नजर से गिर जाएँगे। वादों पर अमल करने के परिणाम स्वरूप इन्हें न केवल पारिवारिक, बल्कि सामाजिक व कार्यक्षेत्र के मोर्चे पर भी अच्छे परिणाम मिलते हैं। कारण कि ये ऐसा कोई वादा ही नहीं करते हैं, जो व्यावहारिक न हों। यदि किसी कारणवश वह अव्यावहारिक हो जाएँ जिसे निभाना इनसे संभव न हो सके तो बिना समय गंवाये संबंधित व्यक्ति से मिलकर ये अपनी स्थिति स्पष्ट कर देते हैं जिससे इनका अपराध क्षम्य हो जाता है।

इनके साथ मेरा संबंध अनवरत रूप से प्रगाढ़ होता चला जा रहा है। स्नेह के अपार सागर हैं सिद्धेश्वर जी। इनके स्नेह की शीतल छाया तले कोई भी सुख की नींद सो सकता है। इनकी अपनी परेशानी और उलझन बाँटी जा सकती है। ऐसा कई बार हुआ है कि मैं अपनी तथा समाज के अन्य सदस्यों की शंकाएँ, समस्याएँ और जिज्ञासाएँ जब-तब इनके पास लेकर पहुँचता रहा हूँ। ये धैर्य से सुनते, गंभीरता से जवाब देते और जहाँ तक इनसे हो पाता उन समस्याओं का समाधान भी निकाला करते रहे हैं। इनसे मिलना सुख और संतुष्टि से भर जाना होता है। हमारे घर इनका आना घर के सदस्य का उपस्थित होना है। जब भी ये बिहार के बाहर से पटना आते हैं मेरे घर अवश्य पधारते हैं। मेरे भीतर एक नयी स्फूर्ति आना होता उनका आगमन। यही कारण है कि इनके आने की सदैव प्रतीक्षा रहती है।

पिछले तीन-चार दशकों से सिद्धेश्वर जी से निकटता बराबर बनी रही, निजी, पारिवारिक, साहित्यिक और सामाजिक स्तरों पर, जिसे मैं ज्यादा महत्त्व देता हूँ। विगत कई वर्षों से ये दिल्ली में रह रहे हैं, लेकिन मेरा अनुभव बताता है कि इन्होंने कभी भी पटना और पटना में रहनेवाले अपने मित्रों और शुभेच्छुओं को पराया नहीं होने दिया।

सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व की विशेषता यह है कि विपरीत परिस्थितियों में भी ये संयम में रहते हैं। यही कारण है कि बड़ी-बड़ी परेशानियाँ भी धैर्य व साहस से टल जाती हैं या दूर हो जाती हैं। गुजरे वक्त का रोना ये कभी नहीं रोते हैं। कठिन परिस्थितियों में भी ये मुस्कुराते रहते हैं और जिंदगी में आये हर बदलाव का सहज ही सहन करते रहते हैं। इसीलिए तो कहा गया है-

***जिंदगी जिंदादिली का नाम है,***
***मुर्दादिल क्या खाक जिया करते हैं।***

सिद्धेश्वर जी अपने देश, काल और समाज को खुली आँखों से देखते हैं और सच कहा जाए तो अपने देश, काल और समाज को खुली आँखों देखनेवाला

ही समाजसेवा अथवा साहित्यसेवा का काम कर सकता है। आज जब लेखक, कलाकार व संत इत्यादि व्यापारी होते जा रहे हैं, सिद्धेश्वर जी संग्रह करने में विश्वास नहीं रखते हैं। लाख को खाक और खाक को लाख होने में वक्त नहीं लगता। संग्रह विग्रह का ही दूसरा नाम है। संग्रह में सच्चा सुख नहीं है और न कोई बड़प्पन की बात ही इसमें नजर आती है। साधारण ढंग की व्यवस्था चलती रहे, आदमी निश्चिंत रहा करे, तो वही सच्चा सुख है। सच्ची सेवा वणिक् बुद्धि से नहीं चलती। स्वाभिमानी साधक सिद्धेश्वर जी अपनी स्थितियों में ही मगन रहते हैं। आधुनिकता चाहे जितनी हो, व्यक्ति के कुछ आदिम संस्कार नहीं बदलते। सिद्धेश्वर जी के साथ यह बात खरी उतरती है। इनके व्यक्तित्व पर आधुनिकता की छाप नहीं पड़ी। वही सादा रहन-सहन, शुद्ध शाकाहारी खान-पान, आचार-व्यवहार सभी जस-का-तस। इनके पटना अथवा दिल्ली स्थित निवास आप चले जाएँ, अतिथि सत्कार में तनिक कहीं कोताही नहीं। अपने सीमित साधन और पहुँच के तहत जब जितना कुछ इनसे बन पड़ता है, ये कोई कोर-कसर नहीं उठा रखते हैं। आखिर तभी तो इनके आचरण और स्वभाव की चर्चा इनके सभी शुभेच्छु मुक्त कंठ से करते हैं। ऐसा भी नहीं कि इनके सामने बाधाएँ नहीं आयी हैं, किंतु उन बाधाओं से जूझने की इनकी दृढ़ता का हर कोई कायल है। अपने संस्कारों, स्वाभिमानी प्रकृति और जिजीविषा के बल पर विपरीत परिस्थितियों का सामना करते हुए हर तरह से पत्रकारिता और समाजसेवा में ये सफल हो रहे हैं।

सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व की एक विशेषता यह भी है कि ये बाहर की भाग-दौड़ में जरा भी नहीं पड़े और न इन्होंने कभी किसी की नकल की। अब यही देखिए न, स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के पूर्व तक महीने में 20-25 हजार रुपये तक ये वेतन एवं भत्ते के रूप में पाते रहे, फिर भी इनके पास सेवानिवृत्ति तक रहा एक ब्लैक एंड व्हाइट टेलिविजन ही। पहले तो गाड़ी के नाम पर एक छोटी-सी 'वीकी' ही उनके पास थी, पर सेवानिवृत्ति के लगभग दस साल पूर्व इन्होंने एक स्कूटर खरीदा और वह भी किस्त पर, जिसपर चढ़कर ये स्वयं कभी दफ्तर नहीं गये, बल्कि इनके सुपुत्र ने ही उसका इस्तेमाल किया। आज यदि एक मारुति वैन इनके पास हुई भी, तो पेंशन एवं ग्रैच्युटी के पैसों से। घर तो इन्होंने बना लिया था भारत सरकार से मिले गृहनिर्माण अग्रिम की राशि से ही। मन में संयम-संतोष रखा है सिद्धेश्वर जी ने अपने अभी तक के जीवन में।

## अनुशासनप्रियता

सिद्धेश्वर जी ने अपने सार्वजनिक जीवन की एक लंबी पारी में संभवत:

अनुशासनहीनता का एक भी उदाहरण नहीं दिया और ये एक गंभीर, सौम्य तथा प्रखर अनुशासनप्रिय नागरिक बने रहे। विवेकशीलता, बौद्धिकता और सामाजिकता मनुष्य के कुछ ऐसे गुण हैं जिनके आधार पर ही किसी प्राणी को मनुष्य कहा जाता है। इसे मद्देनजर रखते हुए सिद्धेश्वर जी का कहना है कि अपने विवेक से नैतिक, अनैतिक में भेद करना, बुद्धि से सोच-समझकर न कि क्षणिक उन्मादवश कर्म करना तथा स्वार्थी न होकर परमार्थी होना ही मनुष्य का धर्म हो जाता है। परिवार में अनुशासन भी तभी कायम रह सकता है जब परिवार के जिम्मेदार लोग सामाजिक अनुशासन के साथ हैं।

स्वाभिमानी एवं जी-हुजूरी से कोसों दूर रहनेवाले समाजसेवी सिद्धेश्वर ने राजपथगामी सामाजिक कार्यकर्ताओं के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत किया है। सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व पर जब हम एक नजर डालते हैं तो इनमें प्रबल इच्छाशक्ति भी स्पष्ट दिखायी देती है जिसके बलबूते पर संपादित इनके कार्यविशेष ही इन्हें मील के पत्थर बनाएँगे, ऐसा मेरा विश्वास है। किसी व्यक्ति की पहचान उसके आचरण एवं चिंतन से होती है और चिंतन की अभिव्यक्ति उसके कार्यकलाप से होती है। सिद्धेश्वर जी इस दृष्टिकोण से खरे उतरते हैं। यही कारण है कि इन्हें जनमत के प्रेम का उपहार प्राप्त है यह इनकी रचनाओं, कार्यकलापों और अनवरत सक्रियताओं का ही प्रतिफल है। साहित्यकार जैनेन्द्र कुमार ने भी कहा है कि जनता अर्जित कर लेना कोई बड़ी बात नहीं हैं यह किसी को भी हासिल हो सकता है, लेकिन जनता के प्रेम का उपहार पा लेना बड़ी बात है। साहित्यकार अपनी रचनाओं से जो पाता है वह प्रेम का उपहार होता है। इसलिए रचनाकार होना बड़ी बात माना गया है।

सिद्धेश्वर जी की व्यस्तता किसी से छिपी नहीं है, किंतु इनके व्यक्तित्व की खूबी यह है कि अपनी तमाम व्यस्तताओं के बावजूद ये दूसरे सामाजिक कार्यकर्ताओं व नेताओं की तरह खुद को अकारण ही व्यस्त जाहिर नहीं करते। हाँ, इस बात में सचाई है कि अत्यंत अधिक सुलभ होने से अर्थात् सरलता और स्वाभाविक रूप से किसी महत्त्वपूर्ण चीज के सुलभ होने पर लोग उसका समुचित आदर और सदुपयोग नहीं करते, ठीक उसी प्रकार जैसे अत्यंत महत्त्वपूर्ण तीर्थ प्रयाग के रहनेवाले नित्य गंगास्नान का लाभ छोड़कर कुएँ आदि पर स्नान करते हैं। सिद्धेश्वर जी की स्थिति भी लगभग वैसी ही है। अत्यंत सुलभ, सहज और सरल होने की वजह से इनकी महत्ता को लोग नहीं समझ पाते। इसीलिए तो किसी कवि ने कहा है-

*"न समझोगे तो मिट जाओगे ऐ हिंदोस्तां वाले।*
*तुम्हारी दास्तां तक भी न होगी दास्तानों में।"*

इनके व्यक्तित्व का विश्लेषणात्मक अनुशीलन करने पर, यह सहज ही विदित होता है कि इनकी वास्तविक महत्ता राजनीतिक, सामाजिक एवं साहित्यिक श्रेष्ठता, इनके हृदय की निर्मलता, स्वभाव की सरलता एवं अपनापन समाज व देश के प्रति इनके अनुराग में निहित है। इनका हृदय इतना स्निग्ध और कोमल है कि इनके भीतर लोगों को एक *'आत्मीयता'* झलकती है।

पर्वतों के शिखर पर अथवा बहुत ऊँचे आकाश में बादल मंडराते हैं और पवन उन्हें झकझोरा करता है, फिर भी वे रसातल को नहीं जाते ठीक उसी प्रकार सिद्धेश्वर जी विघ्न-बाधाओं से नहीं डरते और न ही उनसे इनके ऊपर कोई प्रभाव पड़ता है। यों तो इनके जीवन में बाधाएँ कम आयी हैं, यदि थोड़ी बहुत आयी भी हैं तो उनका मुकाबला इन्होंने डटकर किया है और फिर उन्हें पारकर ये आगे बढ़ते गये हैं। जहाँ तक पत्रिका प्रकाशित करने के बीच में आयी आर्थिक कठिनाई का सवाल है, तो सदस्यता अभियान में तेजी लाकर तथा अपने *'गुडबिल'* के बल पर कई प्रतिष्ठानों से विज्ञापन का सहयोग प्राप्त कर पत्रिका को इन्होंने अनियमित नहीं होने दिया है। आप इस बात से अवगत हैं कि आज के इस दौर में अधिकतर लोग आलोचना के आदी हो गये हैं, स्वयं तो वे काम नहीं करेंगे और न किसी कार्य में योगदान करेंगे, लेकिन दूसरे द्वारा किये जा रहे कार्यों की आलोचना अवश्य करेंगे, और दूसरे के कार्यों में नुक्ता-चीं निकालेंगे। सिद्धेश्वर जी जहाँ नकारात्मक आलोचनाओं की परवाह नहीं करते, वहीं रचनात्मक आलोचना का तहेदिल से स्वीकार करते हैं, ताकि अपनी गलतियों का सुधार कर सकें। इस क्रम में ये अहंकार को फटकने भी नहीं देते, क्योंकि ये जानते हैं कि शिखर पर पहुँचना जितना कठिन है, उतना ही आसान है शिखर से लुढ़कना। इसलिए शिखर पर पहुँचने के उल्लास को बचाये रखने के लिए जरूरी है कि आदमी अपने निजत्व पर नियंत्रण रखे। शिखर पर पहुँचने के उल्लास को वह अहंकार में तब्दील न होने दे, क्योंकि जीवन सिर्फ़ एक क्षण नहीं है। जीवन सिर्फ कोई विजय या पराजय भी नहीं है। वह संपूर्णता में है। जीवन की सार्थकता भी इसी में है कि व्यक्ति सामाजिक एकता, सामाजिक न्याय और भविष्य की आस्था के लिए विवेक और चेतना को जगाये रखे, क्योंकि सत्ता की दौड़ और लूटने-छीनने की होड़ ने हमारे सारे सपने, विजन छीन लिये हैं। हम एक भविष्यहीन समाज में जी रहे हैं। इससे मुक्ति दिलाने की जवाबदेही समाज के सजग प्रहरी को लेनी होगी। यह काम बिना सामाजिक प्रतिबद्धता के संभव नहीं। जिस समाज में सामाजिक मुठभेड़ें या बौद्धिक विमर्श नहीं होते वह तो निर्जीव और मृत होता है। अतएव यह समय की माँग है कि अन्याय और शोषण के ख़िलाफ़ लड़ाई लड़ी जाए, भूखमरी, गरीबी, बेकारी और

आर्थिक विपन्नता के विरुद्ध आवाजें उठाईं जाएँ, तभी समाज की प्रगति की कल्पना की जा सकती है। सिद्धेश्वर जी बताते हैं कि समाज अंतत: वही आगे बढ़ता है जिसमें अपने इतिहास को प्रति नीर-क्षीर विवेक हो, अच्छाइयों को बनाये रखने और बढ़ाने का स्वभाव हो और बुरे पहलुओं से संघर्षरत रहने की इच्छाशक्ति हो। इसी के साथ विकास के पथ पर अग्रसर होने के लिए व्यक्ति की सोच में बदलाव लाना होगा। किसी भी ख्वाब को हकीकत में बदलने के लिए परिकल्पना जरूरी है, क्योंकि सपने विचार में बदलते हैं और विचार ही कार्यरूप लेते हैं। सिद्धेश्वर जी विकास के लिए शांति, सद्भाव और मिले-जुले प्रयास को भी आवश्यक मानते हैं।

सिद्धेश्वर जी संभवत: महालेखाकार कार्यालय के ऐसे पहले अधिकारी हुए, जिनके सम्मान में ऑडिट एवं एकाउन्ट्स दोनों के महालेखाकारों, वरिष्ठ उपमहालेखाकारों एवं उपमहालेखाकारों सहित दोनों कार्यालयों के समस्त अधिकारियों व कर्मचारियों की उपस्थिति में एक विदाई-समारोह का आयोजन कर इन्हें भावभीनी विदाई दी गयी। कहा जाता है कि इसके पूर्व इन कार्यालयों में इस तरह का सम्मिलित विदाई-समारोह नहीं हो पाया था। यह इस बात का द्योतक है कि इन्होंने अपने सेवाकाल में अपने सहयोगियों एवं अधिकारियों के बीच न केवल अपनी प्रतिष्ठा का शानदार महल तैयार किया, बल्कि उसे खूबसूरत और मजबूत बनाया। दोनों कार्यालयों के कर्मियों की नजर में ये सर्वाधिक प्रिय एवं सम्माननीय अधिकारी रहे।

सारी स्थितियों के बीच सिद्धेश्वर जी के मन के एक कोने में ऐसा भी है जो चीजों को अवसाद तक पहुँचने से बचाता है और वह है इनका अटूट विश्वास, जो इन्हें जीवंत बनाये रखता है और कर्त्तव्यविमूढ़ता की स्थिति तक पहुँचने नहीं देता। एक ओर जहाँ इनकी जिंदादिली, वाक्पटुता और भाषा से बहुतों को प्रेरणा मिलती है, वहीं इनकी साफगोई, रंग और ढंग से प्रोत्साहन भी। इनके भीतर छिपा एक कोमल इंसान है जिसके कारण इंसानी तजुर्बों में इनकी गहरी दिलचस्पी है।

सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व का विश्लेषणात्मक अनुशीलन करने पर यह सहज ही विदित होता है कि इनकी वास्तविक महत्ता, सामाजिक प्रतिबद्धता एवं राजनीतिक श्रेष्ठता, इनके हृदय की निर्मलता, स्वभाव की सरलता एवं अपनापन में है।

## बहुआयामी व्यक्तित्व

सिद्धेश्वर जी का व्यक्तित्व बहुआयामी है। आप एक साथ चिंतनशील

रचनाकार, सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ता, रचनात्मक कार्यों के सफल कर्मयोगी और दक्ष पत्रकार हैं। साथ ही साहित्यिक एवं सांस्कृतिक चेतना से ये अनुप्राणित हैं। अध्यवसाय का महत्त्व जाननेवाले सिद्धेश्वर जी पूर्णतया कर्मयोग के अनुभवपाठ से अवगत हैं। राष्ट्रीय चेतना के वैचारिक गैरसरकारी संगठन **राष्ट्रीय विचार मंच** के ये अखिल भारतीय महासचिव हैं और इसके मुखपत्र *'विचार दृष्टि'* के संस्थापक संपादक। इस संस्था और पत्रिका को इनके प्रणेता सिद्धेश्वर के रूप में देखा जा सकता है। संस्थापक और संस्था दोनों दो नहीं, बल्कि एक हैं।

सिद्धेश्वर जी मिलनसार और स्पष्टवादी हैं। इनका सौहार्द और सौमनस्य भाव से लोगों से मिलना अद्वितीय है। श्रेष्ठ से श्रेष्ठ साहित्यकार और नौसिखिये, सबके प्रति इनका व्यवहार एक-सा रहता है। सिद्धेश्वर जी लेखक या रचनाकार को समाज का अभिन्न अंग मानते हुए कहते हैं कि समाज में जब कभी कोई अन्याय, अत्याचार हो तो उसे देखकर साहित्यकार चुप नहीं रह सकता। अपनी प्रतिक्रिया को वह अपनी लेखनी के माध्यम से प्रस्तुत करेगा ही। इनका विचार है कि अपनी रचनाओं द्वारा लेखक समाज में परिवर्तन ला सकता है।

सिद्धेश्वर जी में आज भी जवानी का जोश-खरोश है। इसलिए आज भी सत्कर्म करना ये जीवन की सार्थकता समझते हैं। करुणा, दया, प्रेम, त्याग और परोपकार से इनका व्यक्तित्व भरा है और इनको अपनाकर ये अपना जीवन सफल मानते हैं। इसी भाव से प्रेरित होकर ये दूसरों का अहित करने से जहाँ तक हो सकता है बचते हैं। वर्तमान का सदुपयोग करने में ये सदैव विश्वास रखते हैं, क्योंकि वही भविष्य को सुखमय और सौंदर्यमय बनाता है।

प्रत्येक लेखन में इनके गंभीर व्यक्तित्व का साक्षात्कार होता है। अभी तक का इनका जीवन समाजसेवा, साहित्य एवं पत्रकारिता में अर्पित है। पटना एवं दिल्ली की सांस्कृतिक-साहित्यिक गतिविधियों के ये केंद्र हैं। उनकी वेशभूषा, वार्तालाप शैली एवं पारिवारिक परिवेश से ये भारतीय संस्कृति के परिचायक हैं। हाँ, ये आदर्शवादी न होकर अत्यंत व्यावहारिक, प्रत्येक कार्य को बड़े सलीके और नफासत से करनेवाले सुरुचिसंपन्न व्यक्ति हैं। समाज के नये कार्यकर्ताओं, नये लेखकों, विद्यार्थियों को इनके व्यक्तित्व से बहुत-सी बातें सीखने जैसी हैं। बोलचाल बहुत आकर्षक, मृदुल और मोहक है। जो कोई भी अगर इनके साथ कहीं बैठ जाता है, तो वह अपना दु:ख भूल बैठता है।

सिद्धेश्वर जी को यात्रा करना बहुत पंसद है। इनके मित्र कहते हैं कि इनका एक पैर यदि पटना में रहता है, तो दूसरा पैर दिल्ली में। ये एक श्रमशील संपादक व लेखक हैं। अपनी पांडुलिपि हो या औरों की वर्तनी की एक छोटी-सी भूल भी इन्हें सालती है। इनके स्वभाव में आकर्षण और विकर्षण, प्यार

और तिरस्कार का बड़ा विचित्र मिश्रण दिखता है। यदि किसी के व्यक्तित्व में इन्होंने विशेषता पायी, तो उनके प्रति इनका आकर्षण अतिशय हो जाता है, किंतु यदि उसी व्यक्ति को राह भटकते हुए पाते हैं, तो उनका तिरस्कार करने में जरा भी देर ये नहीं करते। गलत रास्ते से चलनेवाले को ये तरजीह देने से यथासंभव परहेज करते हैं, सम्मान देने से दूर भागते हैं। यही कारण है कि ऐसे कितने लोग इनके सान्निध्य में आये और गये, क्योंकि गलत रास्ते पर चलनेवाले इनके साथ बहुत दूर तक जाने में अपने को असमर्थ पाते हैं। लिखने में चाहे कोई कितनी ही आलोचना करे, ये उत्तर नहीं देते हैं, बल्कि आलोचना को भी अपनी पत्रिका के पाठकीय पन्ने में प्रकाशित कर डालते हैं। मन-ही-मन ये भले ही उसे बुरा मानें, लेकिन प्रयत्नशील रहते हैं कि उस आलोचक को अपनी गलती समझ में आ जाए। दूसरी ओर यदि ये समझते हैं कि आलोचक ने इनके बारे में सही कहा है, तो ये अपनी गलती के सुधार का प्रयास करते हैं। इसका परिणाम यह देखने को मिलता है कि इनके कई कटु आलोचक बाद में इनके परम भक्त हो जाते हैं। इस दृष्टिकोण से इनके कदम अधिक कारगर और दूरगामी होते हैं। इनका सदैव यह कहना है, जो जितनी दूर तक इनका साथ देता है, वह धन्यवाद का पात्र है और यदि साथ छोड़ता है, तो उसकी ये भर्त्सना नहीं करते, क्योंकि ये समझते हैं कि आगे आनेवाले दिनों में जब उसे अपनी गलती समझ में आ जाएगी अथवा अपनी व्यस्तता से मुक्ति मिलेगी तो वह स्वयं इनके साथ हो लेगा। यही कारण है कि किसी की गलती की भर्त्सना करने की बजाय उससे अपनी दूरी बना लेना ही ये श्रेयस्कर मानते हैं। सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व के इसी गुण के चलते इनके बड़बोले आलोचक छोटे पड़ जाते हैं और बाद में वे इनके प्रशंसक बन जाते हैं। यही कारण है कि ये सुनते सब की हैं, पर करते हैं अपने मन की। अनुकरण अथवा नकल करना इन्हें पसंद नहीं, बल्कि हमेशा एक नयी लकीर खींचना ज्यादा चाहते हैं। इसलिए इन्हें *'लकीर का फकीर'* नहीं कहा जाता।

अपने आपको ये सदैव स्वतंत्र रखते हैं। ये न तो किसी खेमे में रहते हैं और न ही ये गुटबंदी पंसद करते हैं। सामाजिक, सांप्रदायिक, राजनीतिक अथवा साहित्यिक संस्थागत कट्टरता में ये विश्वास नहीं करते। साहित्य को न तो ये मनोरंजन का साधन मानते हैं और न ही अर्थोपार्जन का। हाँ, स्वाभाविमान को ये सर्वोपरि मूल्य मानते हैं।

## साहित्यकारों के प्रति सम्मान का भाव

सिद्धेश्वर जी जिस समाज या संगोष्ठी में जाते हैं, बेहिचक अपनी अभिव्यक्ति सुव्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करते हैं। ये बराबर कहते हैं, समय के अनुसार अपनी मानसिकता में परिवर्तन लाने से ही परिवार और समाज चलता

है। गलत कार्य करनेवाले को इन्होंने कभी प्रश्रय नहीं दिया, चाहे अपने ही परिवार के सदस्य क्यों न हों। इनके पारदर्शी मुखड़े पर कभी संकोच, संदेह या पराजय का भाव नहीं दिखता, सदैव हँसमुख चेहरे पर विजय एवं विनम्रता ही दिखती हैं, जिस पर साधना का पानी चढ़ा हुआ रहता है। साहित्य के प्रति गहरी निष्ठा एवं साहित्यसेवियों के प्रति आंतरिक सम्मान के भाव से भरे होने का ही परिचायक था कि इंजीनियर साहित्यकार भोला प्र० सिंह *'तोमर'* तथा जनचेतना के गीतिरचनाकार गोपीवल्लभ सहाय के न केवल जीवनकाल में राष्ट्रीय विचार मंच के मुखपत्र *'विचार दृष्टि'* के माध्यम से उनकी कृतियों को प्रमुखता से प्रकाशित कर उन्हें सम्मानित किया, बल्कि उनके देहावसान के बाद भी उनकी रचनाओं को केंद्र में रखकर विशेषांक निकाला, जिसकी साहित्यकारों एवं समाजसेवियों द्वारा मुक्त कंठ से सराहना की गयी। स्व० भोला प्र० सिंह *'तोमर'* की यादगार को ताजा रखने के ख्याल से सिद्धेश्वर जी ने अपने संपादकत्व में *'यादें'* शीर्षक से एक काव्य संकलन भी प्रकाशित किया, जिसमें उनकी अप्रकाशित रचनाओं का समावेश किया गया। यही नहीं, मंच के अध्यक्ष जिया लाल आर्य के अपेक्षित सहयोग से तोमर जी के सुपुत्र संजय की बिहार सरकार के लोक निर्माण विभाग में नियुक्ति भी करवायी और एक सप्ताह के अंदर ही अपने महालेखाकार कार्यालय से पेंशन राशि का भुगतान-प्राधिकार पत्र भी निर्गत करवाया। इसी प्रकार सप्रसिद्ध नाटककार बाबूराम सिंह लमगोड़ा, नई धारा के संपादक उदयराज सिंह, पटना के पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष प्रो० श्यामनन्दन शास्त्री, प्रो० शैलेन्द्र नाथ श्रीवास्तव, डॉ० सहदेव सिंह 'पाचर', निर्मल वर्मा, अमृता प्रीतम, मनोहर श्याम जोशी, विंध्यवासिनी दत्त त्रिपाठी तथा विंध्यवासिनी देवी आदि के निधन के पश्चात् अपनी विचार दृष्टि पत्रिका के आवरण पृष्ठ पर इन साहित्यकारों की तस्वीरें छापकर अथवा संस्मरण सिखकर सिद्धेश्वर जी ने उन्हें सम्मानित किया।

मेरी समझ है कि सिद्धेश्वर जी की सामाजिक प्रतिबद्धता इनके संघर्ष के अनुभवों का प्रतिफल है। सामाजिक सरोकारों से जुड़े रहने के कारण इनमें एक ऐसी समर्थता पैदा हुई, जिससे सामाजिक परिवेश की मानवीय पीड़ा को इन्होंने बखूबी समझा, परखा और अपने लेखन में अभिव्यक्त किया। इसीलिए इन्होंने लेखन शैली की उत्कृष्टता की अपेक्षा लेखन विषय की गुणवत्ता को अधिक महत्त्व देना पंसद किया। आपका मानना है कि लेखन विषय का सर्वोत्तम स्रोत सामाजिक सरोकार ही है, क्योंकि समाज के करीब में रहकर ही समाज के लोगों को ठीक से पढ़ा जा सकता है और उनकी पीड़ा को देखा जा सकता है। यही कारण है कि इनके शब्द और कर्म एक-दूसरे से अनुप्राणित होते हैं।

आजकल की युवा पीढ़ी को लेकर सिद्धेश्वर जी काफी चिंतित दिखायी देते हैं। आखिर तभी तो घूम-फिर कर इनकी चर्चा में *'युवा वर्ग'* आ ही जाता है। साहित्य और समाज उत्थान के लिए ये निरंतर प्रयत्नशील रहते हैं। साहित्यकारों और समाजसेवियों से नियमित रूप से मिलना और दुआ-सलाम कर अपनी जीवंतता का परिचय देना इनके साहित्यिक और सामाजिक कर्मों का ही एक भाग है।

## सकारात्मक सोच :

मुश्किलों से गुजरकर ही हर शख्स कामयाबी की मंजिल पर पहुँचता है। मुश्किलों का दौर किसी भी व्यक्ति के अपने इम्तहान का वक्त होता है। इसलिए तो मुश्किलों में सिद्धेश्वर जी सकारात्मक विचारों को महत्त्व देते हैं। इनका कहना है कि जब कोई व्यक्ति नकारात्मक विचारों को महत्त्व देता है तब उसमें उसकी रहती है ऊहापोह, निराशा, आशंका, भय इत्यादि की मनोदशा। यदि हौसला बुलंद नहीं है तो यकीन मानें उसको नकारात्मक नतीजे ही मिलते हैं। इनका स्पष्ट मत है कि सकारात्मक सोच किसी की जिंदगी को भी सकारात्मक बना सकती है। सकारात्मक दृष्टि के लिए उत्साह का होना जरूरी है। यह एक ऐसा प्रेरणात्मक बल है, जो हमें सकारात्मक लक्ष्य तक पहुँचाने के लिए प्रेरित करता है। इसके द्वारा असंभव काम संभव होने लगता है तथा गंतव्य स्थान तक पहुँचा जा सकता है। सकारात्मकता एक ऐसी दृष्टि है जो सभी बाधाओं को दूर कर सफलता की ओर ले जाती है। यह हमें कठिन परिश्रम करने के लिए प्रेरित करती है, ताकि अपने निश्चित लक्ष्य तक पहुँचा जा सके।

अपनी सकारात्मक दृष्टि के पीछे क्या राज है, इस प्रश्न के उत्तर में सिद्धेश्वर जी बताते हैं कि मैं अपनी योग्यता और उत्साह को लोगों के बीच सबसे अधिक सहभागी करता हूँ तथा दूसरों के गुणों को अपनी गुणग्राहकता के माध्यम से अपने में बढ़ाने का प्रयास करता हूँ। एक छोटा-सा उत्साह भी हमें जीवन की वास्तविकता से अवगत कराता है कि पहले हम क्या थे और अब क्या हैं। वह हमें लक्ष्य प्राप्त करने में सहायता करता है। आज हमारे देश को ऐसे उत्साह की ही लोगों को आवश्यकता है, जो फिर से लोगों में विश्वास को वापस ला दे, वफादारी का पाठ पढ़ाए, नैतिकता को बढ़ावा दे, ममता को पुनः जीवित कर सके तथा सही नेतृत्व प्रदान कर सके। आखिर तभी तो राष्ट्रपति डॉ० ए० पी० जे० अब्दुल कलाम के इन शब्दों से लोग प्रेरणा ग्रहण कर रहे हैं- *''इस पृथ्वी का सबसे महत्त्वपूर्ण शक्तिशाली साधन उत्तेजित मस्तिष्क है और एक अरब मस्तिष्क हमारे राष्ट्र की सचमुच ही महती शक्ति हैं।''* इस दृष्टिकोण से देखा

जाए तो उत्साह और सकारात्मक पहल ही जीवन का दिशाधार बनते हैं तथा मानव के उत्थान का कारण बनता है। अतएव जीवन की खुशी हम उत्साह और सकारात्मक दृष्टि के माध्यम से ही प्राप्त कर सकते हैं। यही कारण है कि सामाजिक मूल्यों और सिद्धांतों को ये सर्वोच्च प्राथमिकता देते हैं।

सिद्धेश्वर जी जीवन को चुनौती के रूप में स्वीकार करते हैं। इसलिए इससे भागने की बजाय डटकर मुकाबला करना ही बेहतर समझते हैं। इनका प्रयास होता है कि सामने आनेवाली कठिनाइयों से रू-ब-रू हो सकें। बेहद सौम्य और सहृदय शख्स सिद्धेश्वर जी ने न केवल मुझे, बल्कि संपर्क में आनेवाले सभी व्यक्तियों को भी अपनी-अपनी अभिरुचियों को पूरा करने को प्रेरित किया। यही वजह है कि इनके अन्य कई साथी इनके सान्निध्य में आकर समाज, साहित्य और पत्रकारिता की ओर मुखातिब हुए। सिद्धेश्वर जी के जिस गुण से मैं सर्वाधिक प्रभावित हुआ हूँ, वह है इनका मृदुभाषी और विनम्र स्वभाव। मुझे इनके भीतर छिपी दृढ़ इच्छाशक्ति के दर्शन भी हुए। जीवन के प्रति इनके जोश और काम करने की तमन्ना ने अत्यधिक आकर्षित किया, किंतु अभी तक पूरे सफर के दौरान इनके जीवन के आदर्श ही हर मोड़ पर नयी प्रेरणा देते रहे हैं। इनकी प्रवृत्ति में ही आशावाद के बीज छिपे हैं जो समसामयिक परिस्थितियों के प्रति इनका व्यवहार व नजरिया देखने को मिलता है। जब जीवन के प्रति नजरिया अपना लेते हैं, तो किसी भी कठिन परिस्थिति से निकलना मुश्किल नहीं होता। प्रतिकूल परिस्थितियों से इनके निपटने का सबसे अच्छा तरीका यह होता है कि ये सकारात्मक और विजय प्राप्त करनेवाले विचारों से काम लेते हैं। सकारात्मक विचारों को अपना कर ही ये सफलता और असफलता के बीच के अंतर को पाटते हैं। इसीलिए ये मानते हैं कि स्वयं को बदलने की कुँजी हर व्यक्ति के हाथ में होती है। जो व्यक्ति हृदय रोग या पीलिया से पीड़ित है उसे सामान्य जीवन जीने के लिए अपने खान-पान की आदतों में बदलाव लाने के लिए मजबूर होना पड़ता है, क्योंकि जीवन को आराम और चैन से जीना भी उसका एक उद्देश्य है। समस्या पैदा होने से पहले ही अपने अंदर आवश्यक परिवर्तन लाने पर सिद्धेश्वर जी बल देते हैं, क्योंकि किसी समस्या के उत्पन्न हो जाने के बाद दबाव में कुछ करने की बजाय यह एक बेहतर विकल्प है। इसलिए जो भी व्यक्ति विजेता बनना या अपने व्यक्तित्व का विकास करना चाहता है, उसे अधिक से अधिक ध्यान सकारात्मक सोच व व्यवहार पर केंद्रीत करना चाहिए। इसी से उसकी अनुकूल परिस्थितियों का सृजन हो सकेगा। निराशा, प्रतिकूलता और नकारात्मक सोच से सदैव दूर रहकर, सकारात्मक चिंतन के आधार पर कार्य करने की शक्ति, मनोबल, आत्मबल और ऊर्जा एकत्र करनी

चाहिए। असफलता की पर्याय है निराशा, जिससे सदैव बचना चाहिए। इससे बचने का एक ही सबसे सशक्त उपाय है कि हमें अपने अंदर सकारात्मक सोच विकसित करनी चाहिए। वही सिद्धेश्वर जी की सफलता का राज है। कठिन-से-कठिन चुनौतियाँ उनके व्यक्तित्व में परिपक्वता लाती हैं, जिससे मुश्किल कार्य संपन्न करने की इनमें शक्ति अर्जित होती है। अनुकूलता तो सभी चाहते हैं किंतु उसी अनुपात में प्रतिकूलता भी होती है, फिर उन्हें कौन अंगीकार करेगा? इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को अपने आत्मबल से प्रतिकूलता को अनुकूलता में बदलने का प्रयास करना चाहिए।

नकारात्मक विचार हर व्यक्ति के मन में उत्पन्न होते हैं। शोक, वियोग, दुर्घटना इत्यादि की परिस्थितियों में नकारात्मक विचारों का आना स्वाभाविक है। ये नकारात्मक विचार प्राय: परिस्थितियों के बदल जाने पर स्वयं ही अपना रूप बदल लेते हैं और व्यक्ति वापस उत्साही और प्रसन्न हो जाता है। किंतु कभी-कभी नकारात्मक विचार बढ़ते-बढ़ते विकराल रूप धारण कर लेते हैं। इस स्थिति में ये सिर्फ हमारी भावनाओं पर ही नहीं, बल्कि हमारे निर्णयों पर भी असर डाल सकते हैं, जिसके परिणामस्वरूप हताशा, चिंता और आत्मविश्वास में कमी आ सकती है।

विद्यार्थियों में नकारात्मक विचार आने से व्याकुलता का जन्म होता है। यह व्याकुलता कभी-कभी तो विद्यार्थी को परिश्रम करने के लिए प्रेरित कर सकती है, मगर यही व्याकुलता बढ़ जाने से एकाग्रता पर असर डालकर पढ़ाई में व्यवधान भी पैदा कर सकती है।

इसके मद्देनजर नकारात्मक विचारों पर नियंत्रण आवश्यक है। चाहे ये परिस्थितिवश हों या प्रकृतिवश, अगर ये हमारे जीवन में बाधा डालते हैं, तो इनका निवारण जरूरी है। सिद्धेश्वर इसी के मद्देनजर नकारात्मक विचारों पर सदैव नियंत्रण रखते हैं और दूसरों को इन नकारात्मक विचारों को अपने में नहीं आने देने की सलाह देते हैं। सिद्धेश्वर जी का दृष्टिकोण सदैव सकारात्मक रहा है मीन-मेख निकालना इनके लिए कभी महत्त्वपूर्ण नहीं रहा है। सुखों की परिपूर्णता के लिए इन्होंने कभी-कभी दु:ख भी चाहा है और दुखों के रूप को कभी अपने घर में, तो कभी बाहर झाँकने की इनकी दृष्टि रही है, क्योंकि उन दु:खों में भी सुख के बीज बोने और अंकुरित करने की इनकी चेष्टा रही है। दूसरों की दरिद्रता व कष्टों से इन्हें पूर्ण सहानुभूति रही है, जब कभी कोई शुभेच्छु इनके सान्निध्य में जाता है, सदैव सुखद अनुभूति उसे हुई है बशर्ते कुछ सकारात्मक खोजने का प्रयास रहा हो आखिर तभी तो इनके रचना संसार में जीवन-जगत की विसंगतियाँ खुद की तलाश हैं और इनकी कविताओं का मूल स्वर जीवन जगत् की पीड़ा

को व्यक्त करना ही रहा है

सिद्धेश्वर जी के मन में सदैव सकारात्मक विचार ही आते हैं, क्योंकि इनका मानना है कि विचार ही बाद में शब्द रूपों में परिवर्तित हो जाते हैं। इनके कार्य भी सकारात्मक सोच से परिपूर्ण होते हैं, जो कालांतर में आदतों में परिवर्तित हो जाते हैं। इसी प्रकार इनकी आदतें सकारात्मक होने की वजह से इनकी जीवन-शैली में रूपातंरित हो जाती हैं और जीवन शैली के सकारात्मक होने से इन्हें इनके कार्य में सफलता मिलती है। यही कारण है कि ये स्वयं एक दीप बनकर दूसरों को रोशनी प्रदान करने की बात करते हैं। जिसने स्वयं दीप बनने का काम नहीं किया, वह आखिर दूसरों की रोशनी को क्योंकर पसंद करेगा। सुप्रसिद्ध गीतकार गोपाल दास 'नीरज' ने इसी भाव को अपनी इन पंक्तियों में पिरोया है-

*''औरों के घर की धूप उसे क्यों पसंद हो,*
*बेची हो जिसने रोशनी अपने मकान की।''*

## आशावादी दृष्टिकोण और कर्म के प्रति अटूट आस्था

जिंदगी में हर रिश्ते की अपनी खास जगह है, लेकिन जन्म, जाति और उम्र की सीमाओं से परे एक बड़ा ही खुबसूरत रिश्ता है अर्द्धांगिनी का, जो हर रिश्ते को मजबूत और मजबूत बनाता है, क्योंकि पुरुषों से कई गुणा अधिक ममता, प्यार, सहनशीलता जैसे उच्च मानवीय गुण नारीरूपी अर्द्धांगिनी में होते हैं। एक पूरा परिवार नारी रूपी जिस धुरी पर टिका होता है वह धुरी बनकर जीना स्वयं में गर्व की बात है। अर्द्धांगिनी के रूप में हो या किसी और रूप में औरत वह सब कुछ कर सकती है जो एक पुरुष नहीं कर सकता। इस पूरे संसार में जो कुछ भी अच्छा बचा हुआ है, वह सिर्फ औरत की वजह से ही है। किंतु बाजार ने घरों की किवाड़ और दांपत्य जीवन के रिश्तों को भी खटखटाना और चुनौती देना शुरू कर दिया है। आधुनिक दांपत्य-जीवन का सारा संघर्ष इसी बाजार की वजह से प्रारंभ हो गया है।

बाजार ने पत्नियों को मोबाइल और पतियों को लैप टॉप अवश्य थमा दिया है, पर उसने उनसे उनके बीच का सहज प्रेम भी छीन लिया है, बाजार ने दांपत्य-जीवन में इतना हस्तक्षेप किया है कि वे एक खास समय के बाद चाहकर भी उससे उबर नहीं सकते हैं।

किंतु हमारा देश उस प्राचीन बरगद के पेड़ की तरह है जिसकी जड़ें जमीन में बहुत गहरी हैं अत: उसको पूरी तरह-हिला पाना इतना आसान नहीं है फिर भी बाजारवाद का प्रहार हमारे सामाजिक और आर्थिक ढाँचे पर भी पड़

रहा है जिसके परिणाम स्वरूप विवाह संस्था प्रभावित हुई है और प्रति-पत्नी के संबंध में भी अग्नि रेखा खींच रही है। तो आइए, इसी परिप्रेक्ष्य में यहाँ हम सिद्धेश्वर जी के दांपत्य-जीवन रूपी पुस्तक के कुछ पृष्ठों पर अंकित भाषा को पढ़ें-परखें। देश में आजकल सब कुछ बिकाऊ हो गया है, निष्ठाएँ, प्रतिबद्धताएँ और यहाँ तक कि आत्माएँ भी। आज आदमियत का अता-पता नहीं है। केवल घोटालों और दलालों का ही बोलबाला है और पश्चिमी शक्तियाँ देश को कठपुतली की तरह नचाने पर तुली हैं। इतनी क्रूर और भयावह स्थिति के बावजूद सिद्धेश्वर जी निराश नहीं हैं, हताश नहीं हैं। ये आशावादी रहे हैं। इसीलिए ये आगे बढ़ते जाते हैं और लोगों को आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हैं। इनका मानना है कि विषम परिस्थितियों का सामना स्वयं जाग्रत होकर और आमजन में चेतना जाग्रत कर ही किया जा सकता है। यदि समाज में जड़ता आयी है, तो उसकी जड़ता पर प्रहार करके ही उसे स्वस्थ और चेतनशील बनाया जा सकता है। राजनीति का यदि आपराधिकीकरण हुआ है और उसके सिद्धातों एवं नैतिकता में गिरावट आयी है, तो अच्छे, विचारवान् एवं प्रबुद्धजन के हस्तक्षेप से ही उसे ठीक रास्ते पर लाया जा सकता है। गंदी राजनीति इसलिए तो अच्छी नहीं हो जाएगी कि कुछ प्रबुद्धजन उसके अच्छे होने की कामना मन में संजोये बैठे हैं।

इस देश के लोगों में गीता का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उसमें लिखे हर वाक्य को लोग ब्रह्मवाक्य मानते हैं। उसमें कृष्ण के द्वारा बताये गये सिद्धांतों के सम्मुख लोग श्रद्धा से सिर नवाते हैं, किंतु गीता के सार- *'कर्म'* को लोग अपने व्यावहारिक जीवन में कहाँ अपना पाते हैं ? सिद्धेश्वर जी पूर्णरूप से कर्म को महत्त्व देते हुए अपने रोजमर्रा के जीवन में निर्लिप्त होकर काम करते हैं, जो शिक्षा गीता ने दी है। हम देखते हैं कि संग्रह की प्रवृत्ति, इच्छा, क्रोध, भय इत्यादि से ये कोई वास्ता नहीं रखते और अपने कर्म में तत्पर रहते हैं। सर्जनात्मक कर्मों में ये जी-जान लगा देते हैं, सामाजिक कल्याण के कार्यों में अपनी सारी शक्ति लगा देते हैं।

सिद्धेश्वर जी के आशावादी दृष्टिकोण की एक ज्वलंत घटना इनके द्वारा सन् 2002 ई० के 16 एवं 17 नवंबर को नयी दिल्ली में आयोजित मंच के द्विदिवसीय राष्ट्रीय अधिवेशन से संबंधित है। जब इस अधिवेशन के आयोजन का निर्णय मंच की राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति द्वारा लिया गया तो आर्थिक पक्ष सबसे पहले आया। सिद्धेश्वर जी ने राष्ट्रीय विचार मंच के अखिल भारतीय महासचिव होने के नाते इसकी जिम्मेदारी स्वयं संभाली। बात लाख-दो लाख की नहीं थी, कारण कि अधिवेशन में देश के हर क्षेत्र से लगभग 500 प्रबुद्ध प्रतिनिधियों को आमंत्रित करने की योजना बनी थी। इसलिए उनके आवास,

आवभगत, भोजन-अल्पाहार के साथ-साथ आवागमन, सभागार आदि के किराये सहित पाँच-सात लाख रुपयों से ऊपर की राशि का आकलन किया गया था। इस प्रकार प्राँच-सात लाख रुपयों की राशि की व्यवस्था करना कोई आसान काम नहीं था। इनके कार्यकर्ताओं में निराशा थी, उसमें भी तब, जब दुनिया के सर्वशक्तिशाली और सबसे धनी देश की राजधानी में रहनेवाले एक अनिवासी भारतीय अधिवेशन के आधे खर्च की राशि देने का आश्वासन देने के बाद ऐन वक्त पर मुकर गये और मात्र दस हजार रुपयों से सहयोग करने की बात कही। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि वैसे वक्त में भी सिद्धेश्वर जी के चेहरे पर एक शिकन तक न आयी और न ही निराशा के भाव। उस शख्स की दस हजार रुपयों की राशि को इन्होंने न केवल ठुकराया, बल्कि चंदा की वसूली को भी नजरअंदाज किया। राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति के ही एक वरिष्ठ सदस्य दिल्ली नगर निगम के पार्षद श्री ईश्वर गोयल जैसे उदारहृदय सदस्य ने सिद्धेश्वर जी के आग्रह पर सभी प्रतिनिधियों के लिए चाय-पानी से लेकर भोजन-जलपान तक की सारी व्यवस्था करने का दायित्व अपने सबल कंधों पर लेकर सबों को हैरतअंगेज स्थिति में डाल दिया, फिर सिद्धेश्वर जी द्वारा चलाये जा रहे वैचारिक क्रांति के लिए अभियान तथा अधिवेशन के उद्देश्यों के महत्त्व के मद्देनजर न केवल अणुव्रत आंदोलन से जुड़े मुनि-संतों के सान्निध्य से सारी व्यवस्था सहज रूप से सुलभ हुई, बल्कि अणुव्रत महासमिति के अध्यक्ष डॉ० धर्मेंद्र नाथ अमन तथा अणुव्रत भवन के प्रमुख न्यासी श्री के० एल० जैन का भरपूर सहयोग प्राप्त हुआ। यह उदाहरण सिद्धेश्वर जी के आशावादी दृष्टि का परिचय देता है। ये किसी कार्य के लिए कदम बढ़ा देते हैं, क्योंकि ये जानते हैं कि आर्थिक कठिनाई इनके रास्ते में नहीं आएगी। इस माने में ये अपने को अकेले नहीं पाते हैं।

वस्तुत:, इंसान के कामों को पूर्ण बनाने में अलिप्तता का सिद्धांत बिल्कुल ही सटीक और सफल रहा है। सच्चा कर्मयोगी लिप्त नहीं होता, वह सर्जनात्मक काम करने के लिए जी-जान लड़ा देता है। वह सामाजिक कल्याण के कामों में अपनी सारी शक्ति लगा देता है। सिद्धेश्वर जी भी लिप्त नहीं हैं। इनके जीवन में एक लक्ष्य है जिसे प्राप्त करने के लिए ये आगे बढ़ते हैं बड़ी एकाग्रता तथा ईमानदारी से। आगे बढ़ने के बाद इन्हें साधन भी मिल जाते हैं और काम करने की प्रेरणा भी मिलती जाती है। इसी का प्रतिफल है कि अपनी अंतर्निहित प्रतिभा, आत्मविश्वास, लगन, परिश्रम और अध्यवसाय के बल पर ये न केवल समाज का मार्गदर्शन कर रहे हैं, बल्कि हिंदी साहित्य को ऐसी अनेक बहुमूल्य कृतियाँ प्रदान कर राष्ट्रभाषा का गौरव बढ़ाने के साथ हिंदी साहित्य को समृद्ध कर रहे हैं।

सिद्धेश्वर जी को चिंतित होते बहुत कम लोगों ने देखा होगा। ये कभी चिंता न कर चिंतन करते हैं। सदैव ये प्रसन्नचित्त दिखते हैं, कारण कि इनमें त्याग की भावना विद्यमान है। त्याग या समर्पण नहीं कर पाना भी चिंता एवं दुख का कारण है। चिंता नहीं करने के पीछे कर्म पर विश्वास करना ही एकमात्र तथ्य है। जो आदमी कर्म को ही सब कुछ समझता है वह चिंतित क्यों होगा? चिंता करने की जगह वह कर्म करेगा और कर्म करने से उसे जहाँ धन और यश की प्राप्ति होगी, वहीं उससे चिंता भी दूर होगी। गाँधी जी को उद्घृत करते हुए ये कहते हैं कि अच्छे नागरिक का जीवन कर्म का जीवन है, देश की सेवा में रत रहना हैं। बापू ने कहा था- *''मेरी पुस्तकें मेरे शरीर के साथ जलकर राख हो जाएँगी, मेरे वक्तव्य और मेरा लेखन नहीं, मेरे कर्म अमर रहेंगे।''* इनका कहना है कि कर्म करने पर फल मिलेगा ही। गीता के उस सूत्र को वे अक्षरश: मानते, जानते हैं और चरितार्थ करते हैं-

***''कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।''***

कर्म के प्रति इनका अटूट विश्वास ही कड़ी मेहनत करने के लिए इन्हें प्रेरित करता है। यही कारण है कि उम्र के छह दशकों से अधिक पार कर जाने के बाद भी 12-14 घंटे तक ये काम करते हैं। वैसे कहा भी गया है कि कड़ी मेहनत व्यक्ति के लिए सफलता का मूल मंत्र है। जिन लोगों ने धन व ज्ञान पाया है और सर्वप्रिय रहे हैं उनके पीछे उनकी कड़ी मेहनत छिपी है। जो विद्यार्थी मेहनत से पढ़ता है, वह परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त कर उत्तीर्ण होता है और कड़ी मेहनत के बल पर ही पद और प्रतिष्ठा पाता है। जो कर्मचारी अथवा अधिकारी कार्यालयों में मेहनत और ईमानदारी से काम करता है, उसे सहकर्मी और उच्चाधिकारी सब कोई सम्मान देते हैं। जो उद्यमी होता है, लक्ष्य उसके पीछे-पीछे चलता है। दूसरी ओर जो मेहनत से कतराता है, आलस करता है, वह निकृष्ट जीवन जीने के लिए मजबूर होता है, क्योंकि मेहनत नहीं करने से वह अनेक रोगों का शिकार हो जाता है।

मधुर वाणी मनुष्य की एक ऐसी विलक्षण शक्ति है, जो न केवल उसे महान बनाती है, बल्कि उसी से उसके व्यक्तित्व का सही मूल्यांकन होता है। सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व में एक विशेषता यह भी है कि ये उद्वेग को सहन करते हैं और सबसे मधुर बोलते हैं। जिस मनुष्य की मधुर वाणी है, वह सबका होता है, सबका अपना हो जाता है। इसी गुण की वजह से सिद्धेश्वर जी न केवल अपने दफ्तर में सर्वप्रिय रहे, बल्कि आज भी अपने शुभेच्छुओं के बीच प्रिय हैं। कटु शब्द का व्यवहार ये नहीं करते। सबके प्रति ये सद्भाव रखते हैं। जब तक किसी व्यक्ति के भीतर सत्त्व गुण पूर्ण रूप से विकसित नहीं होगा, उसमें

सद्भावना नहीं आएगी। सिद्धेश्वर जी के अंदर यही सत्त्व गुण विद्यमान है। इसी गुण के कारण इनके हृदय में किसी के प्रति घृणा, ईर्ष्या, क्रोध और वैर के भाव नहीं उपजते हैं। इनके चेहरे पर हर वक्त प्रसन्नता की मुस्कुराहट का कारण भी यही है। ये स्वयं भी प्रसन्न रहते हैं और दूसरों को खुश देखना चाहते हैं। अपनी विनम्रता और उदारता की प्रवृत्ति के चलते भी ये दूसरों की प्रसन्नता चाहते हैं। वैसे भी प्रसन्न और संतुष्ट रहनेवाले व्यक्तियों का ही जीवन ज्योतिपुंज बनकर दूसरों का मार्गदर्शन करने में सक्षम होता है। प्रसन्नता तो मनुष्य की आतंरिक स्थिति की साक्षिणी है। प्रसन्नचित्त सिद्धेश्वर जी को देखकर सच मानिए कि उनके पास जानेवाले व्यक्ति स्वयं भी प्रसन्न होते हैं। उनके पास बैठकर दु:खी व्यक्ति भी थोड़ी देर के लिए प्रसन्नता के प्रवाह में अपने दु:ख को भूल जाता है।

## राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रति समर्पण

किसी देश की संस्कृति उस देश की भाषा से ही पहचानी जाती है। हमारा यह भारत देश अरसे तक गुलामी की जंजीर में जकड़ा रहा। अँग्रेजों ने गुलाम भारतवासियों पर अँग्रेजी भाषा को हावी कराने का भरपूर प्रयास तो किया ही, आजादी के बाद भी यहाँ के लोगों, खासकर नौकरशाहों में अँग्रेजियत की ऐसी मानसिकता भर दी कि धीरे-धीरे हिंदी भाषा अँग्रेजी से पिछड़ती गयी। अँग्रेज तो चले गये इस देश को छोड़कर, किंतु मानसिक गुलामी यहाँ के वासियों में आज भी बरकरार है। ऐसा प्रतीत होता है कि देश की संस्कृति को बर्बाद करने की एक सोची-समझी चाल है। सिद्धेश्वर जी ने ऐसे लोगों की चाल को समझते हुए राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रगामी प्रयोग और प्रचार-प्रसार का जो संकल्प लिया, उसके लिए ये आज भी प्रयासरत हैं। ये अपने देशवासियों को धिक्कारते हैं और कहते हैं कि लानत है ऐसे लोगों पर, जो अपनी राष्ट्रभाषा को हीन दृष्टि से देखते हैं और इसका प्रयोग करने में अपनी तौहीन समझते हैं। जब तक ऐसी पिछड़ी मानसिकता के लोग यहाँ रहेंगे, तब तक हिंदी भाषा एक पिछड़े और निचले दर्जे की भाषा बनी रहेगी।

सिद्धेश्वर जी राष्ट्रभाषा हिंदी के नाम, मान-सम्मान और संरक्षण के लिए निरंतर प्रयासरत हैं। हिंदी भाषा को राष्ट्रचेतना का दर्पण बताते हुए आपने हिंदी और भारतीयता का प्राण वायु-सा गहरा संबंध प्रतिपादित किया। भारतवासियों द्वारा अपनी सर्वथा समर्थ मातृभाषा हिंदी की अवहेलना कर, विदेशी भाषा अँग्रेजी के प्रयोग को ये उनकी दास मनोवृत्ति और उनके मानसिक, वैचारिक, आतंरिक पिछड़ेपन का दर्पण बताते हैं। इनकी हिंदी सेवा को देखते हुए ही 25 अक्टूबर 1999 से 25 अक्टूबर 2001 तक तीन वर्षों के लिए रेल मंत्रालय की अनुशंसा

पर भारत सरकार के गृह मंत्रालय ने इन्हें रेलवे हिंदी सलाहकार समिति का सदस्य मनोनीत किया था। इस प्रकार हिंदी के लिए ये समर्पित हैं और चाहते हैं कि हिंदी अंतरराष्ट्रीय भाषा बनने का अपना अधिकार प्राप्त करे।

इनका कहना है कि अंतरराष्ट्रीय परिवेश में हिंदी पूरी तरह विकसित, समृद्ध, सशक्त भाषा है और यह अपने उचित अधिकार प्राप्त कर सारी मानव जाति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकेगी। ये यह भी मानते हैं कि विश्वशांति और विश्वबंधुत्व के परिप्रेक्ष्य में हिंदी की न केवल भाषागत अपितु भौगोलिक सीमाएँ असीम हैं। यह देश की आत्मा को समझने में पूर्ण सहायता देती है। अँग्रेजियत की ओर भागते हुए भारतवासियों को हिंदी के प्रति प्रेरित और प्रोत्साहित करने के लिए सिद्धेश्वर जी के कथन काफी महत्त्व रखते हैं। हिंदी के प्रति अगाध निष्ठा इनके रोम-रोम में विद्यमान है।

भाषा के सवाल पर सिद्धेश्वर जी का मानना है कि भाषा की राजनीति और राजनीति की भाषा का दौर अभी जारी है। यह कार्य राष्ट्रीय भाषाओं को समृद्ध एंव समर्थ बनाने की सहप्रेरणा से नहीं, बल्कि राष्ट्रीय एकात्मकता को खंडित करके क्षेत्रीयता की विद्वेषमूलक प्रवृत्तियों को उभारकर सत्ता की राजनीतिक गेंद अपने पास में बनाये रखने की सुनियोजित कोशिश है। क्या किसी देशभक्त नागरिक से यह अपेक्षा की जा सकती है कि वह स्वदेशी के विरूद्ध विदेशी का न केवल समर्थन करे, अपितु उसे चिरस्थायी प्रतिष्ठा प्रदान करने के लिए हर संभव व्यवस्था भी करे? जिन अँग्रेजों की गुलामी की जंजीर तोड़ने के लिए देश के गाँव-गाँव नगर-नगर में संघर्ष हुआ, हर भाषा, प्रांत, जाति, वर्ग एवं वर्ग के लोगों ने पराधीनता को पाप समझकर स्वाधीनता के लिए अपार कष्ट झेले, उन्हीं अँग्रेजों की भाषा अँग्रेजी को कलेजे से चिपकाकर रखने का प्रयास आखिर क्यों किया जा रहा है? क्या यह मानसिक हीनता शारीरिक बंधन से ज्यादा घातक और दयनीय नहीं है।

जिस भाषा से देश के जन सामान्य का कोई वास्ता नहीं है उसका सत्कार और करोड़ों नागरिकों की भाषा का तिरस्कार किस विवेक का द्योतक है? राष्ट्रभाषा हिंदी के विरूद्ध और अँग्रेजी के पक्ष में वकालत करनेवाले यदि राष्ट्र की अन्य भाषाओं से स्वयं को जोड़ने एवं राष्ट्रभाषा सीखने की कोशिश करते तो कोई कारण नहीं था कि आजादी के अट्ठावन वर्ष बाद भी वे इसे न सीख पाते।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि स्वदेश की भावना की स्पष्ट

अभिव्यक्ति स्वभाषा के माध्यम से ही संभव है। हमें यह याद रखना होगा कि देश को राजनीति और आर्थिक गुलामी से मुक्त कराने मात्र से स्वातंत्र्य की साधना की सिद्धि नहीं हो सकती। उसके लिए मानसिक दासता की समाप्ति भी आवश्यक है और यह कार्य स्वभाषा के प्रति स्वाभिमान जाग्रत करके ही किया जा सकता है। अँग्रेजी में जोड़ने का तत्त्व और बात है लेकिन उसे हिंदी या अन्य भारतीय भाषाओं के स्थान पर नौकरियों के लिए माध्यम बनाये रखना खतरनाक है। यह गुलामी की संकीर्ण मनोवृत्ति का द्योतक है। *''इस यथार्थ को भी नहीं झुठलाया जा सकता है कि विदेशों में हिंदी के पठन-पाठन के प्रति रुचि बढ़ती जा रही है। यह उन अँग्रेजी दां सभ्रांत लोगों की आँखें खोलने के लिए काफी है, जो अपने अस्तित्व के लिए अँग्रेजी को सर्वोपरि मानते हैं और वैश्विक उदारीकारण के इस दौर में जिन्होंने अँग्रेजी को अपना सब कुछ समझ लिया है।''*

आजादी के 58 साल बाद भी हम एक स्वतंत्र, सार्वभौम और स्वाधीन राष्ट्र के नागरिक की तरह स्वभाषा का प्रयोग नहीं कर पा रहे हैं और निवेशिक भाषा से हमारी कब मुक्ति मिलेगी, इस सवाल का जवाब कोई नहीं देना चाहता है। आखिर हम अँधों की तरह विदेशी भाषा की लाठी के सहारे कब तक चलते रहेंगे? हमारा राष्ट्रीय गौरव, स्वाभिमान कब जागेगा?

स्वतंत्रता आंदोलन का संचालन करनेवाले गाँधी, तिलक, पटेल, सुभाष इत्यादि ने अँग्रेजी का बहिष्कार करने व हिंदी तथा स्वदेशी भाषाओं को अपनाने पर बल दिया था और वास्तव में आज नेतागण राष्ट्रीय छवि बनाने के लिए हिंदी की शरण में जाते हैं पर सत्ता पर विराजमान होते ही उनके दिल-दिमाग से हिंदी गायब हो जाती है, इसे विडंबना नहीं तो और क्या कहेंगे? स्वभाषा आंदोलन समय की माँग है। देश के विकास की कुँजी हिंदी व भारतीय भाषाओं में ही है और देश की अपनी एक राष्ट्रभाषा होने से राष्ट्रीय एकता व अखण्डता भी मजबूत होगी। अतएव समय की माँग है कि देश को अपनी पहचान सुरक्षित बनाये रखने के लिए हिंदी को गौरवपूर्ण स्थान देना ही होगा और सभी भारतीय भाषाओं को समुन्नत करना ही होगा।

आज से सवा सौ वर्ष पूर्व बाबू भारतेंदु हरिश्चंद्र ने पग-पग पर हुए आघातों और विरोधों से हिंदी की रक्षा की। उन्होंने भाषा-प्रेम के अभाव को और आत्म सम्मान की कमी को बहुत पहले ही ताड़ लिया था। तभी तो उन्होंने अपने समाज को सबोंधित करते हुए कहा था-

*''निज भाषा, निज धरम, निज मान करम व्योहार।*
*सबै बढ़ावहु बेगि मिलि कहत पुकार-पुकार॥''*
*और उन्होंने राष्ट्रोन्नति का मूल हेतु मानते हुए मंत्र फूँका*
*'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति के मूल।*

*दांपत्य जीवन*

पति-पत्नी के बीच सामान्यत: जैसा रिश्ता होता है मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि उससे कुछ अधिक ही घनिष्ठ और आत्मीय रिश्ता सिद्धेश्वर जी और इनकी पत्नी के बीच है। एक तरफ जहाँ संपत्ति और विपत्ति की घड़ी में पत्नी इनकी सहभागिनी हैं तो दूसरी तरफ विभिन्न विषयों में इन दोनों पति-पत्नी, की रुचि में समानता भी। यद्यपि इनके लेखन के संदर्भ में पत्नी की प्रत्यक्ष भूमिका नहीं रही है, लेकिन इनकी पत्नी ने इन्हें ऐसे अनेक पारिवारिक दायित्वों से मुक्त कर रखा है जो गृहस्थ जीवन में सामान्यतया पति के हिस्से में आते हैं। पति-पत्नी का आदर्श प्रेम और मैत्री इन दोनों में ही मैंने देखा है एक जैसी रुचियाँ, एक जैसे विचार। इन दोनों से समाज के लोगों को सभी तरह से पारिवारिक संबंधों व जिम्मेदारियों को निभाना सीखा जा सकता है। एक दूसरे के प्रति आदर-स्नेह और सहनशीलता की भावना है। मुझे गर्व इस बात का है कि ऐसे मृदुभाषी, सरल, कर्मठ और कर्त्तव्य-निष्ठ व्यक्ति शब्दों के माध्यम से तथा सामाजिक उष्मा के चलते मेरा सान्निध्य सदैव प्राप्त करना चाहते हैं।

दांपत्य जीवन में निष्ठा, एक-दूसरे के प्रति विश्वास और समर्पण का भाव आधुनिक युग में अब कम दिखायी देते हैं, क्योंकि पश्चिमी संस्कृति लोगों पर हावी है। मानवीय मूल्यों के इस विघटन से दांपत्य जीवन में दिन-प्रतिदिन और भी अधिक दरारें पड़ती जा रही हैं, किंतु जब मैं सिद्धेश्वर जी के दांपत्य जीवन पर एक नजर डालता हूँ, तो स्थिति उल्टी दिखती है। उनके दांपत्य जीवन में कहीं भी पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव नहीं नजर आता है। पिछले तीन दशकों से मैं लगातार इनके परिवार के एक सदस्य के रूप में अपने को समझता रहा हूँ। इस अवधि में सिद्धेश्वर जी ने अपनी पत्नी के संग परस्पर एक-दूसरे को समझते हुए एक-दूसरे के वर्चस्व को बनाकर सम्मानपूर्वक दांपत्य जीवन का निर्वाह किया है और आज भी कर रहे हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण तो यह है कि कभी उनके दांपत्य जीवन में मानवीय कमजोरियाँ नहीं आयीं और ये इस बात को बखूबी जानते हैं कि दांपत्य जीवन के प्रेम को बरकरार रखने के लिए किस तरह इन दोनों ने परस्पर एक-दूसरे के बीच आपसी सम्मान भाव विकसित किया है।

मैंने देखा है, प्रारंभ से ही सिद्धेश्वर जी महीने की पहली तारीख को वेतन और भत्ते की राशि अपनी पत्नी के हाथों सुपुर्द कर निश्चिंत रहे हैं। आज भी ये यह नहीं जानते कि किस किरायेदार से कितना और कब किराया मिला और कहाँ खर्च हुआ। घर-परिवार के आय-व्यय की पूरी जिम्मेवारी इनकी पत्नी की

है। औरत यदि अच्छी हो तो घर को स्वर्ग बना देती है और बुरी हो तो घर तबाह हो जाता है। अनेक बार मुझे यह देखने का मौका मिला है कि कभी ये किसी कार्यवश घर से बाहर निकले हैं तो जेब-खर्च या फल आदि की खरीद के लिए इन्होंने अपनी पत्नी से पैसे की माँग की है, गाड़ी निकालने पर गैस के सिलेंडर के लिए इन्होंने पत्नी से गुहार लगायी है। सच तो यह है कि अपनी पत्नी के सामने पैसे की माँग प्रस्तुत करने में कभी इन्होंने शर्मिन्दगी नहीं महसूस की है, बल्कि प्रसन्नता का अनुभव किया है। ये मानते हैं कि ऐसा करके अपनी पत्नी पर कोई अहसान नहीं जताते, बल्कि शादी के वक्त अग्नि के चारों ओर लिये गये फेरे में इन्होंने जो पत्नी से वादे किये थे उन्हें निभाना इनका फर्ज बनता है और इसी फर्ज का निर्वहन ये आज भी कर रहे हैं। आप सब इस बात से अवगत हैं कि शादी के वक्त प्रत्येक पति को अपनी पत्नी के समक्ष यह शपथ लेना पड़ता है और वादा करना पड़ता है कि वह जो कमाकर लाएगा उसे अपनी पत्नी को सुपुर्द करेगा, ताकि वह घर-गृहस्थी के कार्य को सुचारु ढंग से संपन्न कर सके।

सिद्धेश्वर जी का मानना है कि आज के पुरुषप्रधान समाज में महत्त्वाकांक्षा पुरुषों की ही बपौती नहीं है। आज की महिलाओं में भी महत्त्वाकांक्षाएँ हैं और उनकी पूर्ति के सपने भी वे देखती हैं। यही कारण है कि आज महिलाएँ राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, कलात्मक और अन्य क्षेत्रों में पहुँचने का प्रयास कर रही हैं। जो नारी बहुत पढ़ लिख नहीं सकीं और शुद्ध रूप से गृहिणियों के रूप में अपना जीवन बिता रही हैं, उनकी भी महत्त्वाकांक्षाएँ हैं और उनकी पूर्ति अपने पतियों की आय से करना चाहती हैं, क्योंकि महिलाओं को जो घर-गृहस्थी और चूल्हा-चौका का दायित्व निभाना पड़ता है उसका भी काफी महत्त्व है और किसी कीमत में घर के बाहर काम करनेवालों के कार्यों से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। इसी के मद्देनजर सिद्धेश्वर जी अपनी पत्नी की राय का सम्मान करते हैं और सदैव माहौल के अनुसार लचीला रवैया अपनाते हैं। ये अपनी पत्नी या परिवार के दूसरे सदस्यों के प्रति सहज, सकारात्मक दृष्टिकोण अख्तियार करते हैं। रोजमर्रा की तनावपूर्ण जिंदगी में खुशियों के अवसरों को तलाशते हैं और नयी चुनौतियों से भी रू-ब-रू होते हैं। आप यकीन मानिए, अपनी पत्नी के सहयोग को सिद्धेश्वर जी सहर्ष स्वीकारते हैं और इसके लिए उनका शुक्रिया अदा करते हैं। ये परिवार के प्रत्येक सदस्य के साथ खुलकर बातें करते हैं और अपने चुटकुलों और हल्की-फुल्की बातों से माहौल को हमेशा जीवंत बनाये रखते हैं। मैंने इनके सम्मान और मानवीय संबंध की गरिमा को समझा है।

दरअसल सिद्धेश्वर जी के सुखी दांपत्य जीवन का रहस्य यह है कि इनकी सीमित आय में ही रहन-सहन के मुताबिक लिबास, सुख-सुविधा के

साधन की खरीद या रख-रखाव पर जो खर्च होता है उसे इनकी पत्नी बड़ी सावधानी से करती हैं। चूंकि आर्थिक रूप से मध्यम या उच्च मध्यम वर्गीय व्यक्ति की सामान्य चिंता दाल-रोटी की नहीं होती, बल्कि उसकी जमा पूँजी के ह्रास की होती है। इसलिए शहरी जीवन में अपनी आमदनी से बनी पूँजी का कुशल प्रबंधन भी जरूरी है। सिद्धेश्वर जी स्वयं रहन-सहन में सावधानी बरतते हैं और इनकी पत्नी भी रहन-सहन के मुताबिक लिबास तथा सुख-सुविधा के साधन की खरीद में बड़ी सावधानी रखती हैं।

इस प्रकार सिद्धेश्वर जी कहते हैं कि जिंदगी में हर रिश्ते की अपनी खास जगह है, लेकिन जन्म, जाति और उम्र की सीमाओं से परे एक बड़ा ही खूबसूरत रिश्ता है अर्द्धांगिनी का, जो हर रिश्ते को मजबूत और सुदृढ़ बनाता है।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि एक बार जब होम एप्लाएंस की एक कंपनी का एक प्रतिनिधि इनके घर आया और सर्वे करने के क्रम में इनसे उत्तर पाया, तो उसे निराशा हाथ लगी और इस बात पर हैरानी हुई कि सिद्धेश्वर जी की स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के पूर्व यानी सेवावधि में इनके घर में आधुनिक सुख-सुविधा के साधन नहीं थे। एक दूरदर्शन यंत्र था, वह भी श्वेत-श्याम। न तो उस समय तक इनके यहाँ फ्रीज था और न वाशिंग मशीन। ये बराबर कहा करते हैं कि दु:ख का कारण है मोह और मोह होता है लोभ से। यह लोभ तृष्णा के कारण होता है। इसमें संदेह नहीं कि समय की गति के साथ लिप्साओं, तृष्णाओं और इच्छाओं के रूप बदलते हैं। आज यदि तीन दरवाजों वाला फ्रीज आपके पास है तो समय आने पर फिर '*डबल यूनिट सिक्स डोर फ्रीज*' का मन आपका हो सकता है, किंतु लिप्सा बदल जाने पर भी जीवनमूल्यों पर निर्धारित प्राथमिकताएँ नहीं बदलतीं। इसलिए तृष्णा या लिप्सा पर नियंत्रण आवश्यक है। सिद्धेश्वर जी और इनकी पत्नी इसी तृष्णा को नियंत्रित करते हैं। उचित होते हुए भी, यदि कुछ लिप्साओं की काट-छाँट करनी पड़े तो नि:संकोच करनी चाहिए, क्योंकि अगर आज आपने खर्च की प्राथमिकता तय करने में गलती कर दी तो पछताने के सिवाय कुछ हाथ न लगेगा।

सिद्धेश्वर जी के जीवन में घटी एक ताजा घटना हम आपके सामने प्रस्तुत करते हैं। पिछले दिनों अहिंसा आंदोलन के अग्रणी आचार्यश्री महाप्रज्ञ की अहिंसा यात्रा के दौरान गुजरात के सूरत शहर में 27 से 30 सितंबर 2003 को आयोजित अणुव्रत महासमिति, अखिल भारतीय अणुव्रत न्यास और अणुव्रत विश्व भारती के 58वें संयुक्त अधिवेशन में सिद्धेश्वर जी को '*अहिंसक समाज की संरचना में लेखकों की भूमिका*' विषय पर अपने विचार प्रस्तुत करने के लिए आमंत्रित किया गया था। एक सत्र में इस विषय पर आयोजित संगोष्ठी की अध्यक्षता भी

इन्होंने की और अपने अध्यक्षीय भाषण में अहिंसक समाज संरचना की सार्थकता पर बल देते हुए लेखकों के दायित्व को बड़े जोरदार शब्दों में इन्होंने रेखांकित किया। इस संदर्भ में यह भी कहना प्रासंगिक होगा कि सूरत शहर सिंथेटिक साड़ी के लिए जाना जाता है। सिद्धेश्वर जी के कंप्यूटर इंजीनियर सुपुत्र सुधीर रंजन के सहपाठी अजय कर्ण, जो सूरत के श्री प्रभात टेक्सटाइल्स मिल में एक अधिकारी हैं, के सौजन्य से सिद्धेश्वर जी अपने मित्र डॉ० रमाशंकर श्रीवास्तव और उनके छोटे भाई प्रो० पारसनाथ श्रीवास्तव के साथ साड़ी की दुकान में गये और दोनों की साड़ियों का चयन सिद्धेश्वर जी ने स्वयं किया। किंतु अपने मित्रों के हजार कहने के बाद भी अपनी पत्नी, पुत्रवधू या बेटी के लिए साड़ियाँ नहीं खरीदीं, इसलिए कि इनके लिए साड़ी खरीदना प्राथमिकता नहीं था और न उसकी तत्काल जरूरत थी। यही है तृष्णा या लिप्सा पर इनका नियंत्रण। इनकी जगह पर कोई और होता तो बिना जरूरत के आगे दिनों के लिए दो-चार साड़ियाँ अवश्य खरीद लेता।

सिद्धेश्वर जी के दांपत्य जीवन की एक और विशेषता यह है कि ये उधार घी नहीं पीते हैं यानी कोई चीज आज तक उधार पर नहीं खरीदते। उदारीकरण व सुविधापूर्वक पैसा उपलब्ध होने के इस भोगवादी दौर में यह तय करना कठिन है कि कौन-सी चीज उधार लें और कौन-सी नहीं, क्योंकि 'ऋण' या 'उधार' परंपरावादी अर्थ में ऊपर से इतना शोषक नहीं दिखता, जितना असलियत में है। आज हर आदमी अपना घर, फर्नीचर, फ्रीज, ए० सी०, वॉशिंग मशीन या अन्य सुख-सुविधा की वस्तुएँ उधार या ऋण पर ले सकता है और आजीवन स्वयं को कर्ज में आकण्ठ डूबो सकता है, पर नतीजा! नतीजा है कि अपनी आय का आधा भाग कर्ज चुकाने में वह लगाता रहे और हमेशा तनाव में जीए। तनाव लेने का यह तरीका उसको जोखिम में डाल सकता है। यही कारण है कि सिद्धेश्वर जी सीमित साधन स्रोतों के भीतर ही खरीद को महत्त्व देते हुए इसे सही दृष्टिकोण बताते हैं।

आज के भौतिकतावादी युग और भागमभाग जिंदगी में यह सिद्धांत कुछ अटपटा-सा तो लगता है, किंतु यह अत्यंत उपयोगी भी सिद्ध हो सकता है। यदि आपको जरूरत दो बेडरूमों वाले एक छोटे से घर की है तो सिर्फ दिखावे के लिए दस कमरों वाला महल बनवाने की क्या आवश्यकता है? यह बड़ा महल आपके लिए देख-रेख की दृष्टि से मुसीबत बन सकता है, वहीं यह पैसे की बरबादी भी है। जापान में छोटे मकान के निर्माण के पीछे शायद यही कारण है और जीने के लिए लगभग यही तरीका अपनाया गया है।

इसी से संदर्भित सिद्धेश्वर जी के जीवन से जुड़ी एक और मजेदार छोटी

कहानी आप सुनें। एक बार इनके सुपुत्र सुधीर रंजन इन्हें सामान्य भविष्य निधि तथा को-ओपरेटीव फेडरेशन से ऋण लेकर पटना के ए० जी० कॉलोनी स्थित अपने चार हजार वर्ग फीट के एक भूखण्ड में एक मकान बनाने की योजना लेकर इनके समक्ष उपस्थित हुए, तो सिद्धेश्वर जी ने अपने सुपुत्र को एक और योजना के प्रस्ताव के साथ इनके समक्ष उपस्थित होने का सुझाव दिया, जो पटना के पुरन्दरपुर स्थित समस्त मकान को किराये पर देने से किराये की राशि से बनाने की योजना होती। सुपुत्र ने अपने पिता के इस सुझाव को सुनकर तुरंत अपनी पहले की योजना को वापस करते हुए इनसे क्षमा माँगी। सिद्धेश्वर जी ने अपने सुपुत्र को समझाया कि इनके जीवन का कुछ और लक्ष्य है, केवल मकान बनाना नहीं। इन्होंने कहा कि स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के पश्चात् ये व्यापक और वृहत्तर हित में काम करना चाहते हैं। इसलिए ये अपना शेष जीवन सार्वजनिक जीवन के रूप में बिताना पंसद करेंगे। पैसा कमाना इनके जीवन का कतई उद्देश्य नहीं हैं, यही है इनके जीवन का खुलापन। दरअसल जो सज्जन आमजन के लिए काम करता है वह केवल कहने के लिए नहीं, बल्कि उसे दिखना भी चाहिए। सिद्धेश्वर जी के जीवन में पारदर्शिता है। जो कुछ ये करते हैं, वहा सब साफ झलकता है। इसीलिए इनका जीवन एक खुली किताब है, जिसे कोई आसानी से पढ़ सकता है।

सिद्धेश्वर जी ने कम-से-कम में जीवन जीने की एक पद्धति अपना ली है। 'मिनिममिज्म' भी जीवन जीने का तरीका है, जहाँ कम में ही संपूर्णता का आनंद लिया जाता है। इसका अर्थ भौतिकतावादी वस्तुओं से भागना भी नहीं है, बल्कि कम-से-कम वस्तुओं से काम चलाना है। इससे मानसिक और शारीरिक विकास में मदद मिलती है। इस किस्म से जीवन जीनेवालों के व्यक्तित्व को अधिक आराम और आजादी भी मिलती है।

सादे रहन-सहन के प्रसंग में सिद्धेश्वर जी ने लौह पुरुष सरदार पटेल से संदर्भित मुझे एक कहानी सुनायी--'सरदार वल्लभभाई पटेल एक दिन अपने कमरें में बैठे हुए कुछ आगंतुक लोगों से बातें कर रहे थे। इतने में ही उनकी पुत्री मणि बेन चाय लेकर आयी, जिसकी साड़ी कई जगहों से सिली हुई थी। यह देख उन आगंतुकों में से एक बोल उठा- बहन जी, आपने यह फटी हुई साड़ी क्यों पहन रखी है? जवाब मिला - नयी साड़ी कहाँ से लाऊँ ? आगंतुक ने कहा- आप यह क्या कह रही हैं ? कुछ समझ में नहीं आता। आप कहें तो एक साड़ी क्या, यहाँ साड़ियों का ढेर लग सकता है। इसपर बहन जी सुना-अनसुना कर चली गयीं। सरदार पटेल ने कहा कि हमारे यहाँ हाथों से सूत काता जाता है और हाथ से बना हुआ कपड़ा ही काम में लाया जाता है। वह

इतना ही बन पाता है कि जिससे सारे कुटुंब का काम किफायत के साथ चल जाता है। ऐसा सुनकर आगंतुक महाशय दंग रह गये, सोचने लगे कि ओह ! रईस घराने का ऐसा रहन-सहन। घर में चीजें होते हुए भी सादा खाना, सादा पहनना और सब देश के लिए, जनता की सेवा के लिए।' इस प्रकार इस कहानी के बाद सिद्धेश्वर जी कहते हैं कि *'मनुष्यों में सादगी, संतोषमय जीवन होना चाहिए। कोरे दिखावे में फँसना तो मानव जीवन को बर्बाद ही करना है। इस संकल्प को ये बहुत महत्त्व देते हैं। आकांक्षा की पूर्ति के लिए अपने सारे मनोयोग और पुरुषार्थ को नियोजित करने का नाम ही है संकल्प। मैंने अभी तक इसी संकल्प पर चलने का प्रयास किया है।'*

व्यक्ति की महत्त्वांकाक्षाएँ ही उसे पथभ्रमित करती हैं। इसकी पूर्ति के लिए व्यक्ति कभी-कभी गलत रास्ते पर भी चल पड़ता है, बस यही उसके पतन का कारण बन जाता है। सिद्धेश्वर जी इसी वजह से कहते हैं कि व्यक्ति को अति महत्त्वाकांक्षी नहीं होना चाहिए और ये स्वयं भी इसे अपने जीवन में चरितार्थ करते हैं। इनसे बराबर यह सुनने को मिलता है कि यही पाण्डित्य, चतुरता और बुद्धिमत्ता है कि व्यक्ति अपनी आय से व्यय बहुत कम करे। इस संदर्भ में एक डच कहावत का उदाहरण ये प्रस्तुत करते हैं- *''पैसे को बड़ा मानकर अगर जिंदगी बर्बाद कर दी जाए तो बर्बाद जिंदगी को पैसे की कद्र नहीं रहती।''*

नयी सभ्यता के अंतर्गत अनेक तरह के वैज्ञानिक आविष्कारों, संचारमाध्यमों और समाज के बदलते परिदृश्य ने व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित किया है। बदलते हुए इस आधुनिक परिवेश में स्त्री-पुरुष के परस्पर प्रेम और दांपत्य जीवन के प्रति दृष्टिकोण में भी काफी परिवर्तन आने लगा है। सामान्य जीवन में बढ़ती हुई व्यस्तता तथा भौतिक प्रगति से लोगों में स्वार्थ की भावना बढ़ी है और समर्पण की भावना में कमी आयी है, जिसका प्रभाव व्यक्तिगत और दांपत्य संबंधों पर भी होने लगा है। भारत मूलरूप से भावनाप्रधान लोगों का देश रहा है, जहाँ की जीवनपद्धति में प्राचीन समय से ही पारिवारिक जीवन और दांपत्यप्रेम को महत्त्वपूर्ण स्थान दिये गये हैं।

चीन, यूरोप, अमरीका, जापान, जर्मनी और फ्रांस जैसे विकसित देशों में ही नहीं, भारत सहित एशिया के परंपरावादी विकासशील देशों में भी अब स्त्री की स्वतंत्रता और समानता के आंदोलनों का प्रचार-प्रसार होने लगा है। इस प्रसंग में अमरीका के एक नारी-आंदोलन की सुप्रीमों श्रीमती कैथेराइन का कथन आश्चर्य चकित करनेवाला सिद्ध हो सकता है। उनके मुताबिक-''कई अच्छे और संतुलित परिवारों में नारी की स्वतंत्रता तथा समानता के नारों ने दरारें पैदा कर

दी हैं। उनका कहना है कि प्रकृति ने ही कुछ क्षेत्रों में पुरुष को प्रधान तथा सबल बनाया है तथा कुछ मामलों में नारी को अधिक क्षमतावाला तथा गरिमामय रूप प्रदान किया है। ऐसी प्रकृतिप्रदत्त स्थिति के विरोध में अनपेक्षित स्वतंत्रता और समानता की माँग केवल अहम् से प्रेरित है, बुद्धिमानी से नहीं। एशिया के परंपरावादी विकासशील देशों की प्रशंसा करते हुए श्रीमती कैथेराइन ने पुनः कहा है- कि आर्थिक रूप में वे भले ही पिछड़े हों लेकिन अब भी वहाँ संयुक्त परिवार तथा अटूट दंपत्ति सुख की जो स्थिति है, उसे पाश्चात्य परिवेश में प्राप्त कर सकना कठिन है।

उन्होंने स्त्री-पुरुष के स्वाभाविक प्रेम को गरिमामय बतलाया, किंतु पुरुषों में पायी जानेवाली प्रमुख प्रवृत्ति की कटु आलोचना करते हुए वे यह सलाह देती हैं कि स्त्री यदि अपनी स्वाभाविक सूझबूझ से काम ले, तो वह क्रोधी और प्रभुत्वसंपन्न पुरुष को भी अपना दास बनाकर रख सकती है।

सिद्धेश्वर जी का स्पष्ट मानना है कि परंपरा से चली आ रही सनातन विवाह पद्धति में पति-पत्नी को आजीवन मिलाया जाता है, जो चिरंतन तथा अटूट है, मगर कभी-कभी पति-पत्नी में एकाग्रता से उत्पन्न मतभेद आपस की नोक-झोंक का उग्र रूप धारण कर लेता है। ऐसी स्थिति में भारतीय समाज में परिवारों में टूटन और तलाक की घटनाएँ अधिक होने लगती हैं। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि पति-पत्नी दोनों को अपने जीवन में बनावटीपन को छोड़कर आपस में स्वाभाविक प्रेम की प्रतिष्ठा का प्रयास किया जाए। स्वतंत्रता और परतंत्रता की भावनाओं से ऊपर दोनों उठकर परस्पर समर्पण में आस्था रखें, जो प्रेम की चरम परिणति है। पौराणिक साहित्य से लेकर आधुनिक विज्ञान ने रतिरंग और दांपत्य प्रेम को संतुलित परिवार व्यवस्था का आधार माना है। इसलिए आज के पारिवारिक और दांपत्य जीवन में सौमनस्य और सफलता के लिए *'प्रीत किये सुख होय'* का सूत्रवाक्य अधिक सार्थक है।

## वक्तृत्व कुशलता

सिद्धेश्वर जी एक सफल आयोजक और संचालक हैं। राष्ट्रीय विचार मंच द्वारा पटना तथा दिल्ली में आयोजित विविध संगोष्ठियों, परिसंवादों एवं परिचर्चाओं का ये बड़ी सफलतापूर्वक संचालन करते हैं और अपनी वाक्पटुता से उन्हें जीवंत बनाते हैं। समाज तथा राजनीति में सदा से ही अच्छा वक्ता होना एक बड़ा गुण माना जाता है। अपनी वक्तृत्वकला के बल पर अनेक व्यक्तियों ने समाज व सत्ता के शीर्ष पर पहुँचकर लोगों के दिल में अपनी जगह बनायी है। सिद्धेश्वर जी भी वक्तृत्वकला के ऐसे ही धनी व्यक्ति हैं, जिन्होंने अपने

ओजपूर्ण भाषणों और विचारों से समाज के लोगों को प्रभावित कर अपनी एक अलग पहचान बनायी है। ये जहाँ भी जाते हैं, अपनी विद्वत्ता का परिचय देकर सुधी श्रोताओं को आकर्षित करते हैं। आखिर तभी तो दिल्ली तथा पटना जैसे शहरों सहित जिला मुख्यालयों एवं कस्बों के सामाजिक, साहित्यिक एवं राजनीतिक संगठनों द्वारा इन्हें विभिन्न मंचों एवं संगोष्ठियों में सादर आमंत्रित किया जाता है, जहाँ ये अपने विचार प्रस्तुत करने के साथ-साथ निर्धारित विचारणीय विषयों पर अपने तथ्यपरक आलेख का पाठ भी करते हैं।

सच कहा जाए तो सिद्धेश्वर जी का जीवन सरलता और सहजता की एक जीती-जागती मिसाल है। आम आदमी के जीवन को इन्होंने बहुत करीब से देखा, सुना और जस-का-तस अपनी कृतियों में शब्दबद्ध कर संजोया। इन्होंने सही मायने में समाज और साहित्य को जीने का प्रयास किया है। इसके साथ ही ये एक मानवतावादी भी हैं, क्योंकि कुछ भी गलत होते देखकर ये दुखी होते हैं और सही काम के लिए ललकते हैं। अपने बौद्धिक चिंतन के बावजूद ये एक सरल व्यक्ति हैं तथा विद्वज्जनों की संगति और बड़े-से-बड़े राजनीतिज्ञों के बीच भी ये उतने ही सहज होते हैं जितने आम आदमी के साथ। कहा जाए तो इनके अस्तित्व का हर रेशा सामाजिक एवं साहित्यिक है विपरीत प्रभावों में रहने के बावजूद ये अपने समाज व साहित्य के प्रति अपने दायित्व को नहीं भूलते हैं और बड़ी ईमानदारी से उनकी सेवा में लगे रहते हैं। सिद्धेश्वर जी ने कभी विद्वान् अथवा विचारक होने का दावा नहीं किया, किंतु अनवरत ये अपने काम में व्यस्त रहने में विश्वास करते हैं। इनका सारा ध्यान सामाजिक एवं साहित्यिक कार्यों को साकार करने में लगा रहता है।

सिद्धेश्वर जी के जीवन में एक और बात काबिलेगौर है कि आज के इस दौर में जब लोग सचाई तक पहुँचने और उसे उजागर करने में कतराते हैं, सिद्धेश्वर जी सच और झूठ के अंतर को बखूबी समझते हुए सचाई तक पहुँचने का प्रयास करते हैं। इसलिए ये विषैले सार्वजनिक जीवन में प्रकाशस्तंभ हैं, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। जब कभी भी इन्हें अपने सार्वजनिक जीवन में कमजोरी दिखी, बड़ी ईमानदारी और दृढ़ता के साथ अपनी कमजोरियों पर विजय पाने का इन्होंने प्रयास किया और विजय पायी।

इनके व्यक्तित्व की एक और बड़ी विशेषता यह है कि इन्होंने प्राचीनता और नवीनता के बीच संबंधसेतु का निर्माण किया है। दूसरी बात यह है कि आप प्रेमचंद की तरह राजनीति को जीवन से अलग करके नहीं देखते हैं। यही कारण है कि कई प्रकार के राजनीतिक एवं सामाजिक आंदोलनों में शरीक होकर उनके माध्यम से अपनी राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना को इन्होंने अभिव्यक्ति दी है और

आज भी उन आंदोलनों में भाग लेने से ये नहीं चूकते हैं। इसी मानसिकता की वजह से इनकी कृतियों में व्यापक सामाजिक-राजनीतिक प्रक्रियाओं और उनकी विचारधारात्मक परिणतियों के भीतर अंतर्वर्गीय संबंधों का चित्रण मिलता है और समकालीन समाज के यथार्थ की जटिल समग्रता का अहसास होता है। इनकी रचनाओं की एक और विशेषता यह है कि उनमें किसी भी रूढ़ि, अंधविश्वास एवं पाखण्ड पर कड़ा प्रहार किया गया दिखता है। इन्होंने नारी-मुक्ति का जोरदार समर्थन किया है।

## सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना

सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना को मूर्त रूप देने का सिद्धेश्वर जी ने सदैव प्रयास किया है। इस क्रम में आपने लोगों का स्नेह, समादर और सहयोग लिया है और दिया वह विचार, जो राष्ट्र तथा समाज को सबल बनाता है और हमारी सांस्कृतिक विरासत को आगे बढ़ाता है। महावीर, बुद्ध, बापू, जे पी, पटेल, लोहिया का यही रास्ता है और सिद्धेश्वर जी भी इस पथ के अत्यंत सजग, समर्थ एवं प्रतिबद्ध पथिक हैं। दूसरों की भाँति न तो इन्होंने किसी संस्था का शोषण किया और न किसी राजनीतिक पार्टी से लाभ लिया। ये बराबर कहा करते हैं कि इन्होंने कुछ देने के लिए राजनीतिक पार्टी की सदस्यता ग्रहण की है, न कि कुछ लेने के लिए। आपसे जो भी बन पड़ रहा है, समाज व देश के हित के लिए ये निरंतर कर रहे हैं। सच कहा जाए तो ये कर्म को ही धर्म मानते हैं। इसीलिए इन्हें आडंबर और पांखण्ड से नहीं, जनहितमूलक कर्म से लगाव है। यही कारण है कि राष्ट्रीय विचार मंच तथा विचार दृष्टि के कार्यों से जब इन्हें छुट्टी मिलती है तो अधिक-से-अधिक समय ये लेखन में लगाते हैं। इसके अतिरिक्त ये सामाजिक कार्यों में व्यस्त रहते हैं। ये अक्सर सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संगोष्ठियों भाग लेते रहते हैं। वैचारिक निष्ठा की दृष्टि से सिद्धेश्वर जी सत्ता के प्रति आस्थावान् हैं, पर सब प्रकार के आडंबरों से मुक्त, जाति-पाति की संकीर्णता से दूर, ये गरीब-अमीर के अंतर को लोकतंत्र का अभिशाप मानते हैं। वैयक्तिक संकीर्ण स्वार्थों से ग्रसित समाज की भयंकर बीमारी से इंसान की मुक्ति सबसे बड़ी साधना है। जीवन में इनका लक्ष्य अपने तथा दूसरों के रास्तों में आये अवरोधों को मिटाकर मार्ग को सरल और सुखद बनाना है। इसलिए इनका जीवन संघर्षों की अमर गाथा तथा सामाजिक सरोकारों की खुली किताब है।

एक बात मैं निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि सिद्धेश्वर जी ने अपने

जीवन में किसी प्रसंग अथवा घटना को हल्के रूप में कभी ग्रहण नहीं किया। इनके समक्ष जो काम आया, उसे इन्होंने पूरे दायित्व और गंभीरतापूर्वक निभाया। इससे इनका कद ऊँचा हुआ। इनको प्रसिद्धि मिली और ये प्रेरणा के स्रोत बने। फलत: युवा और प्रौढ़ समान रूप से इनको श्रद्धा और आदर की दृष्टि से देखने लगे। किंतु अन्य सामाजिक कार्यकर्ताओं, राजनीतिक नेताओं और मठाधीशों से ये इस दृष्टि से भिन्न हैं कि इन्होंने न तो किसी का मानसिक शोषण किया और न किसी को आर्थिक रूप से निचोड़ने की कोशिश की। राजनीतिक नेताओं तथा अपने से उच्चाधिकारियों की चाटुकारिता से तो ये सदैव कोसों दूर रहे, क्योंकि हाँ में हाँ मिलाना तो इन्होंने कभी जाना ही नहीं। सच को सच तथा झूठ को झूठ कहना इन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य बनाया। आज अधिकतर युवा नेता उन सभी मूल्यों और संस्कारों को तिलांजलि देते जा रहे हैं, जिनके साथ वे राजनीति में उतरे थे। यही कारण है कि सत्ता के चरित्र को बदलने के सारे प्रयत्न मुश्किल साबित हो रहे हैं। सिद्धेश्वर जी अपने देश को कर्त्तव्य और कर्मठता का संदेशवाहक मानते हैं, फिर भी यहाँ के समाज में जिस प्रकार की जड़ता, शिथिलता और अन्यमनस्कता आ गयी हैं उनसे चिंतित होना स्वाभाविक है। पता नहीं, हम अपनी सहिष्णुता, स्वच्छता और शिष्टाचार को क्यों छोड़ते जा रहे हैं और जिन देशों ने हमसे इन संदेशों को ग्रहण किया वे अपने यहाँ के समाज में उन्हें ज्यादा गहराई से उतारने में सफल रहे हैं।

सिद्धेश्वर जी पिछले तीन दशकों से रचनात्मक कर्म में सक्रिय रहे हैं और आज भी उसी प्रतिबद्धता, ईमानदारी और सर्जनात्मक ऊर्जा से लबालब भरे हैं। अपनी कृतियों में सिद्धेश्वर जी ने समकालीन जीवन की विसंगतियों, विद्रूपताओं और आतंकों को पकड़ने का प्रयास किया है। इन्होंने निरंतर बदलते जीवन और जगह को तथा उसके यथार्थ को विभिन्न कोणों से देखने और जानने की कोशिश की है। जहाँ तक भाषा का प्रश्न है सिद्धेश्वर जी कविता की भाषा और सत्ता की भाषा के बीच अंतर करते है। हिंदी के बारे में इनका मानना है कि हिंदी सत्ता के शिकारों की भाषा रही है। हिंदी के लगातार रचनात्मक और निर्णयात्मक होते जाने की चिंता इन्हें सताती है। ये सिद्धांतशून्यता और नैतिकस्खलन को अपने समाज का सबसे बड़ा सच मानते हैं।

आज समाज में आदर और सम्मान इन्हें दिया जाता है उसका कारण है कि इन्होंने सामाजिक समस्याओं एवं विषयों पर अपनी दो-टूक राय से लोगों को प्रभावित किया है। एक ओर जहाँ ये सांप्रदायिकता, आतंकवाद एवं वैश्विकी के खिलाफ मुहिम चलाते हैं, वहीं दूसरी ओर भ्रष्टाचार के मुद्दे पर भी अपनी पहल से ये भीड़ से अलग दिखते हैं। ये बेलौस व्यक्तित्व को अपने लेखन में भी

बरकरार रखते हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं में हर मुद्दे, प्रसंग और समाज एवं देश के ज्वलंत विषय पर अपने विचार रखे हैं। अधिकांश अवसरों पर सर्जनशील व्यक्ति की तरह ये धारा के विपरीत रहे हैं।

आधुनिक युग के भागमभाग और सफलता के नये मानदण्डों को छूने की लालसा की वजह से मनुष्य का जीवन जटिल हो गया है। ऐसे में मनुष्य के व्यक्तित्व को समझना भी लगातार मुश्किल होता गया है, क्योंकि दिखावा और सस्ती लोकप्रियता की प्रवृत्ति बढ़ी है। चाटुकारिता पराकाष्ठा पर है। ऐसी विषम परिस्थिति में भी सिद्धेश्वर जी इन सबों से बचते रहे हैं, जो इनके व्यवहार, क्रियाकलाप और आचरण से परिलक्षित होता है। बिना कहे-सुने या इनके बारे में अधिक जाने भी इनके व्यक्तित्व के विविध पहलुओं को देखा और परखा जा सकता है।

जहाँ तक सिद्धेश्वर जी की राजनीतिक एवं सामाजिक सोच का सवाल है, इनके दिमाग में एक समतामूलक समाज की कल्पना अवश्य है तथा देश की मौजूदा लोकतांत्रिक व्यवस्था की बढ़ती खामियों से ये चिंतित दिखते हैं। इन्हें ऐसा लगता है कि जिन लोगों ने आजादी की कुर्बानियों और कठिनाइयों को नजदीक से देखा है, उनमें से बचे-खुचे लोग अब थक चुके हैं और बचा-खुचा जीवन वे सत्तासुख में बिता लेना बेहतर समझते हैं।

## समय का सही उपयोग और प्रबंधन

सिद्धेश्वर जी ने अपने जीवन में जिस एक और महत्त्वपूर्ण पहलू पर बार-बार बल दिया है, वह है-अपने समय के साथ-साथ दूसरों का समय भी बर्बाद न करना। इनका मानना है कि समय का प्रबंधन उपयोग मात्र व्यक्तिगत कार्यों के लिए नहीं, अपितु सामाजिक कार्यों के लिए भी होना चाहिए। इसका सही प्रबंधन भी जरूरी है। अक्सर ऐसा देखा जाता है कि किसी सामाजिक, राजनीतिक अथवा साहित्यिक कार्यक्रम में लोग लगभग एक घंटा विलंब से पहुँचते हैं और यह कहकर अपने देश की खिल्ली उड़ाते हैं कि यह *'इंडियन टाइम'* है। सिद्धेश्वर जी को इस बात पर इसलिए एतराज है कि विलंब में वे स्वयं होते हैं, किंतु नाम अपने देश का घसीटते हैं। इनका कहना है कि यदि विलंब से कार्यक्रम में शामिल होनेवाले व्यक्ति *'अमेरिकन टाइम'* कहते तो इन्हें अधिक एतराज नहीं होता, क्योंकि उसमें बदनामी अमेरिकन के मत्थे मढ़ी जा रही है। पर यहाँ तो *'इंडियन टाइम'* कहकर वे अपने देश को ही लेट-लतीफों में घसीट रहे हैं। और तो और, कार्यक्रम देर से प्रारंभ करने में आयोजक भी वही 'इंडियन टाइम' कहकर अपना पल्ला झाड़ लेते हैं। सिद्धेश्वर जी इसे इस बात

का प्रतीक मानते हैं कि इस देश के लोगों में बड़ी तेजी से राष्ट्रीयता की भावना का लोप हो रहा है। आखिर तभी तो लेट-लतीफ लोग विलंब होने पर अपने ही देश का नाम ले लेते हैं।

सिद्धेश्वर जी स्वयं आयोजक-प्रायोजक हैं। इन्हें अपने सामाजिक दायित्व का पूरा बोध है ये अपने किसी भी कार्यक्रम को ठीक समय पर प्रारंभ करते हैं और उसका समापन भी समय पर करने का प्रयास करते हैं, क्योंकि समय के मूल्य को ये बड़ी गंभीरता से लेते हैं।। इस बात से इनके सहयोगी वक्ता और श्रोता भी चौकस रहते हैं।

एक कहावत है- *समय किसी का नहीं होता* । इसी प्रकार अँग्रेजी में भी एक कहावत है- *'टाइम एण्ड टाइड वेट फॉर नन'* (Time and tide wait for none)। सच कहा जाए तो समय उसी का साथ देता है, जिसके पास उसे साथ ले चलने की समझ और हिम्मत होती है, किंतु चिंता की बात यह है कि समय को साथ लेकर चलने की समझ और हिम्मत बहुत कम लोगों में होती हैं। इन्हीं को लोगों तक पहुँचाने के प्रयास में सिद्धेश्वर जी मंच तथा *'विचार दृष्टि'* के कार्यक्रमों को निर्धारित समय पर करते हैं। यहाँ तक कि अपने छपे मिनट-टू-मिनट कार्यक्रम को वक्ताओं के समक्ष प्रस्तुत करने के साथ श्रोताओं को भी उसकी प्रति दे देते हैं, ताकि वक्ताओं को पहले से ही यह जानकारी रहे कि उन्हें कितने मिनट बोलना है।

इस संदर्भ में यहाँ एक रोचक घटना का उल्लेख करना सर्वथा उचित जान पड़ता है। घटना यों है कि भारत सरकार के पूर्व मंत्री तथा शिक्षाविद् साहित्यकार प्रो० सिद्धेश्वर प्रसाद त्रिपुरा के राज्यपाल के पदग्रहण के पश्चात् जब पहली बार अपनी जन्मभूमि बिहार की राजधानी पटना पधारे तो सिद्धेश्वर जी ने उनके सम्मान में राष्ट्रीय विचार मंच की ओर से स्थानीय वीरचंद पटेल पथ स्थित रवीन्द्र भवन में एक भव्य अभिनंदन समारोह का आयोजन किया, जिसमें बिहार के तत्त्कालीन राज्यपाल प्रो० (डॉ०) ए० आर० किदवई तथा बिहार लोक सेवा आयोग के पूर्व अध्यक्ष एवं सुप्रसिद्ध साहित्यकार डॉ० कुमार विमल के अतिरिक्त बिहार सरकार के कई मंत्री, विधायक सहित नगर के गण्यमान्य साहित्यकार, पत्रकार, चिंतक एवं विचारक उपस्थित थे। हुआ यह कि अच्छे-खासे सुधी श्रोताओं को देखते हुए सभागार में बैठे एक मंत्री एवं विधायक के साथ कुछ अन्य सामाजिक सरोकारों से जुड़े लोगों ने लोभ का संवरण न करते हुए इस अवसर पर अपनी बात प्रस्तुत करने की इच्छा प्रकट की और इस आशय का एक चिट आयोजक सिद्धेश्वर जी के पास भिजवाया, जो महामहिम राज्यपाल से थोड़ी ही दूर पर मंच पर बैठे थे। सिद्धेश्वर जी ने चिट पहुँचानेवाले से बड़े

सहज और शालीन भाव से पूछा- ''क्या उक्त मंत्री, विधायक या अन्य इच्छुक वक्ताओं का नाम कार्यक्रम में है?'' दूत से नकारात्मक उत्तर पाते ही सिद्धेश्वर जी ने उस दूत के माध्यम से अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए उन्हें समय देने से इनकार किया और कहा कि राज्यपाल को अग्रिम में भेजे गये 'मिनट-टू-मिनट' कार्यक्रम की तो फिर गरिमा ही नहीं रहेगी। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि राज्यपाल डॉ० ए० आर० किदवई ने दूसरे ही दिन सिद्धेश्वर जी के निवास पर एक दूत भेजकर इन्हें एक विशेष भोज पर राजभवन में आमंत्रित किया और अभिनंदन समारोह की उस घटना की चर्चा करते हुए इनके साहस और समय के प्रबंधन के लिए हार्दिक बधाई दी। यही नहीं, राजभवन में हिंदी और उर्दू का एक सम्मिलित कार्यक्रम करने के लिए राज्यपाल ने सिद्धेश्वर जी को आमंत्रित किया।

सचमुच जीवन को सफल बनाने के लिए समय का सदुपयोग और प्रबंधन एक ऐसा गुर है, जो हर व्यक्ति को अपने जीवन में अपनाना चाहिए, क्योंकि जीवन को केवल भौतिक दृष्टि से समृद्ध नहीं, बल्कि समग्र रूप से सुखी व संतुष्ट बनाने के लिए समय के बेहतर इस्तेमाल की जरूरत है और इसके लिए श्रेष्ठ उपाय है-समय का प्रबंधन।

किसी संगोष्ठी, परिसंवाद, परिचर्चा, कविगोष्ठी, सम्मेलन अथवा अधिवेशन का आयोजन तथा उसका संचालन करना सिद्धेश्वर जी की फितरत है। आयोजन और संचालन बड़े सलीके से और समय पर करने का हर कोई इनका कायल है और इनका लोहा मानता है। विलंब से आयोजन करना या उसमें किसी प्रकार का ढीलापन इन्हें पंसद नहीं। यहाँ तक कि ऊँचे ओहदेवाले नेताओं, मंत्रियों, सुप्रसिद्ध एवं जाने-माने साहित्यकारों, विचारकों एवं पत्रकारों पर भी समय की पाबंदी लगाने में वे नहीं चुकते। निर्धारित समय को कार्यक्रम में अंकित करना ये कभी नहीं भूलते। इनका मानना है कि समय की पाबंदी में किसी प्रकार के ढीलापन से आयोजन में बदसूरती आ जाती है और यदि वक्ताओं पर समय की पाबंदी न लगायी जाए तो एक वक्ता भी यदि चाहे तो पूरे आयोजन को फ्लॉप कर दे सकता है। इसलिए बदसूरती इन्हें सहन नहीं।

## संपादन और संपादकीय लेखन

संपादक के नाते सिद्धेश्वर जी ने अपनी एक अलग हैसियत बनायी है।

इनके द्वारा संपादित *'विचार दृष्टि'* पत्रिका में न केवल मैं लिखता हूँ, बल्कि समय-समय पर सामग्रीचयन तथा मुद्रणसज्जा पर ये मुझसे सलाह भी लेते हैं, जो मेरे लिए सौभाग्य की बात है।

हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में यदि मैं इनकी विशेषताओं को गिनाऊँ तो कहूँगा कि पत्रकारिता को ये साहित्य से जोड़ने का काम कर रहे हैं। ये अपने पत्र में साहित्य, समाज, राजनीति तथा संस्कृति से जुड़े न केवल गंभीर लेख प्रकाशित करते हैं, अपितु अपने संपादकीय आलेखों में भी उन्हीं विषयों पर अपनी धारदार कलम चलाते हैं। यही कारण है कि इनके संपादकीय आलेखों को पाठकों तथा लेखकों ने सदैव विचारोत्तेजक व प्रभावोत्पादक कहा है। पत्रिका के प्रत्येक अंक में ये किसी-न-किसी लेखक, विशेषकर उदीयमान लेखक की पुस्तकों की समीक्षा प्रकाशित कर उनका मनोबल बढ़ाते हैं। पत्रिका में महापुरुषों की जयंती के अवसर पर विविध भाषाओं के कवियों की रचनाएँ प्रकाशित करते हैं। इसके साथ ही राष्ट्रीय चेतना पर आधारित रचनाओं को ये प्राथमिकता के साथ छापते हैं, क्योंकि इनका मत है कि राष्ट्रीयता की भावना को जागरित करना इनका राष्ट्रीय कर्त्तव्य है। इनका हमेशा यह प्रयास रहता है कि भाषा का मानकीकरण किया जाए, वर्तनी, नाम संज्ञाओं की एकरूपता और मुहावरों में देशीपन लाने का प्रयत्न किया जाए। प्राय: प्रत्येक रचना के बीच में चित्रों के साथ-साथ विनोदपूर्ण शीर्षक तथा महत्त्वपूर्ण पंक्तियों को बोल्ड एवं बड़े अक्षरों में अलग से ब्लॉक में देकर ये रचना को आकर्षक और पठनीय बनाते हैं। ये हिंदी की बोलियों में की गयी कविताओं का प्रकाशन कर स्थानीय बोलियों को बढ़ावा देते हैं। इसके अतिरिक्त नये-नये अछूते विषयों पर विवादास्पद लेखों का प्रकाशन करने में ये संकोच नहीं करते, क्योंकि ये यह मानकर चलते हैं कि संपादक को न केवल निर्भीक और निष्पक्ष होना चाहिए, बल्कि साहित्य, समाज, संस्कृति तथा राजनीति के क्षेत्रों में समय-समय पर उपजे भ्रम को दूर कर पाठकों व लेखकों को असलियत से वाकिफ कराना भी ये संपादक का दायित्व मानते हैं।

ये समाज व देश के ज्वलंत मुद्दों पर जनमत संग्रह की दृष्टि से सहसंपादकों, प्रतिनिधियों, ब्यूरो-प्रमुखों को प्रश्नावली प्रदान कर उनके उत्तरों को प्रकाशित करते हैं। पिछले दिनों *'समान नागरिक संहिता'* तथा *'धर्म की इतनी चर्चा, संस्कृति का इतना गुणगान, फिर भी देश क्यों इतना लहूलुहान?'* पर मंच के सांस्कृतिक प्रतिनिधि डॉ० अरुण कुमार गौतम द्वारा किये गये जनमत संग्रह और सेमिनार में उभरे विचारों का प्रकाशन इसका ताजा उदाहरण है।

साक्षात्कार व भेंटवार्ता अथवा विवादास्पद आलेख पर संपादकीय टिप्पणियों

को पढ़कर इनकी अध्ययनशीलता, व्यापक दृष्टि, विभिन्न विषयों में गहरी पैठ और संपन्न अभिरुचि का सहज अंदाजा लगाया जा सकता है। इनका सारा लेख आत्मनिष्ठ अवश्य होता है, किंतु अपने बारे में लिखना ये आत्मश्लाघा या आत्मदया भाव समझते हैं। इनके बहुत कम ऐसे लेख हैं, जो वस्तुनिष्ठ कहे जाएँगे।

बापू, सरदार पटेल, जे० पी० के प्रति इनका प्रेम और आदर इनके लेखों में स्पष्ट झलकता है। राजनीतिक विचारधारा के बारे में ये स्वीकार करते हैं कि समाजवादी जनतंत्र में इनकी आस्था है। ये सहसा किसी की सराहना नहीं करते। व्यावहारिकता की प्रतिभा-पहचान इन्हें सफलता तक पहुँचाने में मददगार सिद्ध हुई है और इसने यश दिलाने का काम किया है।

हिंदी पत्रकारिता का आगामी काल में क्या स्वरूप होगा, इस प्रश्न का उत्तर देते हुए सिद्धेश्वर जी कहते हैं कि यह हिंदीभाषी राज्यों, पाठकों की सामाजिक-राजनीतिक स्थिति पर निर्भर करता है। जैसे-जैसे साक्षरता बढ़ेगी और आवागमन के साधन बढ़ेंगे, गाँवों को सड़कों से जोड़ा जाएगा, समाचार-पत्र वहाँ तक पहुँच सकेंगे। दरअसल चिंता का विषय तो यह है कि हमारे राजनेताओं का व्यवहार भी दिन-प्रतिदिन इतना 'उबाऊ', अर्थशून्य, सिद्धांतशून्य तथा मर्यादाशून्य होता जा रहा है कि आमजन का समाचारों पर से विश्वास उठता जा रहा है। बल्कि सच तो यह है कि नगर-कस्बे के प्रबुद्ध एवं सुधी जन भी अब 'समाचार' से अधिक 'विचार', 'न्यूज' से अधिक 'व्यूज' में रुचि लेने लगे हैं। यही कारण है कि साप्ताहिक, मासिक, त्रैमासिक पत्रिकाओं की खपत इधर कई वर्षों से बढ़ी है। इसलिए सिद्धेश्वर जी मानते हैं कि आगामी काल के हिंदी पत्रकार को सबसे पहले अपने सामान्य पाठकों के प्रति प्रतिबद्ध होना पड़ेगा, क्योंकि उनकी अभिरुचि चौंकानेवाले अथवा राजनेताओं व सत्ताधीशों से अधिक मानवीय संवेदनावाले समाचारों में होगी। वे ही पत्रकार टिकाऊ होंगे, जो दिन-ब-दिन के राजनीतिक उठापटक से परे मानवीय संबंधों की बात करेंगे, उन्हीं के लिए कलम उठाएँगे, क्योंकि आगामी काल की चुनौतियाँ केवल आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक नहीं होंगी, बल्कि वे नैतिक व चारित्रिक होंगी। इनका ख्याल है कि भारत की सर्वांगीण प्रगति के साथ-साथ हिंदी पत्रकारिता आगामी काल में अनंत संभावनाओं से भरी है।

हम इस बात से पूर्णत: सहमत हैं कि पत्रकारिता की स्थिति इस दृष्टि से आँकी जानी चाहिए कि किसी भाषा में पत्रकारिता ने कितने शब्दों का सर्जन किया है, क्योंकि भाषा के भीतर से ही क्रांति के बीज प्रस्फुटित होते हैं। रचनाकार नये अनुभव के लिए नये शब्द ढूँढ़ता है, किंतु पत्रकार तो लगातार

घटनेवाली घटनाओं को देखते हुए नयी-नयी शब्दावली गढ़ता है। भारतीय पत्रकारिता के विश्लेषण-विवेचन के द्वारा ही नवजागरण को सही मायने में समझा-परखा जा सकता है, क्योंकि आज नवसंस्कृतिवाद तथा पश्चिमवाद दोनों ही समाज के समक्ष नये खतरे के रूप में आ रहे हैं। राजनीतिक परिस्थिति में परिवर्तन से आज की पत्र-पत्रिकाओं, खासकर लघु पत्रिकाओं की भूमिका बदल गयी है। आज न तो उनमें व्यवस्था बदलने की बात नजर आती है और न समाज बदलने का सपना। अब कहाँ दिखता है उनमें कोई वैचारिक द्वंद्व? आज अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं ने जिस प्रकार साहित्य, संस्कृति एवं समाज को ओझल करके उपभोक्तावादी संस्कृति में अपने को बदल लिया है, वह त्रासद है।

स्वतंत्र पत्रकारिता के समकालीन प्रतिमान, निर्भीक एवं निष्पक्ष चिंतक और प्रखर बौद्धिकता के प्रतिरूप सिद्धेश्वर जी के लिए पत्रकारिता पेशा नहीं, एक मिशन है। गाँधी दर्शन के हिमायती सिद्धेश्वर जी सामाजिक परिवर्तन के लिए अहर्निश चिंतित और सक्रिय हैं। समानता और सामाजिक न्याय पर आधारित समाज के निर्माण की दिशा में ये सतत प्रयत्नशील हैं। हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में श्री सिद्धेश्वर जी उन विरले पत्रकारों में हैं, जो भारतीय जीवन को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक इत्यादि सभी प्रकार की विकृतियों से मुक्त कर सुंदर और सुखी बनाने के लिए दृढ़संकल्पी हैं। इन्होंने अपने तथ्यपरक और दृष्टिसंपन्न आलेखों से पत्रकारिता जगत् में नये जागरण का शंखनाद किया है। समाज के अंतिम आदमी की पीड़ा का स्वर और उसके संघर्षों का ताप इनके लेखन में व्यक्त हुए हैं। आज के जीवन के घटित यथार्थ को समझने की पैनी दृष्टि और अभिव्यक्ति का संतुलन इनके पत्रकारीय व्यक्तित्व की दुर्लभ देन है। प्रगतिशील तथा बुद्धिजीवी पत्रकार के रूप में इन्होंने अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है। इनकी पत्रकारिता में राष्ट्रीय भावना स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है।

सिद्धेश्वर जी का संपादकीय-लेखन समकालीन हिंदी पत्रकारिता के परिदृश्य में इसलिए काफी वजनदार सिद्ध हुआ है कि वह देश-काल के सार तत्त्व की वजह से प्रायः अलग से पहचाना जा रहा है। विभागीय पत्रिका *'प्रहरी'* और *'संघमित्रा'* से लेकर राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संवाहिका *'विचार दृष्टि'* तक में लिखे गए सिद्धेश्वर के संपादकीय लेख सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक देशज ध्वनियाँ सुनी और महसूस की जा सकती हैं। निश्चित रूप से इनकी लेखनी लोक जीवन तक पहुँचने में कामयाब हो जाती है। कहना नहीं होगा कि इनकी ये संपादकीय टिप्पणियाँ समकालीन हिंदी पत्रकारिता में लुप्त प्राय हो चले तेजस्वी संपादकीय लेखन

की प्रभावशाली प्रस्तुति हैं, क्योंकि इसमें संपादक के रूप में इनकी आसक्ति पाठकों के प्रति दिखाई देती है। व्यक्तिगत लाग-लपेट और कहासुनी को अपनी पत्रिकाओं में सिद्धेश्वर कभी तरजीह नहीं देते हैं। बड़े व्यक्तित्व ही उनके आँगन में खिले-खिले और व्यक्तिगत मामले प्राय: रद्दी की टोकरी के हवाले होते रहे। यही वजह है कि अपने संपादन-कर्म और संपादकीय-लेखन से सिद्धेश्वर ने हिंदी के आम पाठक के सामने अपनी पत्रिकाओं का ऐसा मोहक रूप जाल फैला दिया है कि पाठक उसमें फँसा ही फँसा दिखता है। हिंदी भाषा के ग्यारह-प्रदेशों और उसके लोगों की गहरी प्रतीति से लेकर अन्य भारतीय भाषा-भाषी क्षेत्रों की प्रतीति भी उनके संपादकीय लेखन में झलकती है। इसी से पता चलता है कि उनका कद और दिल कितना बड़ा है और उनके कद और दिल से किसी को कोई नुकसान नहीं पहुँच रहा है। बल्कि सच तो यह है कि आज के परिदृश्य में अपने गंभीर संपादकीय लेखन से सिद्धेश्वर जी खेमेबाज और गुटबाज लोगों को आईना दिखाते नजर आते हैं।

अपने संपादकीय एवं अन्य कालमों के जरिए विभिन्न मुद्दों पर अपने विचार व्यक्त करने के क्रम में सिद्धेश्वर ने अपने विचारों का एक बड़ा हिस्सा धर्मांध लोगों और धर्म के नाम पर राजनीति करनेवालों को रेखांकित किया है। वे हिंदू-मुस्लिम कट्टरपंथियों में कोई अंतर नहीं देखते। दोनों का चेहरा एक है और दोनों ही धर्मों की धर्मांधता और सांप्रदायिकता को खतरनाक मानते हैं। उनके लेखों और टिप्पणियों पर एक नजर डालने से उनके साहस का भी परिचय मिलता है, क्योंकि अटल जी, जार्ज फर्नांडिस, नीतीश कुमार, आडवाणी, लालू प्रसाद, जयललिता तथा नरेन्द्र मोदी जैसे नेताओं के खिलाफ भी तीखी टिप्पणियाँ करने से वे बाज नहीं आते हैं। उनके विचारों में सबसे अच्छी बात तो यह है कि वे किसी भी भगवान से बड़ा अपने देश को मानते हैं।

एक संपादक के रूप में सिद्धेश्वर जी *'विचार दृष्टि'* के माध्यम से अपनी चिंताओं को ठोस तरीके के साथ संप्रेषित करते रहे हैं और साहित्य एवं पत्रकारिता जगत के धुंधलके को छाँटने का हर संभव प्रयत्न भी। अपने संपादकीय में उन्होंने भारतीय परंपरा को विस्तार से परखते हुए कई आश्चर्य जनक निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं जिनसे आज भी बहुत से लोग अपरिचित हैं और अगर परिचित हैं भी तो प्रचलन का शिकार होकर भ्रम को वास्तविक मान बैठे हैं।

एक व्यक्ति अनेक स्तरों पर सक्रिय रहकर इतने सारे काम एक साथ कर सकता है, सिद्धेश्वर जी इसके प्रमाण है। इन्होंने परंपरा को आधुनिक संदर्भो में व्याख्यातित किया है और उसे अपने अनुशासनों में प्रयुक्त किया है पश्चिमी ज्ञान

की चकाचौंध इन्हें अन्य बौद्धिकों की तरह कभी गुमराह नहीं कर सकी। सच तो यह है कि सिद्धेश्वर जी पश्चिमी के अपने विस्तृत ज्ञान को भारतीय परिप्रेक्ष्य में ग्रहण करने और उसका साहित्य एवं संस्कृति के क्षेत्र में आलोचनात्मक उपयोग करते हैं यानी इन्होंने परंपरा का सृजनात्मक उपयोग कर कथित आधुनिकता की आँधी में उसकी अच्छाइयों पर बल देने में ये कोताही नहीं करते हैं। यह काम ये बहुत विश्वास के साथ करते हुए उससे होनेवाले खतरों से कभी भयभीत भी नहीं होते हैं।

सिद्धेश्वर जी के लेखन में समग्र समाज की श्रेयस्करी, निष्पक्षता और विवेक की उपस्थिति रहती हैं। ये और लेखकों की तरह युक्ति-जुगाड़ एवं तीन तिकड़म से समाज में सम्मान-पुरस्कार पाने की होड़ में कतई नहीं दिखते हैं। आज तो अनेक कवि-रचनाकार-लेखक भोग-विलास व्यभिचार एवं मुक्त यौनाचार परक अपने लेखन से समाज को मानसिक अधोमुखता की ओर अग्रसर करने का अपराध कर रहे हैं। ऐसे लेखकों के लेखन में अय्याशी, बदमाशी के अतिरिक्त समाज व देश की व्यथा-वेदना और सकंट-समस्या के प्रति कोई यथार्थ बोध-चेतना एवं संवेदना नहीं होती। सच्चा साहित्य तो विवेक से निकलता है, विवेक में पलता है और विवेक में ही चलता-फलता है। साहित्य का श्रुतिफल विवेक ही है। सिद्धेश्वर जी के साहित्य में यही विवेक देखने को मिलता है। इसी प्रकार इनकी *'विचार दृष्टि'* पत्रिका के अंकों में इनके सफल संपादन दर्शन तो होते ही हैं सशक्त, सतर्क और सचेत लेखक के रूप में भी ये देखने को मिलते हैं। इनके *'दृष्टि स्तंभ'* में भाव-पक्ष और कला-पक्ष दोनों ही दृष्टियों से सफल और सशक्त तो हैं ही पाठकवृंद को भी चिंतन करने को विवश करते हैं। ये शिद्दता से लिखते हैं और सिद्धता से भी। सिद्धेश्वर जी शब्दों के शिल्पी नहीं, जादूगर हैं। कुल मिलाकर देखा जाए तो इनका लेखन वरेण्य है और ग्रहेण्य भी। सिद्धेश्वर जी स्वस्थ रहकर हिंदी साहित्य, समाज व देश की चिर सेवा करते रहें, यही मेरी मंगल-कामना है।

सिद्धेश्वर सदैव सक्रिय रहकर अपनी साधना, अध्ययन और अध्यवसाय की वजह से युवा पीढ़ी के लिये भी समकालीन बने हुए हैं। अपने अवदान पर इन्हें कभी इतराते नहीं देखा गया है, जैसे बहुत से लोग अपने काम से अधिक अपने नाम से दबे रहते हैं। ये समाज के उन थोड़े से प्रबुद्धजनों में हैं, जो देश के वर्तमान प्रजांतात्रिक स्वरूप, राजनीति की दशा और सांस्कृतिक प्रतिष्ठानों की भूमिका को देखते हुए युवाओं की ओर बड़ी उम्मीद लगाए रहते हैं। उनकी आँखों में उम्मीद की चमक हमेशा बनी रहती है ताकि शायद कल का सूरज सुंदर भारत के साथ उगे।

सिद्धेश्वर जी की बड़ी चिंता जो प्राय: इनके संपादकीय-लेखन या अन्य कालमों में देखने को मिलती है उनके कारण है, क्योंकि आज व्यक्ति व समाज धर्म, जाति और उसकी रूढ़ियों एवं अँधविश्वास की दुहाई देता हुआ, पहले से कहीं ज्यादा संवेदनशून्य और उसकी समस्याएँ ज्यादा घनीभूत हो गयी हैं। सत्ताश्रित, संस्थाश्रित तथा धनाश्रित शक्तियों ने भारतीय लोकतंत्र को सचमुच भीतर से खोखला कर दिया है। अब केवल पत्र-पत्रिकाओं के स्तंभों में स्थान घेरकर और संपादकीय अग्रलेखों के भरोसे बैठे रहने अथवा सभा-संगोठियों में व्यक्त विचारों को सुनकर चैन से रहने की आदत छोड़नी होगी। समाज के सजग पहरुओं, बुद्धिजीवियों, साहित्यकारों और सामाजिक-सांस्कृतिक कार्यकर्ताओं को सामने आना होगा और हर घर में दीप जलाना होगा।

'विचार दृष्टि' के संपादक सिद्धेश्वर के संपादकीयों को पढ़ने पर ऐसा लगता है कि सिद्धेश्वर जी लकीर के फकीर नहीं हैं बल्कि वे हमेशा एक नई लकीर स्वयं बनाते हैं। वे लीक पीटते नहीं। इनके संपादकीय में एक पत्रकार व रचनाकार की सच्ची जिद के दर्शन बराबर होते हैं। सिद्धेश्वर जी ने एक सही सूत्र पकड़ा है कि साहित्य, संस्कृति, समाज, राजनीति से रहित आदमी पशुवत होता है। वह अंदर से झूठे आदमी के खिलाफ सिद्धेश्वर जी हर जगह खड़े नजर आते हैं। इनकी आवाज धीमी है पर वह एक निरंतरता लिए हुए है। इन्होंने साहित्यिक राजनीति, राजनीतिक परिदृश्य, नारी एवं दलित सवालों पर गंभीरता से विचार किया है। इनकी भाषा बड़ी संयमित पर बड़ी चुटकीली एवं चुस्त होती है। सच तो यह है कि सिद्धेश्वर जी की संपादन-कला उस खजूर के पेड़ के समान है जो बिना खरोंचे रस नहीं देता। हर रचना को ये तोड़-जोड़कर सजाते-संवारते हैं, तभी तो वह पठनीय हो पाती है और उसकी स्तरीयता भी बढ़ जाती है।

भारतीय जन-जीवन में जागृति, जोश और उत्साह के निर्माण करने का कार्य और निरंतर राष्ट्रीय भावना का आधिपत्य सजग गति से स्थापित करने में सिद्धेश्वर जी के संपादकीय का योगदान आज भी प्रासंगिक है, इसे मानना होगा। वैसे भी स्वयं सजग एवं जागरूक नागरिक की भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं और अहिंसक आंदोलनों में 'विचार दृष्टि' के जरिए सक्रिय रूप से अपने नैतिक एवं राष्ट्रीय दायित्व का निर्वाह कर रहे हैं। साथ ही ये परिवेशगत अवरोधों को लाँघकर जुझारूपन से अपना कर्त्तव्य निभाने में ये कोर-कसर नहीं छोड़ते हैं। अपनी सेवावधि में 'प्रहरी' और संघमित्रा' तथा स्वैच्छिक सेवा-निवृत्ति के बाद 'विचार दृष्टि' के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना का जो शंखनाद सिद्धेश्वर जी आज कर रहे हैं उसके मद्देनजर इनको हिंदी-पत्रकारिता की संघर्ष-यात्रा का एक समर्थ सेनानी मानना होगा। हिंदी-पत्रकारिता का जो परिवेशगत स्वरूप आज परिलक्षित

होता है, उसमें इनका योगदान आधारभूत रूप से महत्त्व रखता है।

सिद्धेश्वर जी मूलत: सामाजिक कार्यकर्ता और साहित्यकार हैं। पत्रकारिता उनकी अभिव्यक्ति का माध्यम है। इन्होंने पत्रिका के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना के साथ-साथ सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना जगाने का प्रसास किया है। ये समाज एवं देशहित चिंतन की दृष्टि से अपनी विचार दृष्टि पत्रिका में साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और धार्मिक विषयों पर लेख तथा समालोचनाएँ, कविताएँ, कहानियाँ, हास्य-व्यंग्य आदि प्रकाशित कर रहे हैं।

कहा जाता है कि नियतकालिक पत्रिका को विचार-वादक होना चाहिए, न कि समाचार प्रधान। पत्रकारिता का यही मूल स्वर है। इसलिए पत्र-पत्रिकाओं में संपादकीय लेख को अग्रलेख कहा जाता है, क्योंकि इसमें लोकमत मुखरित होता है। 'विचार दृष्टि' का प्रत्येक लेख विचार प्रधान रहता है जो समकालीन युग-सत्य के संदर्भ में लिखा जाता है। लोकमत प्रकट करने के लिए संपादक के नाम लिखे गए पत्रों को 'पाठकीय पन्ना' नामक स्तंभ में प्रकाशित किया जाता है।

दरअसल पत्रकार व संपादक निर्भीक और राष्ट्रीय चेतना से प्रौढ़ हो तभी यह देश और समाज दोनों का मंगल कर सकता है। सिद्धेश्वर जी में दोनों बातें हैं। उनके निबंधों में राष्ट्रीय चेतना समग्र रूप में परिलक्षित होती है। दूसरी बात यह है कि इन्हें भारतीय संस्कृति के प्रति भी गहरी आस्था है। इसी वजह से ये भारतीय संस्कृति की बुराइयों का परित्याग करने के लिए पाठकों को उद्‌बोधित करते रहते हैं और अपनी संस्कृति का परित्याग अनुचित मानते हैं। अपनी पत्रिका में इन्होंने कई बार लिखा है कि हिंद धर्म सर्वश्रेष्ठ होते हुए भी इसका हिंदू समाज में लगातार पतन होता जा रहा है।

कहा जाता है कि प्रबुद्ध पत्रकार की सबसे बड़ी विशेषता उसकी प्रगतिशील दृष्टि होती है। प्रगतिशील दृष्टि से साहित्य, समाज और देश की प्रगति होती है। सिद्धेश्वर जी की दृष्टि भी प्रगतिशील है, कारण कि, अपनी पत्रिका 'विचार दृष्टि' के माध्यम से भारतीय समाज को प्रगतिशील दृष्टि प्रदान करने का प्रयत्न ये सदैव करते रहे हैं। भारतीय समाज को सुसंस्कृत और आधुनिक समय के साथ चलने में प्रशिक्षित करना ही इस पत्रिका का उद्देश्य है। इसके अतिरिक्त जनमत को उजागर करने में जहाँ यह पत्रिका मुखर रही है वहीं सरकार का विरोध करने में भी इसे जरा भी संकोच नहीं है। इस पत्रिका को यह विश्वास है कि जिस प्रकार एक गलत ऑपरेशन करने पर डॉक्टर की साख और विश्वसनीयता समाप्त हो जाती है, ठीक उसी प्रकार निराधार खबरें समाज में अटकलें और अफवाहें फैलाती हैं जिसका समाज पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है और उससे पत्र-पत्रिकाओं की विश्वसनीयता पर भी प्रश्न चिन्ह खड़ा हो जाता है।

सिद्धेश्वर मूलत: पत्रकार या संपादक नहीं थे, पत्रकारिता उनकी अभिव्यक्ति

का माध्यम था। इन्होंने पत्रिका के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक और राजनीतिक चेतना जगाई। इनके संपादन में प्रकाशित 'विचार दृष्टि' ने पत्रकारिता को नया तेवर प्रदान किया है। पिछले आठ वर्षों से प्रकाशित इसमें हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य के विकास की प्रौढ़ता तथा साहित्यिक पत्रकारिता के विकास की झलक दिखाई देती है।

पत्रकारिता साहित्य और समाज के विचारों की अभिव्यक्ति व संवाहिका होती है। सिद्धेश्वर में साहित्यिक और सामाजिक विचार प्रबल रूप में विद्यमान है। कारण कि ये मूलत: समाजिक कार्यकर्ता और पत्रकारिता की एक अलग दुनिया बनाई है, जिसमें पेट भरने से इतर चीजों की चिंता ज्यादा है। बेरोजगारी, गरीबी, समता-समानता एवं सामाजिक समरसता आदि की चिंता तो है, किंतु उससे अधिक विचार, शब्द, नैतिकता, पवित्रता, सदाचारिता, आचरण मूल्य-मर्यादा एवं व्यवहार आदि की है। इस चिंता के दायरे में इनकी कलम अधिक धारदार चलती है। इन विषयों पर इन्होंने सुंदर, ठोस, संग्रहणीय और अत्यंत मांसल रचनाएँ लिखी हैं, जिनमें इनकी सामाजिकता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। यही हमारी मानसिक खुराक है जो अँधेरे को हटाकर आत्मा को जगमग करती है। यहाँ यह कहना जरूरी लगता है कि साहित्य, समाज, पत्रकारिता और संगठन के जरिए ऐसे-ऐसे काम किए हैं जो सामान्य लोगों के वश के नहीं रहे हैं। संभलकर चलनेवाले धुन के पक्के सिद्धेश्वर जी ने तभी तो समाज और साहित्य में अपनी अलग पहचान बताते हुए लोगों के दिलों पर एक निराली छाप छोड़ी है। इनके अनथक परिश्रम, लक्ष्य पर पहुँचने की व्याकुलता, कठिनाइयों से जूझने की ताकत से लोग प्रेरणा ग्रहण कर सकते हैं और निराशा के विरूद्ध आशा का संचार उनमें हो सकता है।

सिद्धेश्वर जी के संपादकीय एवं अन्य लेखन में विद्रोहीपन तो नजर आता ही है, अपने मन के उद्‌गार को व्यक्त करने में ये सफल भी हुए हैं और कई जगह आक्रमणकारी पुट भी हैं। इनके लेखन आज की राजनीतिक, साहित्यक तथा समाज के बदलते परिदृश्य पर सीधा कटाक्ष भी करते हैं। सिद्धेश्वर के लेखन केवल आह्वान अथवा आवाज देकर छोड़ नहीं देते, बल्कि समस्याओं के हल भी सुझाते हैं। इनकी रचना में जो वैचारिक बेचैनी और छियासठ की उम्र पार करने के बाद भी जिस उत्साह से ये सृजनरत् हैं, इनके विविधवर्णी जीवन में झाँकने की जरूरत है, क्योंकि इनकी जीवंतता और रचनाधर्मिता ही इनके शुभेच्छुओं और पाठकों को खींचती हैं, इनसे जोड़ती हैं। इस उम्र में भी हर वर्ष दो-तीन नयी पुस्तकें निकालना और इतनी व्यस्तता के बावजूद 'विचार दृष्टि' जैसी वैचारिक पत्रिका नियमित रूप से प्रकाशित करना इन्हीं के बूते की बात है।

# खण्ड : तीन

# रचनाधर्मिता

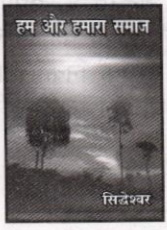


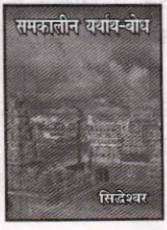


श्री सिद्धेश्वर जी की साहित्यिक कृतियाँ

# रचनाधर्मिता

किसी भी समर्थ साहित्यकार की युग चेतना ही उसके साहित्य का प्रेरक तत्त्व होता है। कारण कि इसी युग चेतना से अनुप्रेरित होकर उसकी मानसिकता रचनाधर्मिता की ओर प्रवृत्त होती है और उसकी सुभग मानसिकता उसके संस्कार, चरित्र, बुद्धि, विश्वास, धारणा, नैतिकता और कुशलता आदि के ज्ञानात्मक और क्रियात्मक पक्षों से निर्मित होती है। किंतु यह भी सच है कि ऊपरी दृष्टि से युग चेतना की पकड़ जितनी सहज प्रतीत होती है, संभवत: वैसी होती नहीं है, क्योंकि उसे प्रभावित करनेवाली ताकतें बहुआयाभी होती हैं। वास्तव में इसके लिये साहित्यकारों के भावों, विचारों, संकल्पों एवं अंतर्वृत्तियों से संयमित एक सबल अंतर्दृष्टि की अपेक्षा होती है।

साहित्यकार सिद्धेश्वर के रचना-संसार की परिधि सन् नब्बे के दशक से लेकर आज तक रही है। इस लंबी अवधि में भारतीय जीवन चेतना की दशा और दिशा में अनेक बदलाव आये। सत्तर के दशक में जे०पी० आंदोलन की स्थितियों के भी साक्षी होने का गौरव सिद्धेश्वर जी को मिला है। इनके संपूर्ण साहित्य में समसामयिक संदर्भो और परिवेश से संबद्ध ज्ञान-विज्ञान, चिंतन-मनन का गुणात्मक प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित है।

सिद्धेश्वर जी ने अपने युगीन चिंतकों का अनुशीलन बड़ी सतर्कता और सावधानी से किया है, किंतु उनके सदाशयी समाजवादी दृष्टिकोण को जितना लोहिया, जयप्रकाश, कर्पूरी के आदर्शो और विचारों ने प्रभावित किया है उतना शायद किसी और के विचारों ने नहीं। इन्होंने न केवल अपनी रचनाओं में उपरोक्त मनीषियों के विचारों का विनियोग और उसकी मीमांसा की है, अपितु अपने शील, व्यक्तित्व और आचरण में भी उसको साकार किया है। आखिर तभी तो सिद्धेश्वर जी राजनीति में रहकर भी उसके प्रदूषण से सदा मुक्त रहे और अपने पहनावे के कुर्ते-पायजामें के धवल वस्त्र में कभी दाग लगने नहीं दिया। इन्होंने कभी भी मिथ्या प्रदर्शन नहीं किया। हमेशा मनसा-वाचा-कर्मणा गाँधी, लोहिया, जे०पी०, कर्पूरी के दर्शन को अपने जीवन में उतारने की कोशिश की।

सिद्धेश्वर जी ने अबतक की जिंदगी में वह बहुत कुछ कर दिखाया जो मध्य वर्ग की पारिवारिक पृष्ठभूमि का व्यक्ति शायद ही कर पाता है। संगठन

से नाता जोड़ा तो अपना कोई सानी नहीं छोड़ा। पत्र-पत्रिकाओं के संपादन का दायित्व संभाला तो एक मानदंड स्थापित किया और हिंदी साहित्य की सेवा में लगे तो हाइकु एवं सेन्र्यू जैसी जापानी विधा पर कई काव्य-संग्रह प्रकाशित कर उसे समृद्ध किया। क्षेत्र चाहे कोई भी हो, दावेदार तो अनगिनत होते हैं पर कामयाबी की मंजिलों के करीब वही पहुँच पाते हैं जो मुकद्दर का सिकंदर तो होते ही हैं साथ ही उनमें औरों से कुछ अलग भी आवश्यक होता है। सिद्धेश्वर जी के पास औरों से अलग जो है, वह है समाज और कलम पर उनकी पकड़ और उसका जादू जो सर पर चढ़कर बोलता है। जिंदगी को पूरी जिंदादिली और सिद्दत के साथ जीनेवाला यह इंसान, राष्ट्रीय राजधानी नई दिल्ली सहित देश के प्राय: प्रत्येक क्षेत्र के लोगों में इंसानी मोहब्बत, भाईचारे और सौहार्द का पैगाम देते चला जा रहा है। संगठन के कार्यों को गति प्रदान करने से लेकर पत्रिकाओं की पठनीयता को बढ़ाने और हिंदी साहित्य को समृद्ध करते जाने का सिलसिला इनका कभी न टूटा और आज भी जारी है। जिंदगी की खट्टी-मीठी यादों को समेटे ये अपने लक्ष्य की ओर अनवरत रूप से अग्रसर हैं। इनके साथ बैठकर इन्हें जब मैं सुनता हूँ तो बशीर के शेर बरबस ही जुबान पर आ जाते हैं-

*'उजाले अपनी यादों के हमारे पास रहने दो,*
*न जाने किस गली में जिंदगी की शाम हो जाए।*

रचनाकार होने के लिए बहुत सी वर्जनाओं को तोड़कर जीना पड़ता है। सिद्धेश्वर जी एक ऐसे ही रचनाकार हैं जिन्होंने अपनी कथनी और करनी दोनों से यह बताने का प्रयास किया कि यदि व्यक्ति चाहे तो ईमानदारी के साथ अपने पेशे से निर्वाह कर सकता है। इनका व्यक्तित्व और साहित्य कभी भी अलग नहीं रहा। ये जितने जिंदादिल इंसान हैं इनके साहित्य में भी वही जिंदादिली नजर आती है। इनका एक-एक शब्द जिंदगी से धड़कता महसूस होता है। इन्होंने जो कुछ अपनी जिंदगी में देखा और अनुभव किया विचार तथा संवेदना के स्तर पर उन्हें अपनी कृतियों के हवाले कर दिया। इनके जीवन के वैयक्तिक यथार्थ जवान होकर सामाजिक तथा साहित्यिक बन गए।

सिद्धेश्वर जी को अपने समय के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संकट की गहरी पहचान है, क्योंकि इन मसलों का हल तलाशने के लिए देश भर की स्थितियों का अध्ययन इन्होंने अपने भ्रमण के दौरान किया है और उन्हें समझा है। इन स्थितियों के समझने की वजह से ही ये इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सामाजिक क्रांति लगातार चलनी चाहिए। सामाजिक विकास कभी शिथिल नहीं होता, उसमें तो निरंतरता बनी रहती है। धार्मिक अँधविश्वास और कट्टरपन को ये सामाजिक विकास में बहुत बड़ा बाधक मानते हैं जिससे हर हालत में मुक्ति पाने की बात करते हैं। इंसानियत की रूह में हरकत पैदा करने

के लिए सामाजिक क्रांति के स्पिरीट को ताजा करने के लिए जोर देते हैं। कभी सरदार भगत सिंह ने भी कहा था कि क्रांति विचारों की सान पर तेज होती है। इन्हीं विचारों को शब्दबद्ध कर ये साहित्य को समृद्ध कर रहे हैं।

सिद्धेश्वर जी जहाँ एक ओर अपने प्रभावोत्पादक लेखों से देश के नागरिकों में जोशोखरोश एवं राष्ट्रीय चेतना का संचार कर रहे हैं, वहीं समाज में नैतिक मूल्य-मर्यादाओं की रक्षा के लिए भी प्रयासरत हैं, क्योंकि ये इस बात को पूरी तरह समझते हैं कि हमारी समूची बुनियाद ही नैतिक मूल्यों से बनी है। यही कारण है कि साहित्य और साहित्यकारों से संपर्क को ये अपनी कमाई मानते हैं, उसी को ये संस्कार और शिक्षा मानते हैं। नैतिकता की प्रेरणा भी ये उन्हीं से प्राप्त करते हैं।

अपने समय और परिवेश की सामाजिक वास्तविकताओं को जिस प्रकार सिद्धेश्वर जी ने अपने लेखन में प्रस्तुत किया है, आज के लेखक के लिए इनकी दृष्टि प्रासंगिक है, क्योंकि इनका दृष्टिकोण उन सामाजिक अंतर्विरोधों को हल करने में सहायक है जिनके प्रति, ये गहरे रूप से सजग हैं। इनकी रचनाएँ लक्ष्य विस्तार, आवेश और दृढ़ता को समाहित किए हुए हैं।

सिद्धेश्वर जी एक सामाजिक कलाकार हैं, क्योंकि इनका साहित्य समय और परिवेश को प्रतिबिंबित करता है। वैसे किसी भी रचनाकार का व्यक्तित्त्व संवरता है वक्त की चेतना, मन के संस्कार और जीवन की परिस्थितियों से। इन्हीं तीन पहलुओं को ध्यान में रखने से ही इनके साहित्य का पूरा ताना-बाना इन्हीं बिंदुओं पर केंद्रीत है। ये एक साथ ही आदर्श और यथार्थ को लेकर चलते हैं क्योंकि विषय के विश्लेषण में ये बिल्कुल यथार्थवादी हैं। अतएव इनके साहित्य के संदर्भ में यह कहना लाजिमी होगा कि यथार्थ के धरातल पर समाज का कल्याण एवं सुख-विस्तार ही इनका मूल जीवन-दर्शन एवं उद्देश्य है। यही वजह है कि गहन मानवीय संवेदनाओं से आप्लावित इनकी सर्जना वर्तमान समाज के सभी स्तरों को उधेड़कर सामने रखती है और खासकर निम्न एवं मध्य वर्गीय जीवन और उसकी नाना परिस्थितियों के यथार्थ-चित्रण की दृष्टि से इनकी कृतियाँ सफल समझी जाती हैं।

हम सब इस बात से अवगत हैं कि साहित्य सामाजिक परिवर्तन का निमित्त बनता है, रुचि निर्माण करता है, पाठक समाज की संवेदनाओं का विस्तार करता है और युग की समग्र विचार धारा में बदलाव ला देता है। सिद्धेश्वर जी के साहित्य में यह विशेषता उनके कथ्यों व तथ्यों की व्यापकता की नजर से देखी जा सकती है। मूल्य दृष्टि इनके साहित्य के अंदर से उभरती है, क्योंकि इन्होंने जीवन को अत्यधिक निकट से देखा और समझा है और संघर्षों के बीच से गुजरकर साहित्य में शिव की प्रतिष्ठा की है और उसमें साहित्यिक गरिमा तथा

विश्वसनीयता प्रदान की है।

**वैचारिक रचनात्मकता:**

जीवन की सार्थकता को उस समय पूर्ण माना जाता है जब वह साहित्य, कला और संस्कृति से युक्त होता है। सिद्धेश्वर जी की मौन सारस्वत साधना से हिंदी संसार अपरिचित नहीं है, लेकिन यह दुखद वास्तविकता है कि आज के तथाकथित शारदापुत्रों की यह प्रवृत्ति हो गयी है कि बिना वाचाल हुए उनकी कथित साधना समादृत नहीं होती। सिद्धेश्वर जी की रचनाधर्मिता इनकी जीवनधर्मिता का पर्याय है। ये सामान्य जन के समान ही जीवन के भोक्ता हैं। यह बात दीगर है कि ये जीवन के सच्चे व्याख्याता भी हैं। इनको अपने बीच अपना-सा पाकर इन्हें हम तभी समझते हैं जब इनका अंतरंग और बहिरंग दोनों देखते हैं। ये कई पगडंडियों से होकर भी भारतीय मनीषा के फलक पर चंद्रबिंदु की तरह आलोकित हैं। इनके सृजन का मुख्य स्वर प्रगतिवादी है, जिसमें राष्ट्रीय विचारधारा के साथ-साथ पाठकों को रोमांटिक धारा में भी अवगाहन करने का अवसर मिलता है।

यों तो कॉलेज के छात्र जीवन से ही सिद्धेश्वर जी को लिखने-पढ़ने में काफी दिलचस्पी रही है, लेकिन सरकारी सेवा में आने के बाद अपनी उम्र के चालीसवें वर्ष से इन्होंने अधिक लिखना प्रारंभ किया और आज तक इनका यह कार्य जारी है। बिना किसी अनुदान, शोधवृत्ति और आकादमिक संस्था में गये इन्होंने राजनीति, समाजशास्त्र, साहित्य, समाज तथा संस्कृति जैसे विषयों पर अब तक डेढ़ सौ से अधिक लेख लिखे हैं और लगभग एक दर्जन पुस्तकें भी। इनकी बेलाग, निष्पक्ष और विद्वत्तापूर्ण टिप्पणियों का आदर वे लोग भी करते हैं, जिनकी इनसे वैचारिक असहमति है। इनके ज्यादातर लेखों एवं कृतियों में सामाजिक-राजनीतिक विसंगतियों को रेखांकित किया गया है। इनमें भ्रष्टाचार, आतंकवाद, अलगाववाद, बढ़ती बर्बरता, हिंसा, अँधउपभोगतावाद इत्यादि शामिल हैं। इन्होंने बड़े खूबसूरत ढंग से यह बताने का प्रयास किया है कि बढ़ती असमानता, विषमता, अँधविश्वास, धर्मांधता इत्यादि विकृतियाँ कुछ खास लोगों, देशों व समूहों में जन्म ली हैं। इन्होंने अपने लेखों में किसान-मजदूरों की समस्याओं, भुखमरी, बेरोजगारी, लोकतंत्र, महिलाओं तथा कमजोर समूहों पर धारदार कलम चलायी है। इसमें तनिक संदेह नहीं कि इनके इन लेखों व कृतियों से देश व समाज सहित पूरी बौद्धिक जमात का भला होगा, क्योंकि ये सोच और चिंतन की उम्मीद भरी दस्तक तो देती ही हैं, शिक्षित मध्यम वर्ग और उच्च मध्यम वर्ग के बौद्धिक लोगों को कुछ करने की प्रेरणा भी प्रदान करती हैं। इनकी अभिव्यक्तियाँ आमजनों में चेतना जागरित करने के साथ-साथ उन्हें अपने भीतर

की ओर झांकने के लिए कहती हैं, क्योंकि अपने भीतर झाँकने से ही उन्हें अपनी कमजोरियों का अहसास होगा और वे अपनी नकारात्मक सोच को बदलने का प्रयास करेंगे। सिद्धेश्वर जी के इन्हीं गुणों के चलते इनके समक्ष परेशानियाँ भी नतमस्तक हो जाती हैं। मुश्किलों में भी नकारात्मक विचार, निराशा, चिंता, घबराहट, कुंठा इत्यादि को ये प्रश्रय नहीं देते हैं।

आमतौर पर सिद्धेश्वर जी के साहित्य में आम आदमी के दु:ख-दर्द और संघर्षों के साथ-साथ देशभक्ति की भावना भी प्रचुर मात्र में मिलती है। सुचिंतित ढंग से लिखना इनके लेखन-लक्ष्यों में शामिल है। इनके लेखकीय जीवन का प्रमुख अध्याय है गद्यलेखन। सच मानिए तो राजनीतिक विषयों को केंद्र में रखकर लिखने की जैसे इनकी आदत बन गयी है, क्योंकि ये मानते हैं कि धर्म की तरह राजनीति के सरोकार भी वृहत् और व्यापक हैं और राजनीति के बारे में यह नहीं भूलना चाहिए कि उसे सत्तासंघर्ष से मुक्त नहीं किया जा सकता है। ये यह भी मानते हैं कि मुक्तिबोध का समूचा रचनाकर्म भी बहुत गहरे अर्थ में राजनीतिक है। साहित्य में सत्तासंघर्ष का रूप नैतिक संघर्ष ही हो सकता है।

रचना में रचनाकार का चिंतन अभिव्यक्त होता है। जिस रचनाकार का चिंतन सतत परिवर्तित परिवेश के साथ अपना स्वरूप ग्रहण करता है, वह सार्थक, जीवंत और भविष्योपयोगी होता है। निष्पक्ष, स्वस्थ और स्पष्ट चिंतन वही रचनाकार प्रस्तुत कर सकता है, जो निरंतर अध्ययनशील रहे और पौराणिक एवं पारंपरिक संदर्भों की व्याख्या कालीन दृष्टि से करे। ऐसे लेखकों के लेखन में देश व समाज के ज्वलंत मुद्दों एवं वर्तमान समस्याओं के समाधान निहित होते हैं और साथ ही अनेक संभावनाएँ भी विद्यमान होती हैं। कारण कि लेखक व साहित्यकार का सरोकार प्रमुख रूप से उन मूल्यों की प्रतिष्ठा से होता है, जिनके आधार पर व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की चेतना जाग्रत रह सके। सिद्धेश्वर जी का दृढ़ मत है कि साहित्यकार जागरण का संदेश भी देता है और जीवन यात्रा में आए अवरोधों को दूर भी करता है।

राष्ट्र चेतना से ओत-प्रोत सिद्धेश्वर जी ऐसे ही चिंतकों में से एक हैं, जिनके लेखन में न केवल श्रेष्ठ चिंतनधारा है, बल्कि जाति, संप्रदाय और क्षेत्र की सीमाओं से प्रतिबद्ध न होकर मानवता को ही ये प्रमुखता देते हैं। निरंतर अध्ययनशील ये सदैव समाज को कुछ देने की ही बात करते हैं। इनके उच्च स्तरीय चिंतक होने के प्रमाण प्रस्तुत करती हैं इनकी सद्य: प्रकाशित कृतियाँ। इनकी प्राय: सभी कृतियों में मौलिकता और नवीनता के साथ-साथ वर्तमान की महत्त्वपूर्ण समस्याओं के निष्कर्ष पौराणिकता के साथ जोड़कर प्रस्तुत किये गये हैं। सिद्धेश्वर जी के ये निष्कर्ष महत्त्वपूर्ण और रेखांकित करने योग्य हैं।

विगत दो-ढाई दशकों में साहित्यसेवी और सामाजिक चिंतक के रूप में अपना विशिष्ट स्थान बनानेवाले सिद्धेश्वर जी की कृतियों में मानव तथा समाज के आपसी संबंधों के ऐसे आयाम दृष्टिगोचर होते हैं जो पाठक को मात्र कुछ पढ़ने का ही सुख नहीं देते, अपितु बहुत-कुछ सोचने-समझने के लिए भी मजबूर करते हैं। आर्थिक उपलब्धियों के पीछे दीवानगी की हद तक भागते आदमी के पास आज जब साहित्य के लिए समय घटता जा रहा है, सिद्धेश्वर जी समाज, राजनीति तथा पत्रकारिता में व्यस्त रहते हुए भी साहित्य के लिए समय निकाल लेते हैं, जो बड़ी बात है। इन्होंने निबंध, कहानी, कविता, संस्मरण, हाइकु, सेन्र्यू इत्यादि कई विधाओं को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। आपने अपने जीवन और आस-पास के वातावरण से चुनी घटनाओं और उदाहरणों से अपनी बात स्पष्ट करने का प्रयास किया है, जिससे आपके विचार पाठकों तक सहज और सीधे ढंग से पहुँच जाते हैं।

साहित्य सिद्धेश्वर जी के लिए वैचारिक संघर्ष का माध्यम है। ये हमेशा कहा करते हैं कि समाज के सदस्यों के लिए मैं सैकड़ों साल तक नहीं जीऊँगा। अपने जीवन में कुछ अनुभव इन्होंने प्राप्त किये और कर रहे हैं। ये उनको अपनी रचनाओं द्वारा समाज के समक्ष रखने का प्रयास करते हैं। नैतिकता, मानवीयता और व्यापक जनसमुदाय के प्रति सहानुभूति से परिपूर्ण इनका जीवन समाज और देश में क्रांतिकारी बदलाव के लिए समर्पित है। वर्गविहीन समाज के पक्षधर सिद्धेश्वर जी निरंकुश तानाशाही, अलोकतांत्रिक शासन के विरुद्ध सामूहिक प्रयास से वैचारिक मुहिम चलाने में हमेशा विश्वास रखते हैं और इसी के लिए प्रयासरत हैं। इस दृष्टि से देखा जाए तो इनकी समाज और साहित्य के प्रति एक निश्चित अवधारणा रही है, जो यथार्थोन्मुख आदर्श पर आधारित है। इसलिए इनका साहित्य सांस्कृतिक विचारों से परिपूर्ण और आज के लिए प्रासंगिक भी है।

सतत समाज के हित की बात करनेवाले सिद्धेश्वर जी स्त्रीशिक्षा का प्रचार-प्रसार, मादक द्रव्यों का निषेध, विधवा-विवाह का समर्थन तथा बाल विवाह का विरोध करते रहे हैं। इनका मानना है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपना चित्त इतना शुद्ध रखना चाहिए कि मित्रों की संख्या बढ़ती जाए, शत्रुओं की संख्या घटती रहे और अंततः सभी बंधु-बांधव बन जाएँ।

सिद्धेश्वर जी के अब तक का जीवन और सर्जनकर्म मानव जाति की मुक्ति हेतु संघर्ष को समर्पित है। इनका लेखन अजेय जिजीविषा, अशेष जीवनानुराग का दस्तावेज है। सेवावधि से प्रारंभ इनकी रचनायात्रा निर्बाध गति से चल रही है। इनकी रचनाएँ निरंतर वैचारिक और रचनात्मक उत्तेजना एवं ऊर्जा प्रदान करती हैं। इनकी कृतियों के माध्यम से इनके रचनासंसार का जो व्यापक

एवं वैविध्यपूर्ण परिदृश्य अब तक सामने आया है उससे इनके गहरे मानवीय सरोकारों तथा आमजन के प्रति इनकी पक्षधरता दृष्टिगोचर होती है। इस प्रकार देखा जाए तो साहित्यकार के रूप में, समाज सेवी के रूप में, पत्रकार के रूप में, रोचक वक्ता के रूप में और एक संतुलित विचारक के रूप में सिद्धेश्वर जी की छाप उन सबके दिल-दिमाग पर है जिन्होंने इन्हें करीब से या दूर से देखा, सुना और पढ़ा है। जैसा कि इन्होंने स्वयं कहा है कि इनके साहित्यिक संस्करण साहित्यकारों के सान्निध्य और उनकी प्रेरणा से पल्लवित-पुष्पित हुए, इसलिये उनके प्रति ये तहेदिल से आभार व्यक्त करते हैं। इनके साहित्य में भाषा और भाव दोनों का ऐसा अच्छा सम्मिश्रण है कि उसका असर मेरे दिल पर भी है और इनकी साहित्यिक कृत्तियों की अमिट छाप इसी प्रकार इस देश के हजारों पाठकों के दिलों पर अंकित है। यही कारण है कि इनकी साहित्यिक उपलब्धियों की स्वीकृति पूरे भारत में आज हो चुकी है, क्योंकि इनके साहित्य का केवल लोग पाठक ही नहीं रहे, बल्कि मुरीद भी हो गये। इनकी लिखी लगभग एक दर्जन पुस्तकें आज भी पूरे भारत के रचनाकारों के पास मौजूद हैं। पाठकों की जानकारी के लिये इनकी प्रत्येक पुस्तक पर मैं अपनी संक्षिप्त टिप्पणी यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ।

**'आरक्षण' : अक्टूबर** 1990

जिस समय वी॰ पी॰ सिंह के प्रधानमंत्रित्व काल में मंडल आयोग की अनुशंसा को हरी झंडी देकर उसे लागू किये जाने की अधिसूचना जारी हुई तो पूरे भारत में विरोध का स्वर गूँज उठा और लोग एक दूसरे की जान लेने पर पड़ गये। ठीक उसी समय सिद्धेश्वर जी ने आरक्षण की बारीकियों को लिपिबद्ध कर *'आरक्षण'* शीर्षक से अक्टूबर 1990 में एक पुस्तक निकाली। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि इनकी इस पुस्तक को पढ़ने के पश्चात् आरक्षण के पक्ष-विपक्ष दोनों को राहत मिली उसकी असलियत की जानकारी पाकर।

**'आरक्षण' संशोधित संस्करण: नवंबर** 1990 **ई०**

आपको अच्छी तरह स्मरण होगा आरक्षण के सवाल ने कभी सारे राष्ट्र को झकझोरा था। देश के चप्पे-चप्पे पर आरक्षण की गूँज सहज सुनायी पड़ रही थी। कोई समर्थन में, तो कोई विरोध में, सभी अपने-अपने चश्में से उसे देख रहे थे। सामाजिक न्याय रूपी चश्मे को चुनाव के लिए सुरक्षित रख दिया गया था। वह तो आज भी सुरक्षित रखा जा रहा है। 13 अगस्त 1990 यानी जिस दिन भारत सरकार ने मंडल आयोग की अनुशंसा को 7 अगस्त 1990 से लागू करने की अधिसूचना जारी की, आरक्षण विरोधी आंदोलनकारी सड़क पर निकल पड़े।

हिंसा भड़क उठी, क्योंकि आरक्षण के समर्थक कब बाज आनेवाले थे। उनके लिए तो यह आत्मसम्मान का विषय बन चुका था, जबकि सचाई यह थी कि उस समय तक लोग आरक्षण लागू करने के प्रावधानों से पूरी तरह वाकिफ भी नहीं थे।

ऐसी विषम एवं भयावह परिस्थिति में जब पूरे भारत में आरक्षण के सवाल पर आग की लपटें उठ रही थीं, आरक्षण के विभिन्न पहलुओं एवं तथ्यों से देश की आम जनता को अवगत कराने के उद्देश्य से सिद्धेश्वर जी ने डॉ० मेहता नगेन्द्र सिंह की सहभागिता से 'आरक्षण' पुस्तक का प्रथम संस्करण अक्टूबर 1990 में प्रकाशित किया तथा उसका दूसरा संस्करण ठीक उसके दूसरे माह यानी नवंबर 1990 में सिद्धेश्वर जी के संपादकत्व में राष्ट्रीय विचार मंच ने प्रकाशित किया। देश की बदलती हुई परिस्थितियों एवं राजनीतिक घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में नवीनतम तथ्यों से युक्त **'आरक्षण'** का दूसरा संस्करण प्रकाशित कर सिद्धेश्वर जी ने न केवल विषम स्थिति में प्रबुद्धजनों एवं आमजनों को अपने मतभेदों एवं पूर्वाग्रहों को भुलाकर हाथ-में-हाथ डालकर एक साथ खड़े होने के लिए प्रोत्साहित किया, बल्कि हर सामाजिक क्रांति के पीछे बुद्धिजीवियों की जो भूमिका होती है, उसका इन्होंने निर्वाह किया। सिद्धेश्वर जी ने इस पुस्तक में अपने विचारों को व्यक्त करने के क्रम में कितनी निष्पक्षता का परिचय दिया है, उसकी एक बानगी इन्हीं की पंक्तियों में देखें-इन्होंने पुस्तक के पृष्ठ 44 पर लिखा है-''पिछड़ी जातियों के नेता अगर आरक्षण के साथ-साथ जातिविनाश और आर्थिक समता का भी कार्यक्रम चलाएँ, तब यह एक क्रांतिकारी कदम होगा। तीसरे तर्क में कहा गया है कि--पिछड़ी जातियों के कुछ संपन्न परिवार में ही आरक्षण के ये लाभ सिमटकर रह जाएँगे। यह शिकायत विद्वेषपूर्ण लग सकती है, किंतु इसकी तह में जाने का प्रयास भी आवश्यक दिखता है। किसी परिवार में दो पीढ़ियों तक अगर नौकरी मिल चुकी है, तो उसकी अगली पीढ़ी को आरक्षण से वंचित करने का सुझाव तर्कसंगत लगता है। पिछड़े वर्ग के संपन्न लोगों को इस बात से अप्रसन्नता हो सकती है, किंतु इसपर गौर किया जाना लाजिमी है।''

**'बिहार के कुर्मी' ( निबंध-संग्रह ) प्रथम खंड, मई** 1993

भारतीय साहित्य में निबंध की रचना का इतिहास नया नहीं है। निबंध के अंतर्गत बहुत से सर्जन-प्रकार समाविष्ट होते हैं। समीक्षाशास्त्र के अनुसार इसमें विवेचन, संपादन, चरित्र-चित्रण और व्यक्तिगत विनोदात्मक लेखन को लिया जाता है। परंतु गत पचास वर्षों में निबंध लेखन को एक कला के रूप में स्वीकारा गया और इसके अंतर्गत 'ललित निबंध' की शैली विकसित हुई। भारतीय

साहित्य के परिदृश्य पर ललित निबंधों को जिस प्रकार कीर्ति प्राप्त हुई, वह एक चमत्कार से कम नहीं है। वस्तुतः साहित्य के तत्त्वों को समेटते हुए भाषा के अछूते संस्कारों के साथ जो बात नये ढंग से कही जाती है, वह ललित निबंध है। पिछले दो दशकों से सिद्धेश्वर जी ने, चाहे वह रिपोर्टाज हो या व्यक्तिपरिचय या संपादकीय विचार हो, शब्दों को नये अर्थ देकर ललित निबंध लिखे हैं इन्होंने, जो विलक्षण हैं और सीधे मानस पटल पर रेखांकित होते हैं। इन निबंधों की भाषा केवल लालित्यपूर्ण ही नहीं, अपितु चमत्कारी भी है। सिद्धेश्वर जी अपने निबंध में कटु सत्य को कहने को विवश करते हैं, लेकिन इनकी भाषा में कहीं भी कठोरता नहीं है। इनके संपादकीय हों या किसी विषयवस्तु पर लेख, आलेख ये अपनी विविधवर्णी विषयवस्तु और कथ्य की शैली की वजह से बार-बार पढ़ने की जिज्ञासा उत्पन्न करते हैं। साहित्य को बार-बार पढ़ने की ललक से यह साबित होता है कि साहित्य भूलने की चीज नहीं होता।

### *'बिहार के कुर्मी'* ( निबंध-संग्रह )

सिद्धेश्वर जी का प्रथम निबंध-संग्रह है। इस संग्रह की भाषा सरल है, इसलिए संप्रेषणीय भी। कला और शैली के ताने-बाने में रचनाकार एकरसता बनाये हुए हैं। इसकी यही विशेषता शुरू से अंत तक पाठक के मन को बाँधे रहती है। निबंधकार के इस संग्रह में समसामयिक सामाजिक तथा साहित्यिक समस्याओं से जुड़े आलेखों के साथ-साथ कुर्मी समाज के अमर शहीद, उसके गौरवमय अतीत और इतिहास की नीवें, झारखंड के कुर्मी, समाज के साए में संगठन, उसके उद्यम-व्यवसाय, सामाजिक पत्र-पत्रिकाएँ और शिक्षण-संस्थाएँ, उसके साहित्य, संस्कृति एवं सभ्यता तथा समाज के मूर्धन्य साहित्यकारों पर समीक्षात्मक टिप्पणियाँ प्रस्तुत की गयी हैं। इस पुस्तक की एक अनोखी विशेषता यह है कि रचनाकारों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर कलम चलाते वक्त उनकी कमजोरियों को भी नजरअंदाज नहीं किया गया है। बानगी स्वरूप प्रो० बी० एम० के० सिन्हा पर की गयी टिप्पणी को देखें-

''कभी-कभी ऐसा होता है कि कुछ लोग शिक्षा के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचकर भी अपने समाज में पूरी तरह सुपरिचित नहीं हो पाते हैं। श्री विश्वमोहन कुमार सिन्हा जो बी० एम० के० सिन्हा के नाम से जाने जाते हैं, के साथ भी कुछ इसी तरह का हादसा हुआ। अँग्रेजी साहित्य के उद्भट्ट विद्वान प्रो० सिन्हा जिन्होंने बिहार एवं मगध विश्वविद्यालयों के कुलपति पद को सुशोभित किया तथा बिहार लोक सेवा आयोग के सदस्य के रूप में उसकी गरिमा को बढ़ाया, का अपने समाज में जितनी पहचान बननी चाहिए थी, उतनी नहीं बन पायी। इसका कारण और जो भी हो, समाज को उनके अपेक्षित योगदान से वंचित रहना भी संभवतः एक कारण हो।''

इस पुस्तक की एक दूसरी विशेषता यह देखने को मिलेगी कि जहाँ एक ओर गैर-कुर्मी समाज के विरुद्ध कुछ भी नहीं लिखा गया है, वहीं दूसरी ओर कुर्मी समाज की कुरीतियों, विद्रूपताओं एवं विसंगतियों पर दो-टूक कलम चलायी गयी है। पुस्तक के *'समाज के साए में संगठन'* शीर्षक लेख की निम्न पंक्तियों को देखें-

*''हजारों सालों की विसंगतियों के खिलाफ लड़ी जा रही लड़ाई में हमें भी अपनी भूमिका निभानी है। दलितों एवं पिछड़े वर्गों की अन्य सभी जातियों को कुर्मी समाज से बहुत बड़ी आशाएँ हैं। वे चाहते हैं कि सामाजिक न्याय की बड़ी लड़ाई में हम उनकी अगुआई करें ताकि शोषितों को, पिछड़ों को समाज में उनका वाजिब हक मिल सके। किंतु विडंबना यह है कि अगुआई की बात तो दूर हम तहेदिल से उस लड़ाई में शरीक भी नहीं हो पाते। पिछले दिनों आरक्षण के सवाल पर जब आग भड़की, तब जितने जोशो-खरोश तथा एकजुटता का परिचय यादव समाज ने दिया, हम नहीं दे सके। हम सबने तो रसद पहुँचाने तक की जिम्मेदारी भी नहीं निभायी। जी हाँ, सेना में जिस तरह दुश्मनों का मुकाबला अगली पंक्ति में जाकर एक टुकड़ी करती है, तो दूसरी टुकड़ी उसे रसद-खाना पहुँचाती है, जिसकी भूमिका भी अहम होती है। क्या हम हृदय से यह खुलकर कह सकते हैं कि हमने उन्हें रसद पहुँचाने की जिम्मेदारी निभायी।''*

इस प्रकार सामाजिक नियमों, परंपराओं, अंधविश्वासों, मिथ्याडंबरों और परिपाटियों का सूक्ष्म विवेचन ही इस संग्रह की विशेषता है। सिद्धेश्वर जी ने बड़ी सजगता और पूरी निष्ठा के साथ वरिष्ठ पीढ़ी के साथ-साथ उदीयमान प्रतिभाओं, राजनीतिज्ञों, लेखकों के व्यक्तित्व के विविध आयामों को नवीनता के साथ उजागर करने का प्रयास किया है, जो स्वाभाविक रूप से पाठकों पर प्रभाव छोड़ता है।

आज की लोकतांत्रिक व्यवस्था में राजनीति पर इनकी बेबाक तथा दो-टूक टिप्पणी इनकी राजनीति-निरपेक्षता की ओर संकेत करती है। सामाजिक जागरूकता की दृष्टि से यह पुस्तक एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है और हमारे सामाजिक जीवन में गहरे तक अपनी जड़ें जमाये ऐसी अनेक कुरीतियाँ हैं जिनके विरुद्ध लोगों में जागरूकता पैदा की जा सकती है। इस संदर्भ में लेखक के द्वारा भरपूर सामग्री प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। आखिर तभी तो जवाहर लाल नेहरू वि० वि० तथा दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्रों ने इस पुस्तक से संदर्भित तथ्यों और लेखक से किये गये साक्षात्कार के आधार पर अपने शोध पूरे किये।

इस संग्रह में संकलित तथ्यों, पृष्ठभूमि तथा विश्लेषण के बाद सही

तथ्यों तक पहुँचना सर्वसामान्य के लिए सुगम होगा, क्योंकि लेखक ने बड़े परिश्रम और सावधानी से समाज की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ उसके कई महत्त्वपूर्ण मुद्दों को प्रस्तुत किया है। राजनीतिज्ञों की अक्षमताओं तथा समाज के बुद्धिजीवियों एवं उद्यमियों के आत्मकेंद्रित होने का पहली बार तथ्यों सहित प्रस्तुतीकरण हुआ है। इस पुस्तक को पढ़ने पर एक बात और मेरी समझ में आती है कि लेखक ने सामाजिक-सांस्कृतिक उत्तरदायित्व समझते हुए इसे लिखा है, क्योंकि यह साहित्य समाज की मानसिक और सामाजिक स्थिति से संबंध रखता है और सच्चे अर्थ में वही जनता का साहित्य कहा जा सकता है, जो जनता के जीवनादर्शों को, जनता के जीवन-मूल्यों को प्रतिष्ठापित करता है, उसे मुक्तिपथ पर अग्रसर करता है। इस मुक्तिपथ का अर्थ राजनीतिक मुक्ति से लेकर अज्ञान से मुक्ति तक है। इसमें जनता के मानसिक परिष्कार, उसके आदर्श तथा उसके जीवन-चित्रण इत्यादि सभी इस साहित्य में सम्मिलित हैं। लेखक के सामने भिन्न परिवेश की चुनौतियाँ हैं, जिनमें अपने व्यक्ति और रचनाकार दोनों को इज्जत से जिंदा रखना चाहते हैं। विभिन्न विषयों तथा रचनाकारों पर आलोचनात्मक भाषा में इन्होंने जिस शैली का प्रयोग किया है, वह मौलिकता और ताजगी के चलते सहज ही ध्यान आकृष्ट करता है। शब्दों के चयन, वाक्य-संरचना और बिंबों के प्रयोग में भी इन्होंने मौलिकता का परिचय दिया है। इतिहास का जातीय मोह, राजनीति के क्षुद्र, स्वार्थ तथा सामाजिक जड़ता पर इनके विश्लेषण अत्यंत मोहक हैं। इनके धार्मिक अनुभव, समाज की दारुण सचाइयों को बटोर कर इसमें संजोया गया है।

पुस्तक के प्रथम खण्ड में दलित, पीड़ित और शोषित वर्गों के प्रति न केवल सहानुभूति व्यक्त की गयी है, बल्कि उनमें सामाजिकता तथा राजनीतिक चेतना जागरित करने की भरपूर सामग्री प्रदान की गयी है। समाज में व्याप्त विषमता और विद्रूपता की वजह से लेखक की बैचेनी सहज रूप में परिलक्षित होती है। इनकी जो भावनाएँ इसके विभिन्न स्तंभों में छुपी हैं वे सिर्फ कुर्मी समाज की ही नहीं रह जाती हैं, वरन् पूरे भारतीय समाज के अंतरंग भावों का प्रतिबिंब बन जाती हैं। इनकी रचना से गुजरते हुए एक बात जो मुझे आकर्षित करती है, वह है राजकीय सेवा में कार्यरत होते हुए भी सिद्धेश्वर जी स्पष्टवादी हैं और अपने समाज के घोर सामंतवादी वातावरण में भी ये आम आदमी की कठिनाइयों व सामाजिक शोषणों के प्रति जागरूक है। इनके रचना-संसार में आर्थिक व सामाजिक शोषणों के प्रति विरोध का स्वर है। इनमें गहरी संवेदना और अपनी बात कहने का खास अंदाज है। ये अपनी हर बात पूरी शिद्दत के साथ कहते हैं। यही कारण है कि समकालीन सभी स्तर के सहकर्मियों, समाजसेवियों तथा

साहित्यकारों में इनकी एक विशिष्ट पहचान है। इनके लेखन में हर जगह एक विराट् मानवीय संवेदना तथा सामाजिक जीवन का एक सपना झांकता है। कई बातों पर गहरी असहमति होते हुए भी ये भविष्य के सुंदर समाज का सपना अपने साथ लेकर चलते हैं। शायद इसीलिए ये जिस किसी के व्यक्तित्व व कृतित्व पर चर्चा करते हैं, तो उसमें इनकी गहरी संबद्धता और संश्लिष्टता झलकती हैं। इस संग्रह के भाषा संशोधन तथा इसे पठनीय और स्तरीय बनाने में आकाशवाणी, दिल्ली के तत्कालीन निदेशक श्री बांके नंदन प्रसाद सिन्हा के योगदान को इन्होंने सराहनीय बताया। श्री जे० एन० पी० सिन्हा के योगदान की भी ये तहेदिल से चर्चा करते हैं।,

**'बिहार के कुर्मी' ( निर्देशिका ) द्वितीय खण्ड : जून** 1993

सिद्धेश्वर लिखित बिहार के कुर्मी (निर्देशिका) के द्वितीय खण्ड का प्रथम संस्करण जून 1993 तथा द्वितीय संशोधित संस्करण जून 1995 में प्रकाशित हुआ। जहाँ तक इसके सजग समीक्षकों, रचनाकारों तथा पत्रकारों की प्रतिक्रिया का प्रश्न है, लेखक के लिए वे प्रेरणादायक रहीं। आखिर तभी तो 'द टाइम्स ऑफ इंडिया' पटना के संवाददता ने इस पुस्तक के दोनों खण्डों के लोकार्पणोपरांत लेखक के साक्षात्कार को भारत के प्रमुख नगरों से प्रकाशित अपने सभी संस्करणों में प्रमुखता से छापा, जिसके फलस्वरूप इनकी चर्चा न केवल नगर-नगर में होने लगी, वरन् संसद के केंद्रीय हाल में भी सांसदों के बीच चर्चा का यह एक अच्छा-खासा विषय बना। भारत के तत्कालीन रेल मंत्री श्री नीतीश कुमार ने तो अपनी प्रसन्नता का इजहार न केवल संसद के केंद्रीय हाल में, बल्कि पटना की कई बैठकों में मुक्त कंठ से किया। इन दोनों पुस्तकों की भरपूर चर्चा का एक कारण तो यह था कि जहाँ पटना के रवीन्द्र भवन के श्रोताओं एवं सुधीजनों की खचाखच भीड़ के बीच प्रथम एवं द्वितीय खण्डों का लोकार्पण क्रमशः रेलमंत्री नीतीश कुमार तथा तत्कालीन मुख्यमंत्री लालू प्रसाद के द्वारा संपन्न हुआ, वहीं नयी दिल्ली के लोदी रोड स्थित इलेक्ट्रॉनिक भवन के सभागार में दोनों खण्डों का क्रमशः तत्कालीन प्रखर सांसद एवं साहित्यकार शंकर दयाल सिंह एवं सुप्रसिद्ध साहित्यकार तथा पूर्व केंद्रीय मंत्री प्रो० सिद्धेश्वर प्रसाद के कर-कमलों द्वारा किया गया। इससे बढ़कर इन पुस्तकों के बहुचर्चित होने का एक और जबर्दस्त कारण यह था कि पुस्तक के प्रथम खंड में जहाँ अमर कथाशिल्पी फणीश्वर नाथ रेणु, ज्यामिति के विद्वान् प्रोफेसर डॉ० लालजी प्रसाद, सुपरिचित आलोचक नचिकेता और पटना विश्वविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष तथा राजद के महासचिव डॉ० रामवचन राय के नाम कुर्मी समाज के सदस्यों में पाकर लोगों को आश्चर्य हुआ, वहीं पुस्तक के द्वितीय खंड में राष्ट्रीय

लोकतांत्रिक काँग्रेस के अध्यक्ष श्री शरद पवार, पूर्व केंद्रीय मंत्री श्री माधव राव सिंधिया, श्रीमती वंसुधरा राजे, श्री के० विजय भास्कर रेड्डी, श्री यशवंत राव पाटिल, श्रीमती रेणुका चौधरी, श्री एस० जयपाल रेड्डी जैसी प्रमुख हस्तियों के भी कुर्मी सांसदों (दसवीं लोकसभा) की सूची में नाम देखकर लोगों को हैरत हुई। कारण कि इन हस्ताक्षरों को अब तक लोग किसी दूसरे समाज के सदस्य समझते रहे थे। इनकी प्रतिक्रिया प्राप्त होने पर इन्हें उसकी संपुष्टि में उनके समक्ष तथ्यों को प्रस्तुत करना पड़ा, तब जाकर कहीं वे संतुष्ट हुए।

बिहार के कुर्मी की यह निर्देशिका समाज के निर्माण की सबसे विस्तृत संदर्भ निर्देशिका है, जो संपर्कसूत्र के रूप में समाज के हर तबके के लोगों के पथ-प्रदर्शक का काम कर रही है, क्योंकि इसमें देश-विदेश के विभिन्न शहरों, यथा-दिल्ली, मुंबई, अहमदाबाद, कोलकाता, बैंगलोर, जम्मू-कश्मीर, हैदराबाद, शिमला, अरुणाचल, नागालैंड, चंडीगढ़, हरियाणा, राजस्थान, गौहाटी, भुवनेश्वर, राउरकेला, भोपाल, लखनऊ, वाराणसी, इलाहाबाद सहित आस्ट्रेलिया, अमेरिका, इंग्लैंड, कनाड़ा, जर्मनी जैसे प्रमुख शहरों एवं विदेशों में रहनेवाले बिहार के कुर्मी बंधुओं के नाम-पते प्रकाशित हैं। इसकी महत्ता को देखते हुए दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, पटना, अहमदाबाद, चैन्नई, बैंगलौर इत्यादि शहरों में रहनेवाले बिहार के कुर्मी बंधुओं से इस पुस्तक के नये एवं अद्यतन संस्करण की माँग बड़े जोर-शोर से लगातार आ रही है, किंतु सामाजिक एवं साहित्यिक कार्यों की अतिरिक्त सांगठनिक व्यस्तताओं के चलते सिद्धेश्वर जी उस ओर कदम नहीं बढ़ा पा रहे हैं। फिर भी इसके प्रकाशन में आर्थिक-सामाजिक मानसिकता से भरपूर नौजवान यदि सामने आते हैं, तो सिद्धेश्वर जी का दिशा-निर्देश आज भी मिल सकता है। बहरहाल इतना स्पष्ट है कि इस पुस्तक के प्रकाशन ने सिद्धेश्वर जी को आमतौर पर पूरे समाज और विशेषकर कुर्मी समाज में राष्ट्रीय स्तर पर एक ऊँचाई दी। इस पुस्तक के दोनों खंडों के प्रकाशन में सिमेंस कंपनी के तत्त्कालीन उपाध्यक्ष श्री वाई० पी० सिंह द्वारा तन-मन-धन से किये गये सहयोग के लिए सिद्धेश्वर जी आज भी कृतज्ञ हैं।

**'कल हमारा है' : अक्टूबर** 1994

अगर समाज ने इतिहास बनाने का गर्व कई बार संजोया है, तो उसे एक जिंदा समाज ही होना चाहिए और वह जिंदा समाज ही होता है, जो संकटों से जूझता है, दबाबों से टकराता है और लगातार परिवर्तन में रहता है। कुर्मी समाज ने अपने परिवर्तन के हर आयाम को भली-भाँति समझते हुए उसके कारण, परिणाम और ग्राफ को अपनी चिंता का विषय बनाया, जिसका नतीजा था 12 फरवरी 1994 को पटना के ऐतिहासिक गाँधी मैदान में आयोजित 'बिहार राज्य

कुर्मी चेतना महारैली'। इसके पूर्व पंद्रह वर्षों में समाज को बदलने की उत्कंठा अत्यंत सीमित रूप में दिखायी देती थी और उसमें विकास की तुलना में ठहराव, नींद और जड़ता का आलम ज्यादा रहा था, किंतु परिवर्तन के दौर में उस जड़ता को समाप्त करने की आवश्यकता से पूरे समाज के कर्मठ नौजवानों को इस महारैली का सहारा लेना पड़ा। इसके आयोजन के लिए गठित 51 सदस्यीय राज्यस्तरीय तैयारी समिति के अतिरिक्त अंतरराष्ट्रीय ख्याति के भूगोलवेत्ता डॉ० पी० दयाल की अध्यक्षता में एक उच्चस्तरीय स्वागत समिति का गठन किया गया, जिसके संचालन का दायित्व विधायक सतीश कुमार को दिया गया और उसके मुख्य प्रवक्ता इस पुस्तक के लेखक सिद्धेश्वर जी को बनाया गया।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह महारैली ऐतिहासिक और अभूतपूर्व रही, जिसमें पूरे भारत के महत्त्वपूर्ण राजनीतिज्ञों एवं सामाजिक कार्यकर्ताओं सहित लगभग 22 लाख लोगों ने भाग लिया। देश-विदेश के हिंदी-अँग्रेजी के प्राय: सभी प्रमुख समाचार पत्रों ने इसे मुक्तकंठ से सराहा और प्रमुखता से छापा। बी० बी० सी० ने महारैली में शामिल हुए लोगों की संख्या तथा विशेषता बताते हुए कहा था कि भारत के किसी कोने में उस समय तक न तो ऐसी रैली देखी गयी और न सुनी गयी। संख्या के बारे में उसने कहा कि 12 फरवरी 1994 को पटना के गाँधी मैदान में तथा उसके चारों ओर की सड़कों पर लगभग ग्यारह लाख लोग थे तथा शहर के विभिन्न सड़कों पर भी लगभग 11 लाख से कम लोग नहीं थे। दूसरे दिन नवभारत टाइम्स के तत्कालीन स्थानीय संपादक श्री अरुण रंजन को उनके *'शह'* शीर्षक के संपादकीय के लिए जब सिद्धेश्वर जी ने दूरभाष पर आभार व्यक्त किया तो संपादक ने सिद्धेश्वर जी से कहा--''सिद्धेश्वरजी, यदि पटना के नागरिकों को यह पता होता कि यह महारैली इतनी शालीन तथा अनुशासनप्रिय होगी तो सच मानिए, यहाँ की जनता महारैली में आये लोगों पर फूलों की वर्षा करती।'' ऐसी थी वह महारैली।

ऐसी अभूतपूर्व ऐतिहासिक महारैली के अवसर पर आयोजकों ने एक सुरुचिपूर्ण स्मारिका का प्रकाशन न कर एक ऐतिहासिक भूल की, जिसके बारे में यहाँ चर्चा करना बेमतलब होगा, किंतु सिद्धेश्वर जी को स्मारिका न प्रकाशित करने की जो कसक हुई, उसे *'कल हमारा है'* पुस्तक का प्रकाशन कर इन्होंने पूरा किया। सोचा कि इस महारैली ने जब एक नया इतिहास रचा है, तो उसका संदेश और संकल्प निश्चित रूप से आनेवाले दिनों में जनमानस को आंदोलित करेगा, बशर्ते कि उससे उपजी ऊर्जा का सही इस्तेमाल किया जाए, तो क्यों नहीं इसकी यादगार लोगों में ताजा रखने के लिए इसके सारे कार्यकलापों को शब्दबद्ध कर एक पुस्तक का रूप दिया जाए। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस महारैली के बाद कुर्मी समाज द्वारा सत्ता की चुनौती को स्वीकार किया गया, जिसके परिणामस्वरूप श्री

नीतीश कुमार ने अपने मित्र और जे० पी० आंदोलन के एक समय के सहयोगी श्री लालू प्रसाद से अलग होकर एक अलग राजनीतिक दल बनाया और फिर उसके बाद गंगा में कितना पानी बहा, उससे आप सभी पूर्णत: अवगत हैं। इसलिए उस संबंध में और कुछ अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। बहरहाल इतना तो जरूर कहा जाएगा कि यह समाज कभी भी निरंकुश सत्ता के विरुद्ध तनकर खड़ा रहता है और उसके काले कारनामों का पर्दाफाश करने में यह कोई कोर-कसर नहीं उठा रखेगा। इस पुस्तक में समानधर्मियों से तालमेल बैठाकर एक नये बिहार के निर्माण की बात कही गयी है और भीतर की गुलामी पर कड़ी नजर रखने की सलाह दी गयी है। इसके साथ ही समाज को अपनी कमजोरियों पर विजय पाने के सुझाव भी दिये गये हैं।

**'यादें'** : 1997

साहित्य सिर्फ साहित्य नहीं होता, वह सामाजिक चेतना का दुतरफा रोजनामचा भी होता है। लंबे वक्त तक सुगबुगाती परंपराएँ और प्रवृत्तियाँ अनेक घटनाओं और रचनाओं के रूप में प्रकट होती हैं, जिसे साहित्य में युग परिवर्तन कहा जाता है। सिद्धेश्वर जी के जीवन में या यों कहिए कि राष्ट्रीय विचार मंच के इतिहास में एक ऐसी ही घटना आयी, जिसकी यादें आज भी इनके मानस तथा मंच के सदस्यों के बीच उभर आती हैं। स्मृतियाँ यों तो घुलनशील होती हैं, पर आज उनपर धूल की परतें नहीं, सिर्फ अजास के गीले कणों से सब कुछ बिल्कुल स्पष्ट होकर उभर रहे हैं।

कविवर डॉ० भोला प्र० सिंह 'तोमर' का अचानक साहित्यकारों और अभियंताओं के बीच से गुजर जाना सिद्धेश्वर जी के लिए एक बड़ी बात मानी जाती है, क्योंकि तोमर जी के साथ इनके बीते सुहाने समय तथा इनके साथ जुड़ी जीवंत स्मृतियाँ भाव-विह्वल और गला अवरुद्ध कर देने के लिए आज भी काफी हैं, जबान लड़खड़ाने के लिए काफी हैं, शब्द बड़बड़ाने के लिए काफी हैं। ये दोनों एक दूसरे के काफी करीब थे। मित्रों की तरह एक-दूसरे को कितनी आसानी से पढ़ सकते थे। जब-जब ये और इनके साहित्यकार मित्र इनके साथ रहते थे, हवाएँ इनके कानों में कुछ बुनती रहती थीं। हवाओं का यही बुनना इनके मित्रों को यह सोचने के लिए मजबूर किया कि तोमर जी की स्मृति को बनाए रखने के लिए सहकारिता के आधार पर *'यादें'* शीर्षक से एक काव्य-संकलन प्रकाशित किया जाए, जिसमें कवि तोमर की अप्रकाशित एवं महत्त्वपूर्ण कविताओं के साथ-साथ सहयोगियों की कुछ कविताओं को संजोया जाए। राष्ट्रीय विचार मंच की ओर से प्रकाश्य इस संकलन के संपादक का दायित्व सिद्धेश्वर जी के सबल कंधों पर दिया गया।

सिद्धेश्वर जी ने *'यादें'* के संपादन की जिम्मेदारी न केवल खुशी-खुशी ली, बल्कि इसके अतिरिक्त कवि तोमर के पारिवारिक पेंशन आदि का भुगतान राज्य सरकार से संबंधित कागजात महालेखाकार कार्यालय में प्राप्त होने के मात्र एक सप्ताह के अंदर भुगतान प्राधिकारपत्र निर्गत कराने का आश्वासन दिया। इसी प्रकार उनके बड़े सुपुत्र को नौकरी दिलाकर पटना में ही पदस्थापन कराने का जिम्मा भी अपने ऊपर लिया। आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि सिद्धेश्वर जी ने अपने तीनों वादे पूरे किये। इनके संपादकत्व में प्रकाशित *'यादें'* काव्य 'संकलन का विधिवत् लोकार्पण स्व० तोमर की प्रथमपुण्य तिथि 27 अप्रैल 1997 को संपन्न हुआ और पारिवारिक पेंशन का प्राधिकारपत्र भी इन्होंने समय पर निर्गत कराया। साथ ही उनके सुपुत्र की नियुक्ति लोक निर्माण विभाग में होने के पश्चात् पटना में उनका पदस्थापन भी कराया गया। इस संदर्भ में इस बात का उल्लेख करना यथोचित होगा कि मंच के अध्यक्ष तथा भारतीय प्राशासनिक सेवा के वरिष्ठ अधिकारी श्री जिया लाल आर्य जो उन दिनों लोक निर्माण विभाग के आयुक्त-सह-सचिव थे, का सहयोग सराहनीय रहा। खासकर श्री संजय की नियुक्ति और उसके पटना में पदस्थापन का पूरा श्रेय उन्हीं को जाता है।

कविवर तोमर ने जीवनसंघर्ष और रचनासंघर्ष के बीच अपना जीवन जीया। उनके वर्जनामुक्त व्यक्तित्व को सह पाना बहुतों के लिए कठिन था, नैतिकता और मानवीयता के उनके अपने मापदण्ड थे। सिद्धेश्वर जी ने सुप्रसिद्ध समीक्षक डॉ० कुमार विमल की निम्न पंक्तियों को *'यादें'* के संपादकीय में उद्धृत कर कवि तोमर की स्मृति को नमन किया-

***''तम में जीकर मीत***
***ज्योति के गीत लिखें हैं मैंने***
***विष पीकर खुद में गाये हैं***
***गीत अमृत के मैंने।''***

कवि तोमर की यादगार को उनके मित्रों के बीच ताजा रखने हेतु प्रकाशित इस *'यादें'* संकलन में संपादक के अलावे कई रचनाकारों का अपेक्षित सहयोग मिला और जिनकी रचनाएँ इसमें छपीं उनमें सर्वश्री जिया लाल आर्य, नृपेन्द्रनाथ गुप्त, डॉ० शशि सिंह, हृषिकेश पाठक, रामसंजीवन शर्मा, विपिन विप्लवी, डॉ० शिवनारायण, डॉ० सूर्यदेव सिंह, सरिता त्यागी, राजकुमार 'प्रेमी' चन्द्रप्रकाश, महेन्द्र प्र० सिन्हा, हरीन्द्र कुमार विद्यार्थी, मनोज कुमार, प्रभात कुमार धवन, राकेश प्रियदर्शी, अरुण कुमार गौतम, प्रभुनारायण दत्त ब्रह्मचारी, डॉ० गोपालशरण सिंह के नाम उल्लेखनीय हैं। स्व० भोला प्र० सिंह 'तोमर' की अप्रकाशित रचनाओं का भी इस पुस्तक में समावेश किया गया है।

**'पतझर की सांझ' -हाइकु काव्य संग्रह, वर्ष** 1995

जिस प्रकार मानव, उसका स्वभाव, उसकी स्थिति तथा समस्याएँ दिन प्रतिदिन बदलती जाती हैं उसी प्रकार साहित्य में भी परिवर्तन आते रहते हैं। उसमें नये-नये विचार, नये विधान, नयी विधाओं तथा नयी समस्याओं का समावेश होता रहता है। विज्ञान में कंप्यूटर की तरह साहित्य के क्षेत्र में 'हाइकु' भी जापान की देन है। दरअसल आज के इस आपाधापी के युग में आम आदमी जीवन के संघर्षों, जटिलताओं एवं अनेक समस्याओं के बीच साहित्य के अपने पठन-पाठन का वक्त रोटी, कपड़ा और मकान के निदान में लगाने को विवश है। इस भागमभाग की स्थिति में उसका ध्यान अब बड़ी-बड़ी कहानियों, उपन्यासों तथा लंबी कविताओं की बजाय लघु कथाओं तथा छोटी कविताओं की ओर उन्मुख होना स्वाभाविक है।

'हाइकु' एक जापानी शब्द है और कविता की एक विधा है, जिसका अर्थ होता है कम-से-कम शब्दों में अपने भावों को व्यक्त करना। हाइकु विधा की कविता में मात्र सत्रह वर्ण होते हैं और वह भी केवल तीन पंक्तियों के पाँच-सात-पाँच के क्रम में। सिद्धेश्वर जी को हाइकु विधा में कविता लिखने की प्रेरणा मिली उड़ीसा से प्रकाशित हाइकु की *'गुंजन'* पत्रिका के संपादक डॉ० लक्ष्मण प्रसाद नायक और अहमदाबाद से प्रकाशित *'हाइकु भारती'* के संपादक डॉ० भगवतशरण अग्रवाल से, जिनके सान्निध्य में आने के बाद अपनी-अपनी पत्रिकाओं में इनकी हाइकु कविताएँ छापकर इनका मनोबल बढ़ाया। फिर उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ से प्रकाशित पत्रिका *'प्रताप शोभा'* के संपादक प्रदीप नारायण सिंह ने अपनी पत्रिका में इनकी हाइकु रचनाओं को प्रकाशित कर इनको प्रोत्साहित किया।

फिर क्या था, इन सुपरिचित रचनाकारों की प्रेरणा पाकर जब सिद्धेश्वर जी ने लगभग एक हजार कविताओं की रचना की तब उसे लेकर ये नयी दिल्ली गये जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के जापानी भाषा के तत्कालीन प्राध्यापक डॉ० सत्यभूषण वर्मा के पास, जिन्होंने इनकी सारी कविताओं का आद्योपांत अवलोकन करने के उपरांत अपने मार्गदर्शन एवं दिशा-निर्देश के साथ-साथ प्रेरणा के दो शब्द लिखकर दिये जिनका सार यों है-

''सिद्धेश्वर जी के हाइकु मुझे पढ़ने को मिले। इनके विषयों की विविधता है और आज के समाज के विविध प्रश्नों को हाइकु विधा में इन्होंने उतारा है। साहित्य, संस्कृति, शृंगार, राष्ट्रचेतना, पर्यावरण को जहाँ इन्होंने अपना विषय बनाया है, वहीं वेदना पर भी बड़े मार्मिक ढंग से अपने भावों को इन्होंने अभिव्यक्त किया है-

व्यथित मन  क्यों फेंक दिया  नहीं जलेंगे

कैसे सुनाएँ आज दर्द के सागर में चिराग कोठियों के
गीत नयन मुझे आपने अनवरत

साथ ही प्रकृति-चित्रों का समावेश भी सिद्धेश्वर जी ने अपनी हाइकु कविताओं में बखूबी किया है। कवि ने पूरी ईमानदारी के साथ समसामयिक स्थितियों को निरूपित किया है। हाइकु के प्रति सिद्धेश्वर जी की रुचि प्रशंसनीय है। विश्वास है इस कृति का हिंदी जगत् में सर्वत्र स्वागत होगा।''

यही है इनका हाइकु काव्यसंग्रह *'पतझर की साँझ'*, जिस पर हिंदी के सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ० नंदकिशोर नवल तथा भारत के तत्कालीन अपर उप-नियंत्रक-महालेखापरीक्षक श्री गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव ने भी क्रमशः अभिमत और भूमिका लिखकर सिद्धेश्वर जी को कृतार्थ किया। *'पतझर की साँझ'* में निश्चित रूप से इनकी सिद्धहस्ता को कोई नकार नहीं सकता। ये एक ओर प्रकृति के विभिन्न रूपों को चित्रित करते हैं, तो दूसरी ओर चेतना की ओर बढ़ने का रास्ता भी बनाते हैं। भावुकता के क्षणों का आनंद किस प्रकार लिया जाता है, आप देखें इनकी पंक्तियों को--

लहर पर फटी चादर भूल गये हैं
मचलती चाँदनी जिस्म बेकसूर है सारे सूत्र नेता ही
मछली-जैसी मजबूरी में नैतिकता के

सच तो यह है कि इनकी यह कृति *'पतझर की साँझ'* बड़ी ही रोचक और विविध विषयों को अभिव्यक्त करनेवाली है। आज के भौतिकतावादी युग में जब पूरा मानवसमाज अपने रास्ते को नहीं पहचानता, ऐसे समय में कर्म के प्रति विनम्र आग्रह *'पतझर की सांझ'* जैसी कृति ही दे सकती है। कवि का सौंदर्यबोध इनकी हाइकु कविताओं में मलय समीर की भाँति बहता दृष्टिगोचर होता है। देखें-

ये मदमस्त चलें सैर को रातें मधुर
कहाँ से लायी तूने सुदूर आकाश की मदमाते नयन
मेंहदी हँसी पंख लेकर क्यों आप मौन ?

सामाजिक सरोकारों से जुड़े रहने के कारण अनुभवों ने इनमें ऐसी क्षमता प्रदान की, जिससे इन्होंने सामाजिक परिवेश की मानवीय पीड़ा को बखूबी समझा, परखा और अपने लेखन में अभिव्यक्त किया। इनके शब्द और कर्म एक-दूसरे से अनुप्राणित होते हैं। इनकी निम्न पंक्तियाँ ध्यातव्य हैं--

जरूरी होता मानव एक चौराहे पर
होने के लिए कवि कविता का पहला खड़ा है राष्ट्र आज
आदमी होना प्रतिमान है अनिर्णय के

*'पतझर की सांझ'* संकलन की सभी हाइकु कविताएँ अलग शीर्षकों में

विभक्त हैं, जो अपनी सार्थकता सिद्ध करती हैं। देश व समाज के प्रायः प्रमुख मुद्दों पर अपनी कलम चलाकर कवि ने अपने लेखकीय दायित्व का निर्वाह पूरी निष्ठा और ईमानदारी से किया है। आखिर तभी तो इनकी कविताएँ पाठकों के हृदय में अपना स्थान बनाती हैं--

चेतना भरो आखिर आप परिवर्तन
भर सको अगर भी कब तक सहेंगे के लिए तटस्थता
तो जनता में चुप्पी तोड़िए छोड़नी होगी

**'समता के सपने' : 19 अक्टूबर 2000**

19 अक्टूबर 2000 को बिहार पुनर्निमाण रैली के अवसर पर *'समता के सपने'* शीर्षक से सिद्धेश्वर जी की पुस्तक प्रकाशित हुई। आजादी के बाद यह उम्मीद की गयी थी कि समाज में बदलाव आएगा। हर व्यक्ति को मतदान का अधिकार मिला, तो लगा कि पासा पलटेगा और समाज के हर व्यक्ति को कम-से-कम दो जून की रोटी के लिए तो उसे मुहताज नहीं होना पड़ेगा। पर आजादी की आधी सदी से भी अधिक बीत जाने के बाद वही ढाक के तीन पात। समाज की अधिसंख्यक आबादी आज भी अँधेरे में है और उसे अँधेरे से निकालने का प्रयास नहीं हो पा रहा है।

झारखण्ड राज्य के गठन के परिणामस्वरूप शेष बिहार के समक्ष जो चुनौतियाँ खड़ी हुईं, उनका सामना करने के लिए तो रोना छोड़कर सचाई को स्वीकार करते हुए अपने सीमित संसाधनों के बल पर ही बिहार के पुनर्निमाण की बात उठी। सिद्धेश्वर जी ने इसी भाव से प्रेरित होकर जनता को यह बताने का निर्णय लिया कि बिहार के विकास के लिए उसकी जनता को ही कमर कसनी है और कृषि एवं कृषि आधारित उद्योगों को बढ़ावा देना है, ताकि ग्रामीण एवं शहरी गरीब तबकों के आर्थिक, सामाजिक उन्नयन की सही दिशा की तलाश की जा सके। इन्हीं बिंदुओं को ध्यान में रखते हुए श्री मिथिलेश कुमार सिन्हा के सहयोग से सिद्धेश्वर जी के संपादकत्व में सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन, दिल्ली के द्वारा *'समता के सपने'* का प्रकाशन किया गया।

**'आत्ममंथन'-समाज का दशवर्षीय लेखा-जोखा, फरवरी 2004**

जैसा कि हमने पूर्व में कहा है सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व में सामाजिक एवं राजनीतिक परिदृश्य की एक सार्थक समझ भी कूट-कूट कर भरी है, उसका एक उदाहरण तो यह है कि जब समाज और राज्य की जर्जर और बदहाल स्थिति पर इनकी नजर गयी तो इन्होंने सन् 1994 ई० से 2004 तक की अवधि का आकलन किया और 12 फरवरी 2004 में अपने अनुभवों को एक छोटी-सी

पुस्तिका *'आत्ममंथन'* में संजोया। राज्य की दिन-व-दिन बिगड़ती स्थिति और समाज में बढ़ती विद्रूपताओं, विसंगतियों, कुरीतियों, अंध-विश्वासों एवं पाखण्डों की प्रवृतियों को अपनी चिंता का विषय बनाते हुए इन्होंने समाज एवं राज्य की जनता को अपनी चुप्पी तोड़ने और सामाजिक परिवर्तन की दिशा में प्रयास करने का आह्वान किया। यही नहीं, पिछले 12 फरवरी 2004 को पटना के एक सामाजिक परिवर्तन जलसे में बिहार के सामाजिक कार्यकर्ताओं को आमंत्रित कर आत्ममंथन किया, क्योंकि इनका मानना है कि किसी भी समाज को बेहतर और स्वस्थ बनाने के लिए यह आवश्यक है कि एक अंतराल के बाद या समय-समय पर अपनी उपलब्धियों और कमजोरियों पर नजर दौड़ाते रहा जाए और आत्मविश्लेषण एवं आत्मनिरीक्षण कर पिछली गलतियों से सीख लेकर आगे बढ़ा जाए। ये यह भी मानते हैं कि किसी भी स्वस्थ समाज और सबल राष्ट्र के निर्माण में सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना आवश्यक है। सिर्फ विलाप करने, एक दूसरे को कोसने, पश्चाताप करने अथवा हाथ-पर-हाथ रखकर बैठे रहने से किसी समस्या का समाधान कभी नहीं होता। समाज अंतत: वही आगे बढ़ता है जिसमें अपने अतीत के नीर-क्षीर विवेक का स्वभाव हो और बुरे पहलुओं से संघर्षरत रहने की इच्छाशक्ति हो।

इस छोटी-सी पुस्तिका *'आत्ममंथन'* में इन्होंने यह बताने का प्रयास किया कि किसी भी समाज की पहचान उसके सदस्यों से ही होती है। जिस समाज के व्यक्ति जितने कर्त्तव्यनिष्ठ, सदाचारी, ईमानदार और अच्छी राह के राही होंगे, वह समाज उतनी ही तरक्की करेगा। इन्होंने यह चिंता जाहिर की है कि समाज में दिखावे की संस्कृति जोर-शोर से पनप रही है, अपनी सभ्यता एवं संस्कृति और संस्कार को लोग भुलाने का प्रयास कर रहे हैं। दहेज के दानव ने गरीब एवं मध्यम वर्ग के लोगों में कुहराम मचा रखा है। सारे संस्कार पैसों पर ही जाकर समाप्त हो जाते हैं और आज के आधुनिक युग में संबंधों की मर्यादा भी खतरे में पड़ती नजर आ रही है। इसके परिप्रेक्ष्य में इन्होंने समाज की संस्कृति, सभ्यता, चरित्र, त्याग और सामाजिक प्रतिबद्धता के लिए स्वैच्छिक संगठनों एवं उनसे जुड़े सामाजिक कार्यकर्ताओं को अपने सामाजिक दायित्व को समझने और उसकी जिम्मेदारी लेने का अनुरोध किया है और इसकी प्रेरणा अपने गौरवशाली अतीत से लेने की बात कही है।

विगत छह फरवरी 2004 को लोकसभा भंग किये जाने की घोषणा के बाद दस्तक देते लोकसभा के चुनाव और उसके ठीक एक साल बाद विधानसभा के चुनावों के मद्देनजर मतदाताओं से सिद्धेश्वर जी ने इस पुस्तिका के माध्यम से अनुरोध किया है कि वे वैसे उम्मीदवारों को अपना प्रतिनिधि चुनें, जो समाजवादी सोच के सुलझे एवं विचारवान् लोग हों, समाज के हाशिये पर

पड़े लोगों के हिमायती हों, उपेक्षित लोगों के रहनुमा हों, जिनमें सामाजिक प्रतिबद्धता हो, राष्ट्रीयता की भावना हो और जो गरीब लोगों के सुख-दु:ख के साथी हों। यही नहीं, चुनाव के वक्त हर हाल में सामाजिक समरसता और सांप्रदायिक सद्भाव बनाये रखने की इन्होंने बात की है। इसके अतिरिक्त समाज के सभी मतदाताओं से एक-एक कर चुनाव में भाग लेने तथा मतदान में शरीक होने का इन्होंने आग्रह किया है। जनप्रतिनिधियों के चयन में जाति, धर्म, धन, भाषा और क्षेत्र का सहारा कदापि नहीं लेने की बात कहते हुए अपराधियों, समाजविरोधी तत्त्वों को हर कीमत पर नजरअंदाज करने की बात कही है।

अंत में इन्होंने लोकतंत्र में चुनाव को एक पावन महान् पर्व बताते हुए मतदाताओं को चौकस और सतर्क रहने की बात की है और अपराधियों के बुलेट का जवाब बैलेट से देने का आहवान किया है। इन्होंने इस पुस्तिका में भी विचारों को कर्मों की आधारशिला मानते हुए सकारात्मक विचारों की पहल करने की अपील की है, जो सचमुच सराहनीय है।

**'सुर नही सुरीले'-सेन्र्यू काव्यसंग्रह- वर्ष** 2004

*'पतझर की साँझ'* के बाद सिद्धेश्वर जी के काव्यसंग्रह में 'सुर नहीं सुरीले' दूसरा पड़ाव है, जिसमें जीवन एवं मानव संबंधों की अनेक परतें खोली गयी हैं। जीवन की बहुरंगी परिस्थितियों तथा बनते-बिगड़ते सामाजिक मूल्यों एवं रिश्तों को उजागर करती चुटीली-चुभती सेन्र्यू कविताएँ हैं। इनके पठन से पाठकों को ऐसा अवश्य लगेगा कि वह अपने आस-पास छितराये सामाजिक जीवन की तीव्रगामी स्थितियों-घटनाक्रमों का प्रत्यक्षदर्शी है।

इस संग्रह की कविताएँ पूर्णत: वर्तमान पर केंद्रीत हैं। आधुनिकता का बोध और उसकी यथार्थ अभिव्यक्ति का आग्रह इनकी कविताओं का केंद्रीय तत्त्व है। देखें इन कविताओं को आप--

| | | |
|---|---|---|
| मददगार | हो गये आज | खाता आदमी |
| नहीं आज आदमी | जन तमाम यहाँ | अपने आपको ही |
| आदमियों का | बहुरुपिये | भेड़िया बन |

दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी प्राध्यापक तथा सुप्रसिद्ध गीतकार डॉ० राजेन्द्र गौतम ने इस संग्रह को सच्ची चोट करनेवाला संग्रह करार दिया है। वे सिद्धेश्वर जी की *'तेज चाकू से / धर्म का उत्सव हो / कैसा जमाना'* पंक्तियों को उद्धृत करते हुए कहते हैं कि इन्होंने इन पंक्तियों के माध्यम से धर्म के पाखण्ड को भी उधेड़ा है।

*'हाइकु भारती'* के संपादक तथा हाइकु के सशक्त रचनाकार डॉ० भगवतशरण अग्रवाल ने अपनी भूमिका में कहा है कि सिद्धेश्वर जी को आम

आदमी से उसकी सारी विडंबनाओं, मजबूरियों, अभावों के साथ प्यार है। मौखिक नहीं, हार्दिक सहानुभूति है। ये स्वयं अपने को उसी भीड़ का एक अंश मानकर सामने खड़ी समस्याओं से इसलिए जूझ रहे हैं कि ये दूसरों की समस्याएँ सुलझा सकें। इसीलिए इनके हार्दिक उद्‌गार भी हैं-

रोशनी करो नहीं होऊँगा लाखों हैं यहाँ
जिसकी जिंदगी में अपनों से दूर पर मिलता कहाँ
अँधेरा दिखे हूँ भीड़ का जो आदमी जहाँ

सागर (म० प्र०) के पद्‌मश्री डॉ० लक्ष्मी नारायण दूबे ने अपनी शुभाशंसा में इस संग्रह के शीर्षक *'सुर नहीं सुरीले'* की सार्थकता को बताते हुए कहा है कि यह शीर्षक वर्तमान विसंगतियों, विडंबनाओं तथा प्रवंचनाओं को जहाँ उद्‌घाटित करता है, वहीं कवि सिद्धेश्वर ने अपनी अवधारणा को सुस्पष्ट एवं सुबोध इन शब्दों में स्वयं किया है--सुर तो सुरीले तब होंगे, जब हम सब मिलकर अपने समाज तथा देश के लिए सोचेंगे और करेंगे। उन्होंने लोकतंत्र, नारी, बुद्धिजीवी तथा राजनीति के संबंध में सिद्धेश्वर जी की सोच को अत्यंत प्रभावी तथा कविता की भाषा को जनगम्य बताया है।

### 'जागरण के स्वर'-सेन्‌र्यू काव्यसंग्रह- वर्ष 2004

वर्ष 2002 के 16 एवं 17 नवंबर को नयी दिल्ली में मंच तथा *'विचार दृष्टि'* द्वारा वैचारिक क्रांति के नये आयाम को केंद्र में रखकर जब द्विदिवसीय राष्ट्रीय अधिवेशन होने जा रहा था, तो उसी क्रम में अहिंसा आंदोलन से सक्रिय रूप से जुड़े मुनि संतों तथा डॉ० धर्मेंद्रनाथ' अमन-सरीखे मनीषियों का सान्निध्य सिद्धेश्वर जी को मिला और ये अहिसा आंदोलन से अत्यंत प्रभावित होकर भगवान् महावीर तथा बापू के आदर्शों को, उनके संदेशों एवं भावों को अपनी *'जागरण के स्वर'* शीर्षक पुस्तक में संजोने का संकल्प लिया, कारण कि आज के जनतांत्रिक युग में एक सजग नागरिक होने के नाते तेजी से बदलते राजनीतिक एवं सामाजिक परिवेश से सिद्धेश्वर जी सर्वथा तटस्थ होकर घटनाओं का मूकदर्शक बने नहीं रह सकते थे।

इस संदर्भ में मैं कहना चाहूँगा कि अपने पिछले सेन्‌र्यू काव्य-संग्रह *'सुर नहीं सुरीले'* की तरह इस संग्रह में भी इन्होंने मानव जीवन की विद्रूपताओं को प्रमुखता दी है और व्यंग्यात्मक सेन्‌र्यू शैली में ही मनुष्य की कुरूप यथार्थताओं एवं कमजोरियों को प्रस्तुत करने का इन्होंने प्रयास किया है। इस प्रकार 'जागरण के स्वर' में जीवनमात्र के प्रति करुणा और हितैषियों से ओत-प्रोत प्रबुद्धचेता की भावलहरी को सिद्धेश्वर जी स्वर दे सके हैं। जीवन और जगत् के बीच तादात्म्य स्थापित करनेवाली इनकी मनोदशा में काव्यकृति *'जागरण के स्वर'* इनके अंतरंग

से प्रस्फुटित हुई। इस काव्यसंकलन की पंक्तियों से पता चलता है कि इनकी साधना कितनी गहरी है, जिसको सदैव अपने अध्ययन और मनन का संबल बनाकर इन्होंने एक ऐसे विचार प्रस्तुत किये हैं, जो मानवमात्र के लिए अवगाहन, आकलन और अनुसरण के आधार बन गये हैं। वास्तव में इनकी साहित्यसाधना का ही यह अमूल्य फल है कि इनके स्वर ने इनकी लेखनी में काव्यात्मक अभिव्यंजना का रूप धारण कर *'जागरण के स्वर'* जैसी कृति को जन्म दिया है। इन्होंने अपनी इस कृति के माध्यम से समय की सभी सीमाओं को पार कर लिया है। देखें इनकी कुछ पंक्तियों को--

रोक न सका बाँध न सका आया आदमी
समय को भी कोई समय को भी कोई धर्मस्थलों से चौक
हम ही रूके हम ही बँधे रोटी के लिए
अहिंसा सदा लेकर खड़ा तीर्थंकर ने
आत्मचेतना की ही तलवार आदमी लोकचेतना को भी
स्वीकृत होती हर नगर नयी दिशा दी

इस संग्रह को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि कवि की कविताएँ इनके अध्ययन की परिणति हैं। ये कविता में शिल्प की अपेक्षा संदेश को अधिक महत्त्व देते हैं। इनकी रचनाएँ मर्मस्पर्शी और दर्शन से भरी हुई हैं। उदाहरण के तौर पर देखें इन पंक्तियों को--

मिल जाने को नहीं दिखता उपासना की
तालाब के पानी के दु:ख का साथी कोई उलझन नहीं है
समंदर में सुख के सभी महावीर में

डा० देवेन्द्र आर्य तथा डा० धर्मेन्द्र नाथ 'अमन' ने क्रमश: इसकी भूमिका तथा अभिमत तथा शुभशंसाएँ लिखकर इसमें चार चाँद लगाये हैं।

**सिद्धेश्वर की काव्यचेतना:**

जैसा कि हम सब जानते हैं कि व्यक्ति समाज का एक अखंड अंग है, अतएव उसकी व्यक्तिगत स्थितियाँ, अनुभूतियाँ, चेतन-अवचेतन की विविध आकृतियाँ सब समाज के विभिन्न आयामों की ही देन हैं। व्यक्ति स्वयं शुद्ध आत्मा है, उसका मन अपने परिवेशों की ही देन है। अत: व्यक्ति की चेतना का भी सामाजिक सदंर्भों से कटकर अपना स्वतंत्र कोई अर्थ नहीं है।

सिद्धेश्वर जी साहित्यकार, पत्रकार, राजनीतिक कार्यकर्ता होने के साथ-साथ एक सुपरिचित समाजशास्त्री भी हैं, जिनकी रचनाओं में शोषित, पीड़ित एवं गरीब वर्ग के प्रति सहानुभूति, मध्यम वर्ग के प्रबुद्धजन के प्रति खीझ, ग्लानि तथा श्रमिक वर्ग के प्रति सहयोग, संगठन तथा जनशक्ति की चर्चा में सामाजिक

बदलाव, वर्गसंघर्ष रेखांकित मिलता है। वस्तुत: इनकी रचना में जो सांस्कृतिक मूल्य परिलक्षित होते हैं, वे समाज की ही देन हैं। समाजशास्त्री होने के नाते रचनाकार सिद्धेश्वर जी और भी अधिक समाज के प्रति सचेत हैं। आखिर अपने *'जागरण के स्वर'* सेन्र्यू काव्यसंग्रह में ये कहते हैं-

बड़ी तेजी से आवश्यक है होता नहीं है
समाज में विकृत्ति समान अधिकार संयम भी फलित
पनप रही और सम्मान समता बिना

सामाजिक चेतना को स्वर प्रदान करनेवाले कवि सिद्धेश्वर अपनी दृष्टि को व्यापक बनाकर ही व्यक्ति के अंत: बाह्य स्वरूपों को उद्घाटित करते हैं। ऐसा भी नहीं कि ये व्यक्ति की विशेषताओं और बंधनों की उपेक्षा करते हों। देखें इनकी कुछ पंक्तियों को--

नैतिकता का कई स्तर पे भाव विभोर
मूल्य है सर्वोपरि होती है विकसित अब होता न कोई
समाज में भी व्यक्तिचेतना भावविहिन

व्यक्तिमन चेतना का मूल आधार है और चेतना उसका प्रमुख गुण है। इसी की वजह से चेतना को व्यक्ति का सापेक्ष माना जाता है। वैयक्तिक चेतना से सामाजिक और राजनीतिक चेतना का विकास होता है। सच तो यह है कि चेतना में बोध, भाव एवं कर्म का समन्वय रहता है। बौद्धिक भावात्मक एवं दैहिक सक्रियता को कसौटी मानकर ही चेतना का निर्धारण किया जाता है। सिद्धेश्वर जी की मूल-चेतना इनके निजी अस्तित्व रखते हुए व्यापक पक्ष आत्मसात् किये हुये है, कारण कि ये सामाजिक हैं। मार्क्स ने स्पष्ट शब्दों में कहा है- *'चेतना मानव की सत्ता की प्रतिष्ठा नहीं करती, बल्कि मानव की सामाजिक सत्ता ही मानवीय चेतना का निर्माण करती है। अत: चेतना समाजसापेक्ष है।''* उनके अनुसार काव्यस्रष्टा कोई द्रष्टा नहीं, बल्कि दैहिक जीवन के संघर्षों में संलग्न आर्थिक परिस्थितियों से पूर्णत: प्रभावित और उनसे जूझता हुआ यथार्थदर्शी मानव है।

कवि युग चेतना की अवहेलना नहीं करता। उसकी सर्जना कमोवेश युग की चेतना से अवश्य अनुप्राणित होती है। सिद्धेश्वर जी की कविताओं में खासकर सेन्र्यु कविताओं में युगीन चेतना के स्वर सुनायी पड़ते हैं, इसकी प्रखर अनुगूँज स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है, क्योंकि ये इतना संवेदनशील हैं कि अपने आसपास और दूर के घटनाक्रम से इनकी कविता प्रभावित है और वह अपेक्षाकृत अधिक समाजोन्मुख है। युगीन परिवेश के प्रति इनकी जागरूकता, समसामयिक समस्याओं के प्रति दृष्टि, सामाजिकता का लगाव, बदलते हुए मानवीय संबंध इत्यादि इनकी प्राय: सभी रचनाओं में समाहित हैं। इनकी कविताएँ न तो किसी

'वाद' के विवाद में फँसती दिखायी देती हैं और न ही किसी राजनीतिक दल की विचारधारा के अनुरूप ढलती दिखती हैं, बल्कि वे एक स्वतंत्र दिशा तलाशती हैं। किंतु, स्वतंत्र अस्तित्व रखते हुए भी इनको कवि किसी-न-किसी रूप में एक या दूसरे वर्ग के निकट अपने को खड़ा पाते हैं। देखें इनकी कुछ पंक्तियों को--

| | | |
|---|---|---|
| सूत्रधार है | पूजे पत्थर | आज आदमी |
| सामाजिक क्रांति की | बन रहा आदमी | अहं के नशेचूर |
| अहिंसा यात्रा | पत्थर दिल | कठोर क्रूर |

कवि के काव्य में युगचेतना का आयाम विस्तृत है। इनकी कविताओं में समाज की विसंगति, सांमतों का आतंक, शोषित, पीड़ित, दलित समाज की विकृति, भोगवाद, स्वार्थवाद सभी का चित्रण हुआ है। यही नहीं, आधुनिक जीवन की वेषभूषा, रहन-सहन, हाव-भाव तथा सामाजिक रीति-नीति से लेकर साहित्यिक भाव-भूमि पर दो-टूक चित्रण देखने को मिलता है इनके काव्य में। कविता का भाव यथार्थवादी है, चूंकि ये आज के युग की वास्तविकताओं से उद्‌भूत हैं। कवि अपने चारों तरफ के वातावरण में जो कुछ देखते हैं, उसे अनुभव करते हैं। व्यक्ति का हास-विलास, जय-पराजय, सर्जन और संघर्ष इत्यादि समस्त क्रिया-व्यापारों की मानव-मूर्ति को कवि चित्रित करते हैं। जीवन की समस्याओं से कतराकर पलायन नहीं करते, बल्कि सारी विद्रूपताओं और विडंबनाओं के बीच रहकर उन्हें भोगते हैं।

जनसाधारण को ही अपना पाठक और श्रोता माननेवाले सिद्धेश्वर जी ने उन्हीं की भाषा में काव्यरचना की और उसे इस प्रकार कलात्मकता के साथ जापानी हाइकु एवं सेन्र्यू विधा की तीन-तीन पंक्तियों में संजोया कि वह सामाजिकता, राष्ट्रीयता और साहित्यिकता के मणिकांचन संयोग का अप्रतिम उदाहरण बन गयी। द्रष्टव्य हैं इनकी कुछ पंक्तियाँ-

| | | |
|---|---|---|
| चेतना भरो | मत व जाति | है छिन्न-भिन्न |
| भर सको अगर | सभी से ऊपर है | सामाजिक ताना ही |
| तो जनता में | अपना राष्ट्र | जातिवाद से |

| | | |
|---|---|---|
| साहित्य होता | साहित्य में ही | साहित्यकार |
| उदात्त आदर्शों का | इतिहास राष्ट्र का | सामाजिक आकृति |
| प्रतिष्ठापक | प्रतिबिंबित | का है चितेरा |

सभी विचारधाराओं के लोग सिद्धेश्वर जी के शुभेच्छु हैं और इन्हें अपना शुभेच्छु मानते हैं। प्रगतिशील विचारधारा के कारण कोई इन्हें वामपंथी समझ बैठता है, तो समाजवादी विचारधारा के कारण समाजवादी भी इन्हें अपना आदमी

मानते हैं। लेकिन सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि आम आदमी इन्हें अपना मानते हैं, आदर के साथ इनका नाम लेते हैं। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि किसी सर्जनधर्मी के लिए इससे सुखद बात और क्या हो सकती है कि वह सबके दिल में बसता हो। अपने उम्र के पैंसठवें-छियासठवें वर्ष में *'आत्ममंथन'*, *'सुर नहीं सुरीले'*, *'जागरण के स्वर'*, *'हम और हमारा समाज'*, *'समकालीन यथार्थ-बोध'* तथा *'यह सच है'* सरीखे आधा दर्जन पुस्तकें लिखकर न केवल इन्होंने उल्लेखनीय कार्य किया है, बल्कि नयी विधा हाइकु व सेन्र्यू में सर्जन कर हिंदी साहित्य को समृद्ध किया है। दिल्ली के सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन की ओर से प्रकाशित इनकी कृतियों के लिए कंप्यूटर इंजीनियर इनके इकलौते सुपुत्र सुधीर रंजन बधाई के पात्र हैं।

## हम और हमारा समाज

सिद्धेश्वर जी की एक और महत्त्वपूर्ण पुस्तक *'हम और हमारा समाज'* प्रकाश्य है। 'पुस्तक के प्रंसग में' इन्होंने कहा है कि इस पुस्तक के लिखने के पीछे भाव यह रहा कि जिस समाज में मैंने जन्म लिया, जिसने मुझे सजाया-सँवारा और जीवन जीने का एक अच्छा अवसर दिया, उसके प्रति भी मेरा एक कर्त्तव्य बनता है। कम-से-कम समाज से जो कुछ मैंने पाया, प्रबुद्धजनों एवं साहित्यकारों के सान्निध्य में रहकर जो कुछ सीखा, उन्हें ही बाँटकर उनके सुख-दुख में भागीदार बनूँ और सामाजिक दायित्व का निर्वहन करूँ।

यह बिल्कुल सही है कि सिद्धेश्वर जी एक सामाजिक कार्यकर्त्ता होने के नाते अपने देश-काल और समाज को इन्होंने खुली आँखों से देखा है और ये आज भी देख रहे हैं। इनके खुद का मानना है कि समाज को खुली आँखों देखनेवाला ही समाज अथवा साहित्य का काम कर सकता है और उसके मर्म को समझ सकता है। आज समाज की जो स्थिति है उसमें लेखक, पत्रकार, कलाकार, समाजसेवी, राजनीतिज्ञ और यहाँ तक कि साधु-संत को भी व्यापारी होते जाने की बात वे कहते हैं। ऐसी स्थिति में समाज व देश को कौन देखेगा, यह सवाल सबके सामने खड़ा है। तेजी से लुप्त होती राष्ट्रीयता की भावना के वक्त राष्ट्रीय चेतना के भाव कौन भरेगा? राष्ट्रीय चेतना की भावभूमि के लिए सामाजिक होकर इन्होंने इस पुस्तक में भारतीय समाज के साथ-साथ दलित समाज, ग्रामीण समाज, स्त्री समाज, युवा समाज तथा अहिंसक समाज पर विस्तार से अपने अनुभवों को संजोया है। निश्चित रूप से इस पुस्तक में इन विविध विषयों पर अभिव्यक्त इनके विचारों से न केवल युवा एवं भावी पीढ़ियों को एक रोशनी

मिलेगी, वरन् आज के आत्मकेंद्रीत और हतोत्साह लोगों को एक दिशा भी मिल पाएगी। युवाओं में अच्छे विचार पिरोना समय की माँग है, क्योंकि विचार ही स्वप्नों की मूर्तछवि होते हैं, विचारों से कर्म पैदा होते हैं और कर्म से ही निर्माण होता है।

### यह सच है

जहाँ तक सिद्धेश्वर जी की छिटपुट रचनाओं का सवाल है जीवन और उसकी समस्याओं के प्रति इनके दृष्टिकोण ने ही इनके साहित्यिक कार्य की रूपरेखा और उसका विस्तार निर्धारित किया। सामाजिक सरोकारों से जुड़े इनकी कई ऐसी रचनाएँ समाज के हाशिये पर पड़ी महिलाओं की संवेदनाओं को मानस पर उकेर देती हैं। देखें *'यह सच है'* शीर्षक इनकी कविता की निम्न पंक्तियों को-

*''यह सच है*
*फटेहाल तंबुओं में*
*बरसात और सर्दी की रात*
*फटी जिंदगी वह सोती है,*
*प्लेटफार्म पर, पुलिस को*
*खुश नहीं करने के जुर्म में,*
*उसकी बेगुनाह लड़की*
*जेबकतरी करार दी जाती है।''*

इस प्रकार की इनकी लगभग इक्यावन कविताओं का यह संकलन प्रकाश्य है। *'यह सच है'* अपने कविता संग्रह के प्राक्कथन के संदर्भ में सिद्धेश्वर जी का मानना है कि कविता आज जन-सामान्य से दूर होती जा रही हैं कुछ इसी ख्याल से उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से जीवन में रस घोलने और उसे गति देने का प्रयास किया है। साथ ही लेखन शैली की उत्कृष्टता की अपेक्षा लेखन विषय की गुणवत्ता को इन्होंने अधिक महत्त्व देना पसंद किया है। सामाजिक सरोकारों को ही इन्होंने लेखन विषय का सर्वोत्तम स्रोत माना है।

इस संग्रह की कविताओं में राजनीति है पर कविता राजनीतिकता के पास तक नहीं फटकती है। रचनाओं में यथार्थ है, किंतु उन्होंने संस्कृति के अंचल का छोर नहीं छोड़ा है। आखिर तभी तो गीति रचना के सशक्त हस्ताक्षर कविवर मधुर शास्त्री ने अपनी शुभाशंसा *'यह भी सच है'* में लिखा है- 'सिद्धेश्वर ने कविता का सरलतम व्याकरण अपनाते हुए उसे जीवन के यथार्थ तक ले जाने का प्रयत्न किया है।

कवि ने ईमानदारी के साथ अपना कविकर्म निभाया है। भाषा इनकी अपनी है जिसे अपने भावानुसार सुविधापूर्वक मोड़ लेते हैं। युगानुरूप संग्रह निश्चय ही

पठनीय है।

इस संग्रह के कवि सिद्धेश्वर का कहना है कि अलोकप्रिय होने पर भी कविता के केंद्र में आज, पाठक कम, लोक और समाज ज्यादा है। इस लिहाज से उसे नकारा नहीं जा सकता है। कविता और समाज के बीच दूरी भले ही बढ़ रही है, लेकिन आज की कविता समाज का पीछा करती हुई चल रही है। कविता से कटनेवाला समाज अपना नुकसान स्वत: कर रहा है।

इस संग्रह की भूमिका में पूर्व विश्वविद्यालय प्राध्यापक एवं हिंदी विभागाध्यक्ष प्रो०(डॉ०) दीनानाथ 'शरण' लिखते हैं कि संग्रह की रचनाएँ सिद्धेश्वर जी की मनोभूमि से नि:सृत नहीं हैं, वरन् सामाजिक और सामयिक भावभूमि से उद्‌भूत हैं। स्वाभाविक है, इनमें आज के समय और समाज की धड़कनें हैं, स्पंदन हैं, क्रंदन हैं। कबीर और रहीम की विचार-प्रधान रचनाओं के सदृश ही, इन कविताओं का वैचारिक मूल्य है।

इसी प्रकार सुप्रसिद्ध कवि व समीक्षक नचिकेता इस काव्य-संग्रह पर अपने अभिमत प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि 'मानवीय संकट जितना अधिक गहरा होता जाता है और मानवीय संवेदना के क्षय की रफ्तार जितनी अधिक तेज होती जाती है, समाज में और मनुष्यों के वास्ते कविता की अहमियत और अनिवार्यता उतनी ज्यादा बढ़ती जाती है, क्योंकि कविता का हाल में मानवीय संवेदना को अभिरक्षा ही नहीं प्रदान करती है, प्रत्युत उसे नया जीवन भी देती है। आज के बढ़ते उपभोक्तावाद के प्रभाव से सबसे अधिक क्षतिग्रस्त मानवीय संवेदना ही हुई है। सिद्धेश्वर की कविताएँ इसी क्षतिग्रस्त और लहूलुहान मानवीय संवेदना की प्रतिरक्षा में लड़ी जा रही प्रतिरोधात्मक लड़ाई का घोषणा-पत्र है। इनमें सामाजिक अंतविरोधों, आर्थिक विषमताओं, राजनीतिक विसंगतियों, नैतिक त्रासों और सांस्कृतिक विडंबनाओं की अमानवीय अनुगूँजें और आहटें सुनाई पड़ती हैं।

इस संग्रह की कविताओं के माध्यम से ''सिद्धेश्वर आज के आर्थिक सुधार और अंधविश्वास के *'ठेकेदार धर्म के'*, *'घूँघट में'*, *'जीवन का सच'*, ढूँढ़ते दृष्टिगोचर होते हैं। इन्हें *'लोकतंत्र की रक्षा में खड़ी'*, *'महँगाई के तेवर'*, देखकर *'खतरों से घिरी कलाकार की आजादी'*, की अमानवीय चीख सुनाई देती है। ये न तो इन उपलब्धियों पर फिदा होते हैं और न ही अपनी खत्म होती जवाबदेही से किनाराकशी ही करते हैं। इसके विपरीत *'बदरंग हो रहे फूलों के रंग'*, के मर्म को पहचान कर *'जनता का जागरण'* बनने का निमित्त बनते प्रतीत होते हैं।''

नचिकेता पुनः कहते हैं कि अनुभूति की सघन संरचना के बावजूद सिद्धेश्वर की काव्य भाषा सरल, सहज, सुगम और पारदर्शी है, ये नवीन संवेदना के बहाने प्रतिसंसार का प्रतियथार्थ रचने का ढकोसला नहीं करते, वरन् सीधी-सादी भाषा में मौजूदा 'संसार की वस्तुपरक अभिव्यक्ति करते हैं।'

सिद्धेश्वर जी की कविताओं में समाज के सबसे निचले तबके की आवाज बुलंद करने की छटपटाहट है। तभी तो ये इन पंक्तियों में कहते हैं--

*राजनीतिक आकाओं के*
*भ्रष्टाचार और अनैतिक व्यवहार को*
*जनता ने ठान लिया है*
*और मूक विरोध की जगह*
*खुले आंदोलन के लिए*
*सर पे कफन बाँध लिया है।*

सिद्धेश्वर जी की निम्न पंक्तियाँ इनके आशावादी होने का परिचय देती हैं:-

*उनके मनमानी करने के दिन*
*अब सिर्फ गिनती के होंगे*
*क्योंकि*
*सत्ता पर बैठे हुकमरानों*
*और उसकी व्यवस्था से*
*टक्कर लेने में*
*वे अकेले नहीं*
*आप भी उनके साथ होंगे।*

*और ये इन पंक्तियों में सत्ताधारियों को चेतावनी भी देते हैं--*
*कब तक चलेगा*
*तुम्हारा ये ताना-बाना*
*और मनमाना*
*इसलिए बदलो*
*तुम अपने को बदलो*
*नहीं तो बदल देगा*
*तुम्हे ये जमाना।*

सिद्धेश्वर जी के कथ्यों का पूरा सरोकार जीवन के जमीनी रूप में जुड़ने का सरोकार है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक-साहित्यिक गतिविधियों के सहारे ये समाज व देश के जनमानस को अभिव्यक्त करना चाहते हैं। समाज के एक भाग से संबद्ध न होकर ये पूरे समाज के हर हिस्से को अपने सरोकारों व चिंताओं में अभिव्यक्त करते हैं। बाजारवाद के मायाजाल में इनके निहितार्थ को समाज और साहित्य से जुड़े लोगों से ज्यादा और कौन अनुभव कर सकता है। इनकी अनुभूतियाँ, बिंबविधान और आर्तरिकता भारतीय जनमानस की हैं। आखिर तभी तो भारतीय करुणा, संवेदना, सामूहिकता और निश्छलता के भावों को महिमार्मंडित करते इनकी रचनाओं में भारतीय मिट्टी के प्रति हम मोह और ललक की झलक पाते हैं। इसी वजह से अपनी रचनाओं के माध्यम से राजनीति और कुचक्रों में फँसे देश को ये जगाने की कोशिश करते हैं। इस प्रकार की इनकी कविताओं का संकलन प्रकाशित है।

इस प्रकार सन् 1992 से 1997 के बीच इन्होंने अड़तीस कविताएँ लिखीं, और वर्ष 2004 में तेरह जो सही अर्थ में किसी रचनाकार के निकष पर खरी उतरती हैं, क्योंकि उनमें जीवन के एक बड़े भाग का यथार्थपरक चित्रण किया गया है। इन रचनाओं में कथानक का प्रस्तुतीकरण आरंभ से अंत तक मात्र यथार्थ ही नहीं, बल्कि सुखद भी है। ये रचनाएँ देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर छपती रही हैं। मेरी शुभकामना इनके साथ है।

लिखना इनके लिए एक लत के समान है। लिखना इनकी नितांत व्यक्तिगत जरूरत बन गया है। इनकी अनवरत सर्जन-साधना जीवन के साथ एक निष्ठा और चुहलभरी समरसता है। यथार्थता से सीधे टकराने के कारण ही ये देश की सामाजिक व राजनीतिक स्थितियों के प्रति सदैव सजग रहे हैं। आखिर तभी तो इनकी कविताओं में वर्तमान की भयावहता का गहरा अहसास है। समय के अंतर्विरोध को अपने निकटतम और निकृष्टतम रूप में नगर और गाँव की डगर में इन्होंने देखा है। आजादी के बाद का माहौल घोर आर्थिक वैषम्य, भ्रष्टाचार, क्षेत्रवाद, जातिवाद, भाषायी संकीर्णता, राजनीति का अपराधिकीकरण, सांप्रदायिकता और भाई-भतीजावाद जैसी विकृतियाँ इनकी रचनाओं के विषय रहे हैं। व्यवस्थाविरोध जैसे इनके जीवन का अनिवार्य मुहावरा बन गया है। असहमति, विद्रोह, उग्रता तथा आक्रोश के स्वर ही इनकी कविताओं में उपजे। कवि की चिंता है कि इनके जमाने का शायद सबसे बुरा दौर है, जब आदमी की संवदेनक्षमता जाती रही है और वह हर गलत बात को मानने को तैयार है, बशर्ते कि उसमें उसका हिस्सा हो। वह हर अभ्यास को सह जाने को तैयार है, जो किसी दूसरे की जिंदगी में घट रहा हो। आज की विषमताओं की जवाबदेही समाज के प्रत्येक व्यक्ति पर है और खासकर बुद्धिजीवी के कंधा पर इसका

दायित्व अधिक जाता है।

सिद्धेश्वर जी के लेखन में एक ओर जहाँ मानवीय मूल्यों और अनुभवों की सहज, सशक्त एवं ईमानदार अभिव्यक्ति देखने को मिलती है, वहीं इनकी जिंदादिली, वाकपटुता और भाषा के सचेत-सावधान इस्तेमाल से बहुतों को प्रेरणा मिलती है। अपनी कृतियों और सक्रियताओं से ये सभी के मानस में बैठ चुके हैं। यही कारण है कि इनके विषय में चाहे ईर्ष्यावश ही क्यों न हो, यदि कोई शिकायत करता है तो कुछ लोग ही न केवल पलटकर शिकायत करनेवालों पर अटैक करते हैं, बल्कि अधिकतर तो उसे नजरअंदाज करना ही अधिक पंसद करते हैं, क्योंकि इनकी झोली में इनके द्वारा समाज और साहित्य को दिये गये अवदानों की एक लंबी सूची पड़ी है। सच यह है कि उस सूची का एक संपूर्ण मूल्यांकन अपेक्षित है। वैसे मेरा यहाँ लघु प्रयास हुआ है कि इस पुस्तक में इनके व्यक्तित्व व विचारों को समेटा जाए। अपने संपूर्ण लेखन में व्यक्ति व समाज की पीड़ा को स्वर प्रदान करनेवाले सिद्धेश्वर जी का आदर्श एवं सुधारवादी दृष्टिकोण इनके साहित्य को शाश्वत साहित्य की श्रेणी में लाकर खड़ा करता है, कारण कि इनका साहित्य सोद्देश्य और सार्थक है। इनकी समस्त रचनाओं का मूल स्वर सामाजिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय है। अपने साहित्य के माध्यम से राष्ट्रीयता का जो प्रबल उद्घोष इन्होंने किया है, वह स्तुत्य है।

लोकजीवन से जुड़ी सिद्धेश्वर जी की रचनाओं में जीवन का सत्य भरा है। सहजता और सरलता से संपन्न इनकी हाइकु, सेन्र्यू अन्य सामान्य कविताओं में जिन विश्वासों और मूल्यों को सहेजा गया है, विरल है। इनकी कलात्मक एवं काव्यात्मक निष्ठा इनकी अनुभूति की सचाई और अभिव्यक्ति की सरलता में समाहित है। इनके शब्दों में ऊष्मा है, संवेग में संतुलन है और आख्यान में सहज समरसता। सबसे बढ़कर विशेषता तो इनकी हाइकु कविताओं में इनकी मौन मुखरित वाणी भी अधिक आकर्षण देती है। इनके लिए माध्यम और संदेश दोनों समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं और इन्होंने दोनों के प्रति पूर्णरूप से न्याय किया है। यही कारण है कि इनका संदेश सार्वकालिक और सार्वजनिक बनता जा रहा है।

सिद्धेश्वर जी आमतौर पर मुक्तछंद के रास्ते पर चलनेवाले कवि हैं, क्योंकि ये मानते हैं कि मुक्तछंद ने कई दशकों की अपनी यात्रा के दौरान स्वाधीनता, आधुनिकता तथा भेदभाव विहीन सामाजिकता जैसे मूल्य अर्जित किये हैं। इनकी कृतियाँ इस सत्य को प्रतिपादित करती हैं कि मानसिक संतुलन बनाये रखने से पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक और राष्ट्रीय जनजीवन को घोर विपत्तियों से बचाया जा सकता है।

## एक स्वप्नद्रष्टा की अंतर्कथा–वर्ष 2006 ई0

समाज व देश में जब किसी महान व्यक्ति की चर्चा होती है तो उसके संपूर्ण व्यक्तित्व एवं कर्तृव्य को अतीत में झाँककर देखना होता है। अतीत की यही भूमिका होती है कि उस व्यक्ति ने कैसा समाज बनाने की कोशिश की और उसका आदर्श किस हद तक हासिल हो पाया।

सिद्धेश्वर जी की वर्ष 2006 में प्रकाशित पुस्तक 'एक स्वप्नद्रष्टा की अंतर्कथा' एक ऐसी ही कृति है जिसमें बिहार के तत्त्कालीन बैक्टेरियोलॉजिस्ट तथा पटना मेडिकल कॉलेज के पूर्व-पैथोलॉजिकल विभागाध्यक्ष डॉ॰ मोहन सिंह के व्यक्तित्व व कर्तृव्य के पूरे आयाम को समेटने का प्रयास किया गया है। पटना के मुसल्लहपुर स्थित सरदार पटेल छात्रावास के आजीवन अध्यक्ष डॉ॰ मोहन सिंह जी की प्रकृति, उनके समाज संबंधों, अद्वैत और अभेद सहयोग एवं करुणा, प्रेम एवं शांति और समाज की प्रगति में उनके उल्लेखनीय योगदान का विस्तार से चर्चा की गई है।

डॉ॰ साहब ने अपने जीवन में उलीचा गया हलाहल आत्मसात कर जो अमृत रूपी चीजें समाज को दी उसे सदैव नई भी रखने का सार्थक प्रयास सिद्धेश्वर जी द्वारा इस पुस्तक के माध्यम से किया गया है।

डॉ॰ साहब अपने आप में पाटलिपुत्र के एक जीते-जागते इतिहास थे और इस इतिहास-पुरुष की कृतियों को समाज भूल न जाए, कुछ इसी ख्याल सिद्धेश्वर जी ने यह पुस्तक लिखी है। डॉ॰ साहब की तमाम, भावनाओं, संघर्षों, अपेक्षाओं और विरोधाभासों को चित्रित और उनकी जिंदगी को समझने की यह एक सहाहनीय कोशिश है जिसके लिए सिद्धेश्वर जी बधाई के पात्र हैं।

यह पुस्तक देश के स्वतंत्रता-संग्राम से जुड़े और राष्ट्र के प्रति समर्पित एक ऐसे स्वप्नद्रष्टा की अंतर्कथा है, जिसने अपने जीवन में त्याग और परिश्रम की भारी पूँजी लगाकर महानता प्राप्त की और जिसकी धमनियों में समाज, समाज-सेवा का लहू बह रहा था। यह ग्रंथ बिहार के बैक्टेरियोलॉजिस्ट पद पर विराजमान डॉ॰ मोहन सिंह जी की स्मृति को ताजा रखने का एक प्रयास है जिनसे जीवनीकार सिद्धेश्वर जी को सार्वजनिक जीवन जीने में शुचिता बरतने की प्रेरणा मिली और जिनके न रहने से सामाजिक जीवन में उन्हें एक अजीब तनहाई का बोध होता है।

यह संस्मरणात्मक ग्रंथ मात्र औपचारिकतावश नहीं, बल्कि समाज और संस्कृति की आवश्यकता के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह एक ऐसा सार्थक प्रयास है जिसमें संकलित संस्मरण, लेख और डॉ॰ मोहन सिंह जी के बाजुओं के घेरे के लोगों सहित उनकी समाज-यात्रा की याद लेखक सिद्धेश्वर ने दिलाई है।

इस धूसर, वीरान उजाड़ और उदास संसार में डॉ॰ साहब की जिंदगी का यथार्थपरक चित्रण कर आज के लोगों में फिर से जिंदगी जीने की गरमाहट और चेहरों की मुस्कान लौटाने की एक ईमानदार कोशिश इस कृति में की गई है। लेखक ने डॉ॰ साहब के विचारों को बुद्धि की कसौटी पर कसा है। डॉ॰ मोहन सिंह जी के ओजस्वी और तेजस्वी जीवन को लेखक ने जिस प्रकार अपनी धारदार कलम से पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है, वह अनुपम है, अनोखा है। उनके अगाध ज्ञान और समाज के प्रति उनकी निष्ठा की थाह पाने की लेखक ने चेष्ट की है। उनके व्यक्तित्व में भरी-पूरी शांति, स्निग्धता और दिव्य सौम्यता का सिद्धेश्वर जी ने दर्शन कराया है। निश्चित रूप से वर्तमान एवं भावी पीढ़ी इसे पढ़कर सुनकर और उनके जीवन से प्रेरणा प्राप्त कर आनंद और उल्लास का अनुभव करेगी।

कृतिकार ने इस कृति में जीवनी के प्रचलित शिल्प से हटकर नितांत भिन्न किस्म के शिल्प और शैली का प्रयोग किया है जो पाठकों को सहज रूप से ग्राह्य है। डा॰ साहब की यह जीवनी वस्तुत: एक सामाजिक आत्म स्वीकृति है, सिद्धेश्वर जी मात्र एक माध्यम हैं। एक समर्थ पत्रकार व साहित्यकार की निष्पक्ष अभिव्यक्ति होने के कारण यह पुस्तक आद्यांत रोचकता से परिपूर्ण है। डॉ॰ साहब के जीवन की तमाम प्रवृत्तियाँ लेखक के विलक्षण व्यक्तित्व में पुट-परिणत होकर रस सिद्ध हो गई हैं।

इस पुस्तक के प्राक्कथन से यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि इस ग्रंथ के पीछे प्रमुख प्रयोजन सामाजिक प्रतिबद्धता के प्रति रुझान, उसकी जमीनी संरचना एवं ऊर्जा को रेखांकित करने का रहा है।

इस जीवनी के जरिए जीवनीकार सिद्धेश्वर जी सामाजिक प्रतिबद्धता, समरसता, मानवता की उदात्त, सौहार्दपूर्ण और मंगलमय नियति के प्रति अपनी आस्था की उद्घोषणा करते हैं। इस पुस्तक का सृजन कर इन्होंने पूरे समाज और साहित्य जगत का विश्वास प्राप्त करने में सफलता पाई है, साथ ही साहित्य को भी जीवनी विधा से समृद्ध किया है। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि डॉ॰ मोहन सिंह जी के जीवन से जुड़ी इस जीवनी में संगृहित सामग्री अत्यंत प्रेरणादायक है। इसमें समाजेतिहास की अस्मिता को सुरक्षित रखने के लिए भी लेखक का यह सत्यप्रयास सराहनीय एवं सच्चे जिज्ञासुओं के लिए मार्गदर्शक प्रकाश-स्तंभ जैसा है।

सिद्धेश्वर लिखित 'एक स्वप्नद्रष्टा की अंतर्कथा' इनकी गहरी अनुभूति का एक संक्षिप्त भाव विन्यास है। लेखक ने और जीवनीयों से थोड़ा हटकर डॉ॰ साहब के अस्तित्व को थोड़ा करीने से टटोलने का प्रयास किया है। डॉ॰ साहब जैसे उदारमना की जीवनी समाज के समक्ष प्रस्तुत कर सिद्धेश्वर जी ने

न केवल अपनी लेखनी को धन्य किया है, बल्कि अपनी पारदर्शी विद्वत्ता का सही उपयोग किया है जिसके लिए ये बधाई के पात्र हैं। निश्चित रूप से यह एक अत्यंत मौलिक जीवनी कृति है जिसमें डॉ॰ मोहन बाबू के जीवन के विभिन्न आयामों को चमकाने में जीवनीकार समर्थ हुआ है और उनकी लेखनी की यही विशेषता सामान्य लेखकों से उन्हें पृथक् करती है। कुल मिलाकर डॉ॰ मोहन सिंह जी के समग्र जीवन पर लिखी गई यह जीवनी पठनीय एवं संग्रहणीय है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि अत्यंत बारीकी और कौशल से लिखी गई इस कृति की उपादेयता समाज के लिए बहुत है, क्योंकि जीवनीकार ने एक सच्चे रसज्ञ कलाकार की तरह हर शीर्षक में विस्तार के साथ डॉ॰ साहब के जीवन दर्शन, विचार और सिद्धांत की व्याख्या कर उनका डॉ॰ मूल्याँकन किया है।

दरअसल सिद्धेश्वर जी एक रचनाशील व्यक्ति हैं और रचनाशील व्यक्ति जो भी सोचता है उसमें सार्थक मौलिकता होती है। सार्थक मौलिकता के बिना रचनाशीलता असंभव है। सिद्धेश्वर जी कई आयामों पर सोचते हैं और फिर उसमें से चयन करते हैं, इनके भीतर अपने विषय को लेकर हमेशा कल्पनाएं हिलोरें मारती हैं। इसी कल्पना का प्रतिफल है डॉ॰ मोहन सिंह जी के जीवन पर लिखा यह ग्रंथ 'एक स्वप्नद्रष्टा की अंतर्कथा'। सच तो यह है कि मोहन बाबू के जीवन काल में ही इन्हें अपने ग्रंथ के विषय बनाने की कल्पना हिलोरें मार रही थीं, मगर इनका वह सपना साकार हुआ डॉ॰ साहब के महाप्रमाण के लगभग डेढ़-दो साल बाद। इस पुस्तक में इन्होंने डॉ॰ साहब के नैतिकवृत्त में सारे गुणात्मक तत्त्वों को समादृत किया है और इसमें जो उनके व्यक्तित्व के विश्लेषण प्रस्तुत किए गए हैं, वे संश्लिष्ट, भावपूर्ण हैं, जो यह माँग करती है कि डॉ॰ साहब के अतीत का वर्तमान के झरोखे से खूब बारीकी तौर पर देखा-परखा जाए। कारण कि सिद्धेश्वर जी ने उनके जीवन के किसी एक हिस्से के आधार पर नहीं, बल्कि उनका मूल्याँकन उनके समग्र जीवन के आधार पर करने की कोशिशें की हैं। इस लिहाज से यह पुस्तक समाज की वर्तमान व भावी-पीढ़ी को प्रेरित करने में उपयोगी साबित होगी।

**डॉ॰ मोहन: एक तपस्वी मन-प्रकाश्य**

'एक स्वप्नद्रष्टा की अंतर्कथा' की तरह सिद्धेश्वर जी ने 'डॉ॰ मोहन: एक तपस्वी मन' शीर्षक से एक स्मृतिग्रंथ का संपादन भी किया है जिसमें स्वतंत्रता सेनानी तथा सामाजिक सरोकारों से सराबोर डॉ॰ मोहन सिंह से जुड़ी स्मृतियों को सहेजकर रखने का प्रयास है, क्योंकि स्मृतियाँ जब तक सहेजकर रखी नहीं जातीं और जब तक उसे लिपिबद्ध कर किसी संकलन में उसका समावेश नहीं कर लिया जाता तो वह मानस-पटल से खिसक भी सकती हैं।

डॉ॰ मोहन सिंह जी की यादों को ताजा रखने तथा भावी पीढ़ी को उनके

व्यक्तित्व व कर्त्तत्व से प्रोत्साहित करने में यह ग्रंथ अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगा, क्योंकि बिहार तथा बिहार से बाहर के कई सुप्रसिद्ध रचनाकारों ने इस ग्रंथ में रोचक संस्मरण एवं उनसे संबंधित लेखों को शामिल किया गया है। साहित्य जगत के समक्ष यह ग्रंथ अनेक नवीन अज्ञात तथ्यों के साथ प्रकाश्य है।

**समकालीन यथार्थ-बोध-प्रकाश्य**

सिद्धेश्वर जी की एक और बेहतरीन पुस्तक- 'समकालीन यथार्थ-बोध ' प्रकाश्य है, जिसमें समकालीन साहित्य, संस्कृति, राजनीति, पत्रकारिता, धर्म तथा शिक्षा की यथार्थता से बोध कराने का सफल प्रयास किया गया है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि साहित्य, संस्कृति, राजनीति, पत्रकारिता, धर्म, तथा शिक्षा के क्षेत्रों में आज एक बहुत बड़ा भटकाव आया है और वे अपने मूल उद्देश्यों से भटक गए हैं, जिससे ये संपूर्ण समाज बुरी तरह प्रभावित हो रहा है।

सिद्धेश्वर जी ने इस कृति के माध्यम से न केवल राज़नीति, संस्कृति, साहित्य, शिक्षा व पत्रकारिता की विकृतियों का दो-टूक परिचय प्रस्तुत किया है, अपितु उन्होंने साहस के साथ उसकी नई सर्जना और उसके परिष्कार की बात भी की है। उन्होंने इसमें यथार्थ को अपनी आँखों की कसौटी पर परखने की कोशिश की है और उसमें छिपी सच्चाई को सरेआम उजागर करने का प्रयास किया है तथा इसके अनेकानेक रहस्यों की परतों को उघाड़ा है।

**समकालीन समाज के सजग साहित्यकार**

इनका एक बुनियादी सरोकार, पश्चिमी सभ्यता व संस्कृति के केंद्र में बसी बुराई को उजागर करने का रहा है। इनके साहित्य के पीछे बार-बार यह जानने की बेचैनी है कि लोग हथियार क्यों उठाते हैं और हिंसा पर क्यों उतारू हो जाते हैं, जबकि पालन-पोषण करनेवाली धरती स्वतंत्रता के लिए बनी है। इनके साहित्य में यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि हिंसा के शिकार वे लोग ही होते हैं, जो भोले-भाले और सीधे-सादे हैं। निर्दोष लोग ही लगातार उन विचारधाराओं के शिकार होते जा रहे है, जो समाज को बदलने और व्यवस्थित करने का दावा करती रही है, लेकिन जिन्हें सामूहिक नरसंहार करने में कभी कोई संकोच नहीं हुआ। सिद्धेश्वर जी की यही बेचैनी इन्हें समकालीन समाज का एक सजग, चौकस एवं संवेदनशील रचनाकार बनाता है।

**साहित्य पर इनके अनुभव**

समाज और देश की प्रगति के लिए सिद्धेश्वर जी सत्साहित्य की अत्यंत आवश्यकता महसूस करते हैं। मौजूदा दौर में अपने रास्ते से भटक रही भारतीय राजनीति को भी सत्साहित्य से ही सही दिशा प्रदान की जा सकती है। जब

जापान, जर्मनी, फ्रांस, चीन और इजरायल जैसे देश मात्र भाषा और साहित्य के नाम पर अपनी मजबूत हैसियत बना सकते हैं, तब भारत क्यों नहीं?

कहा जाता है कि किसी देश के समाज में जब आतंक और शोषण बढ़ते हैं, तो आमतौर पर उसके साहित्य में हास्य और व्यंग्य का सैलाब-सा आ जाता है, किंतु ऐसा कुछ आज के साहित्य में देखने को नहीं मिल पा रहा है, वैसे कविसम्मेलनों में भले हास्य एवं व्यंग्य को अवश्य अधिक तरजीह दी जा रही है। इस हालत में सिद्धेश्वर जी मानते हैं कि आज रचनाकारों को वैसे ही साहित्य की रचना करनी है, जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सर्जन की आत्मा हो, जीवन की सचाई का प्रकाश हो, जो हममें गति और बेचैनी पैदा करे, क्योंकि अब और अधिक सोना मृत्यु का लक्षण है। हाँ, रचनाकार को इस तरह का सर्जन करने के लिए त्याग भी करना होगा, कष्ट भी सहना पड़ेगा। सर्जन करनेवाले को विषपान करना ही पड़ता है। पहलकदमी करनेवाले को असफलताओं का दोष भी अपने ऊपर लेना पड़ता है, इसलिए उन्हें धैर्य भी रखना होगा।

साहित्य में राजनीति के सवाल पर सिद्धेश्वर जी का कहना है कि आज सियासत की तरह साहित्य में भी अच्छी-खासी खेमाबंदी है, चाटुकारिता है और वह 'वाद' के घेरे में भी कैद है। मुझे कम-से-कम इतना संतोष तो अवश्य है कि इस दृष्टि से सिद्धेश्वर जी आज भी अकेले और शिविरहीन हैं। कर्म में अटूट आस्था रखनेवाले इस लेखक का मानना है कि परिस्थितियों के सत्य को शब्द-शब्द सुनने की मानसिकता, कठोर समय को आइने की तरह निहारने का साहस ही असत्य से लड़ने की ताकत देता है। स्वयं रास्ता बनाना अंधकार में सूई में धागा डालने के समान है, फिर भी सिद्धेश्वर जी सचाइयों से मुख नहीं मोड़ते हुए अँधेरे में ही सूई में धागा डालने को प्रयासरत हैं। बीहड़ में से पथनिर्माण हर एक के वश की बात नहीं, शेर के दाँत गिनने का संकल्प लेकर ही ये अपनी राह खोजते हैं। राह की यह खोज सचमुच जीवन की संघर्षपूर्ण तलाश है। इस संदर्भ में गीत विधा के श्रेष्ठ गीतकार रमानाथ अवस्थी की इन पंक्तियों को देखें कि वे सिद्धेश्वर जी के अनुभवों पर कितनी सटीक बैठती हैं:-

*''चाँदनी चढ़ाता हूँ उन चरणों पर,*
*जो अपनी राहें आप बनाते हैं,*
*आवाज लगाता हूँ उन गीतों को,*
*जिनको मधुबन के भौंरें गाते हैं,*
*मधुबन में सोये गीत हजारों हैं,*
*जो भी तुमसे जग जाये जगा देना।''*

# खण्ड : चार

## कार्यकलाप : बोलती तस्वीरें

सरदार पटेल के 123वें जयंती-समारोह पर उपस्थित अतिथिवृंद तथा उद्‌गार व्यक्त करते हुए कवि सत्यनारायण

सरदार पटेल के 123वें जयंती-समारोह में उपस्थिति सुधि श्रोतावृंद

राष्ट्रीय विचार मंच द्वारा आयोजित राष्ट्रीय अधिवेशन में विभिन्न राज्यों से पधारे प्रतिनिधियों के बीच श्री सिद्धेश्वर

'तथागत' के लोकार्पण के अवसर पर मंचासीन बायें से लेखक डॉ. वी.के. मेहता, श्री सिद्धेश्वर, श्री विश्वकर्मा तथा श्री बनारसी सिंह

श्री सिद्धेश्वर के हाइकु काव्य संग्रह 'पतझर की सांझ' का लोकार्पण करते हुए रेल मंत्री श्री नीतीश कुमार

भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण, पटना में हिंदी कार्यशाला का उद्घाटन करते हुए श्री सिद्धेश्वर

सरदार पटेल के 122वें जयंती-समारोह के अवसर पर बायें से श्री पी.के. सिन्हा, श्री जियालाल आर्य, न्यायाधीश धर्मपाल सिन्हा तथा श्री सिद्धेश्वर

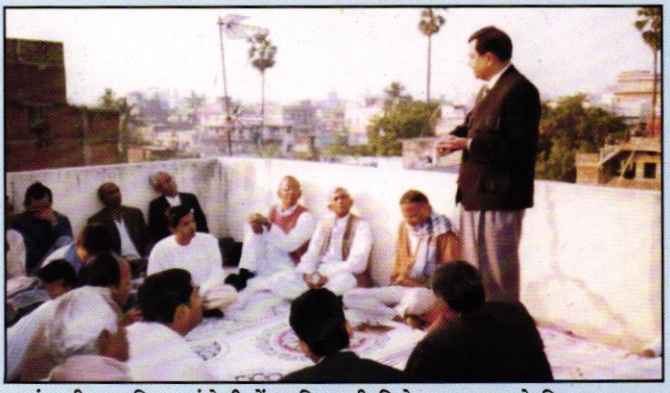

मंच की एक विचार संगोष्ठी में उपस्थित श्री सिद्धेश्वर तथा अपने विचार व्यक्त करते हुए अधिवक्ता डॉ. उमा शंकर प्रसाद

तमिलनाडु बहुभाषी लेखिका संघ, चेन्नै द्वारा सम्मानित श्री सिद्धेश्वर

मंच द्वारा दिल्ली में आयोजित राष्ट्रीय अधिवेशन के अवसर पर बायें से श्री सिद्धेश्वर, श्री यू.सी. अग्रवाल, श्री ईश्वर गोयल तथा डॉ. विद्या शर्मा

बिहार के कुर्मी (निबंध संग्रह एवं निदेशिका) के लोकार्पण समारोह में मुख्य मंत्री श्री लालू प्रसाद एवं सांसद श्री नीतीश कुमार के साथ लेखक श्री सिद्धेश्वर

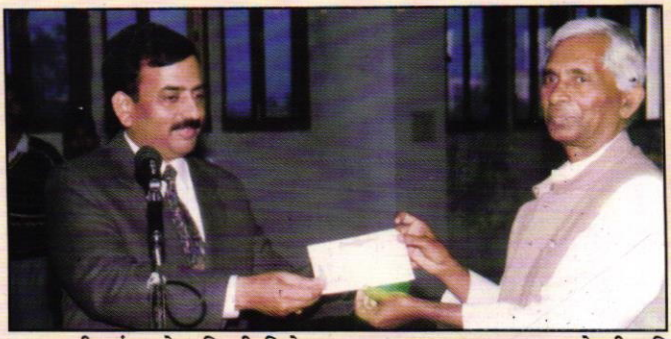

'पतझर की सांझ' के कवि श्री सिद्धेश्वर सम्मान स्वरूप दस हजार रुपये की राशि का चेक महालेखाकार श्री नन्द लाल से प्राप्त करते हुए श्री सिद्धेश्वर

नालन्दा के इसलामपुर में आयोजित खेल प्रतियोगिता के विजेता को पुरस्कार प्रदान करते हुए मुख्य अतिथि श्री सिद्धेश्वर

निदेशक, डाक लेखा, पटना द्वारा आयोजित डॉ. अम्बेडकर जयंती के अवसर पर विचार व्यक्त करते हुए विचार दृष्टि के संपादक श्री सिद्धेश्वर

कविवर स्व. भोला प्र. सिंह 'तोमर' की स्मृति में प्रकाशित काव्य संग्रह यादें के लोकार्पण के अवसर पर उदगार व्यक्त करते हुए संपादक श्री सिद्धेश्वर तथा मंचासीन डॉ. शिवनारायण, श्री उपेन्द्र प्र. वर्मा, श्री जियालाल आर्य तथा डॉ. भगवतीशरण मिश्र

भारतीय कला साहित्य संस्थान, विद्युपुर के सम्मान समारोह में शामिल 'विचार दृष्टि' के संपादक श्री सिद्धेश्वर

शहीद दिवस पर दिल्ली में आयोजित एक विचार संगोष्ठी में भाग लेते सबसे दायें सिद्धेश्वर

एक विचार संगोष्ठी में बैठे बायें से प्रो. राम बुझावन सिंह, श्री सतीश कुमार, श्री सिद्धेश्वर, श्री डी.एन. प्रसाद, डॉ. एस.एन.पी. सिन्हा तथा श्री जियालाल आर्य

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की 112वीं जयंती पर बायें से प्रो. बी.पी. वर्मा, डॉ. एस.एन.पी. सिन्हा, डॉ. पी. दयाल तथा विचार व्यक्त करते हुए श्री सिद्धेश्वर

हिंदी दिवस समारोह पर दायें से प्रो. साधुशरण, कवि हृषीकेष पाठक, प्रो. रामबुझावन सिंह तथा श्री सिद्धेश्वर

डॉ. अम्बेडकर की 107वीं जयंती पर बायें से श्री सिद्धेश्वर, डॉ. उमा शंकर प्रसाद, ले.जे. एस.के. सिन्हा तथा महालेखाकार श्री नन्दलाल

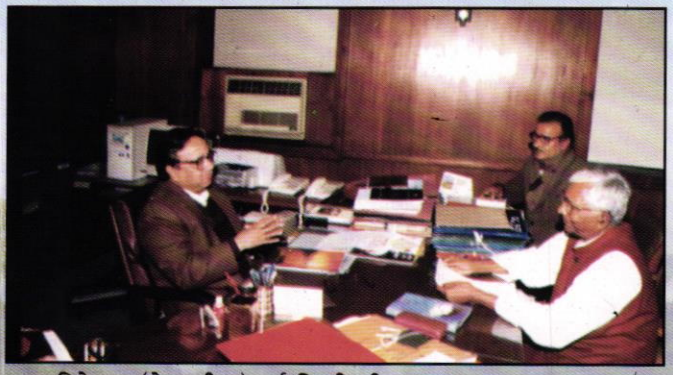

महानिदेशक (लेखापरीक्षा) नई दिल्ली श्री हरप्रसाद दास का साक्षात्कार करते हुए विचार दृष्टि के संपादक श्री सिद्धेश्वर

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की 112वीं जयंती पर बायें से डॉ. पी.एन. सिन्हा, श्री अरुण कुमार सिंह, प्रो. वीरकेश्वर प्रसाद सिंह, श्री नन्द लाल तथा श्री जियालाल आर्य

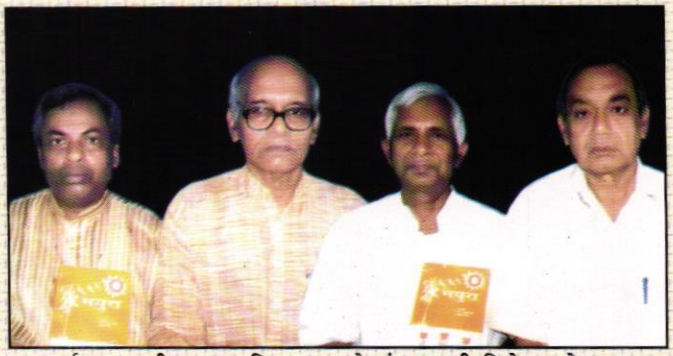

वर्ष 2005 की साझा कृति 'मयूरा' के संपादक श्री सिद्धेश्वर के साथ
उसके लेखक श्री मनू सिंह, श्री जुगल किशोर प्रसाद एवं श्री राजभवन सिंह

सरदार पटेल जयन्ती समारोह के अवसर पर 'विचार दृष्टि' के प्रवेशांक का लोकार्पण
करते हुए श्री नीतीश कुमार, श्री सुशील कुमार मोदी तथा मंच के अध्यक्ष एवं महासचिव

राष्ट्रीय विचार मंच के पटना स्थित कार्यालय भवन का उद्घाटन करते हुए
न्यायाधीश श्री बी.एल. यादव के साथ श्री सिद्धेश्वर

'विचार दृष्टि' के लोकार्पण समारोह में उपस्थित दांए से सर्वश्री सिद्धेश्वर, विंध्यवासिनी दत्त त्रिपाठी, गोपी वल्लभ सहाय, प्रो. राम बुझावन सिंह, डॉ. भगवती शरण मिश्र तथा डॉ. श्याम नंदन शास्त्री

दूरदर्शन के दिल्ली केन्द्र से रेणु के उपन्यासों में आंचलिकता पर सम्पन्न वार्ता में उपस्थित श्री सिद्धेश्वर, डॉ. शिवनारायण, श्रीमती चित्रा मुदगल तथा श्री अमर नाथ 'अमर'

अपनी जीवन संगिनी श्रीमती बी. प्रसाद के साथ श्री सिद्धेश्वर

श्री सिद्धेश्वर जी की धर्मपत्नी श्रीमती बी. प्रसाद नेत्री की मुद्रा में

मंच की एक काव्य संध्या में श्री सिद्धेश्वर

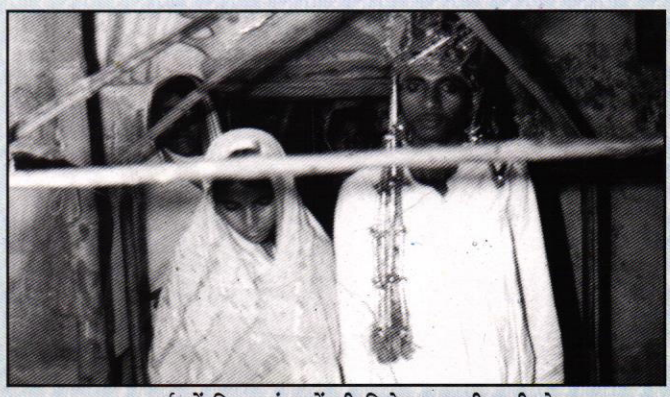

सन् 1962 ई. में विवाह मंडप में श्री सिद्धेश्वर अपनी पत्नी के साथ

महाकवि आरसी साहित्य परिषद के वार्षिकोत्सव के अवसर पर मंचासीन अतिथियों के साथ श्री सिद्धेश्वर

परिवार के सदस्यों के साथ श्री सिद्धेश्वर

आ.भा. वरिष्ठ लेखा परीक्षा अधिकारी / लेखा परीक्षा अधिकारी संघ के भुवनेश्वर में आयोजित अ.भा. अधिवेशन के सम्बोधित करते हुए संघ के संयुक्त महासचिव श्री सिद्धेश्वर

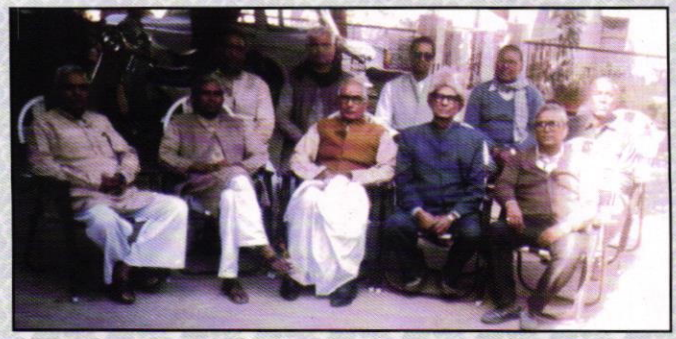

सुप्रसिद्ध समाजसेवी डॉ. मोहन सिंह के साथ सरदार पटेल छात्रावास न्यास के सदस्यों के बीच श्री सिद्धेश्वर

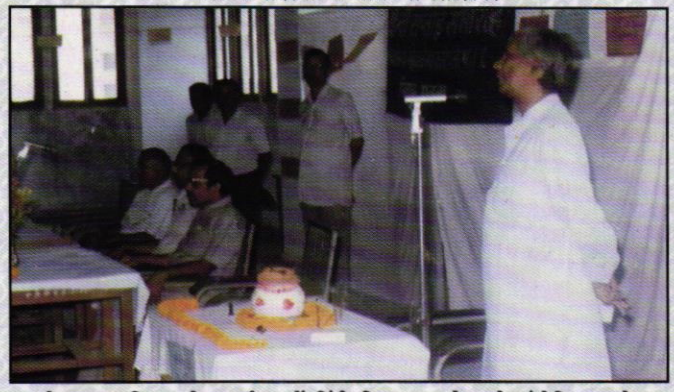

महालेखाकार, बिहार के कार्यालय में हिंदी दिवस समारोह को संबोधित करते हुए 'विचार दृष्टि' के संपादक श्री सिद्धेश्वर

श्री सिद्धेश्वर के हाइकु काव्य संग्रह 'पतझर की सांझ' को केंद्र में रखकर आयोजित विचार संगोष्ठी में बायें से मंचासीन डॉ. कुमार विमल, प्रो. सिद्धेश्वर प्रसाद, श्री जियालाल आर्य तथा कृतिकार श्री सिद्धेश्वर

मंच की बिहार इकाई के अध्यक्ष श्री जियालाल आर्य की पुस्तक 'समय शिला पर' के लोकार्पण के अवसर पर विचार व्यक्त करते हुए श्री सिद्धेश्वर

सरदार पटेल के 123वें जयंती-समारोह का दीप प्रज्ज्वलित कर उद्घाटन करते हुए रेल मंत्री श्री नीतीश कुमार तथा उनके दायें खड़े श्री सिद्धेश्वर

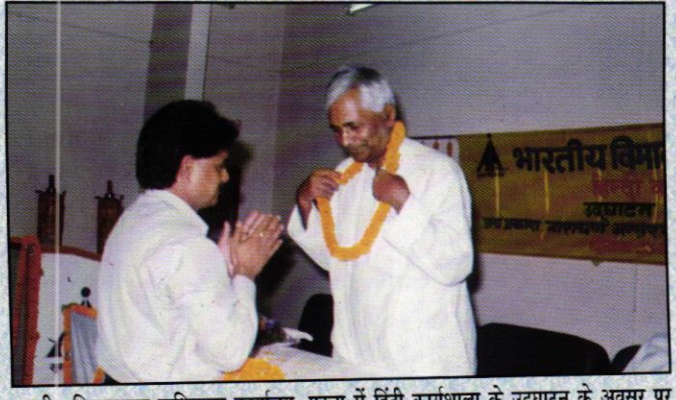


भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण कार्यालय, पटना में हिंदी कार्यशाला के उद्घाटन के अवसर पर मुख्य अतिथि श्री सिद्धेश्वर का स्वागत करते हुए प्रबंधक (राजभाषा) श्री शिवशंकर प्रसाद सिंह

बैंगलूर के अ.भा.भाषा साहित्य सम्मेलन में श्री सिद्धेश्वर को साहित्यश्री से सम्मानित करते महास्वामी डॉ. शांतावीर

पटना जिलांतर्गत फतुहा के जन साहित्य परिषद् की विचार संगोष्ठी में अध्यक्षीय भाषण प्रस्तुत करते हुए विचार दृष्टि के संपादक श्री सिद्धेश्वर

प्रहरी परिवार में परामर्शी के साथ संपादक मंडल के सदस्यगण

नई दिल्ली में राष्ट्रीय विचार मंच द्वारा नवंबर 2002 में
आयोजित अधिवेशन में सिद्धेश्वर जी के सहयोगी

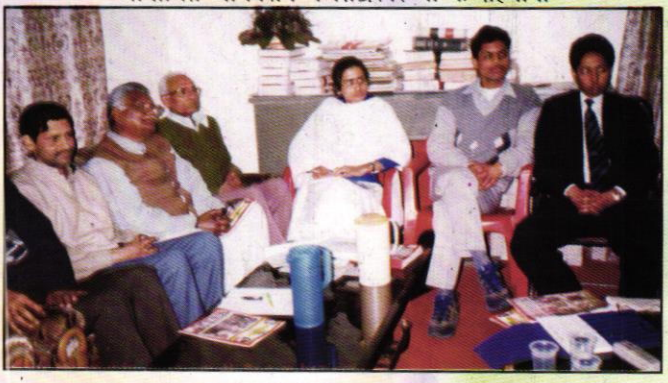

मंच की राष्ट्रीय कार्यकारिणी में विचार विर्मश करते सदस्यगण

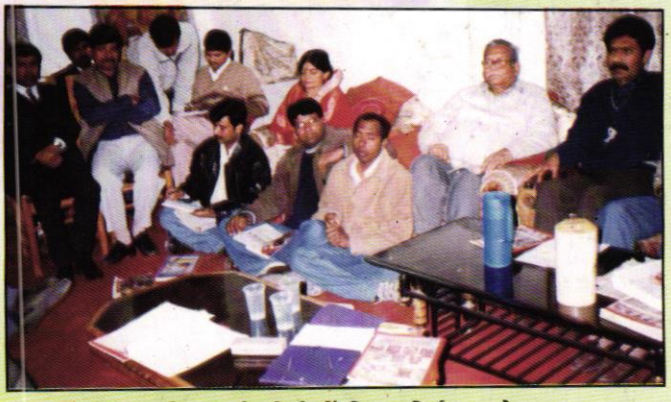

मंच की राष्ट्रीय कार्यकारिणी में विचार विर्मश करते सदस्यगण

चैन्नई की एक साहित्यिक संगोष्ठी में श्री सिद्धेश्वर एवं डॉ. एन चन्द्रशेखरन नायर को सम्मानित करते हुए डॉ बाल शौरि रेड्डी एवं उनके बगल में खड़े साहित्यकार श्री पी.के. बालासुब्रमण्यन

अपने मित्र साहित्यकार भाई 'तोमर' की पुण्य तिथि पर आयोजित संगोष्ठी को संबोधित करते श्री सिद्धेश्वर जी

नई दिल्ली के राजेन्द्र भवन में श्री सिद्धेश्वर जी के द्वारा आयोजित मंच के अधिवेशन में उपस्थित सुधी श्रोतागण

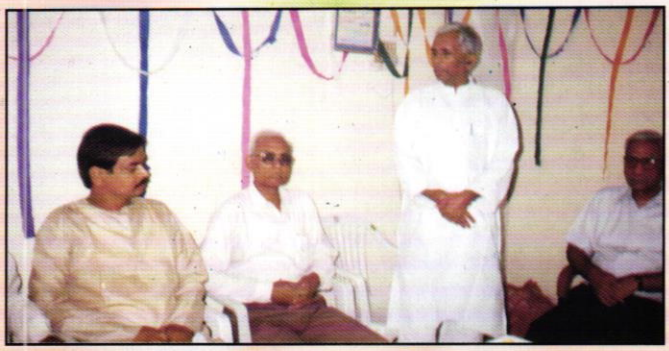

कार्यालय के उद्घाटन के अवसर पर संबोधित करते श्री सिद्धेश्वर जी

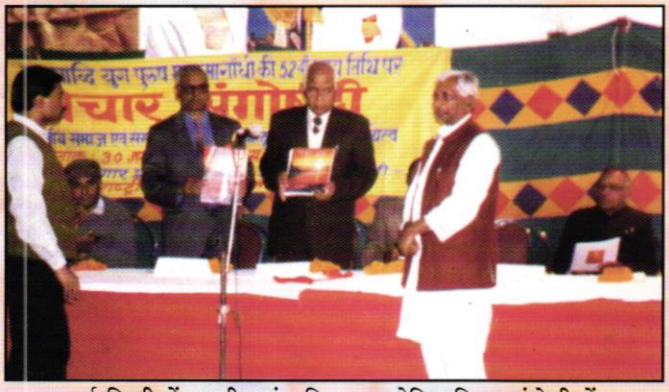

नई दिल्ली में भारतीय संस्कृति पर आयोजित विचार संगोष्ठी में
बायें से श्री जियालाल आर्य, डॉ विजय नारायण मणि त्रिपाठी एवं श्री सिद्धेश्वर जी

नई दिल्ली में आयोजित संगोष्ठी को संबोधित करते हुए श्री सिद्धेश्वर जी

मंच के राष्ट्रीश अधिवेशन में प्रो. के.डी. गंगराडे से प्रतीक चिन्ह प्राप्त करते श्री सिद्धेश्वर जी

राष्ट्रीय विचार मंच द्वारा महरौली में आयोजित सरदार पटेल जयंती के
अवसर पर राष्ट्रीय एकता रैली के सदस्यों का स्वागत करते
मुनिश्री सुखलाल के साथ पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि एवं डॉ. धर्मेंद्र नाथ अमन

बैंगलोर में मंच की कार्यकारिणी के पदाधिकारियों के बीच श्री सिद्धेश्वर जी

श्री कमला प्रसाद की पुस्तक के लोकार्पण समारोह में श्री सिद्धेश्वर जी

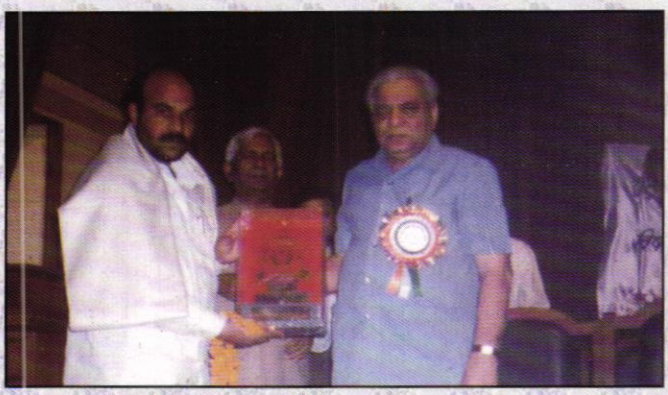

मंच के राष्ट्रीय अधिवेशन में मरणोपरांत बी.एल. यादव के 'विचार रत्न' का प्रतीक चिन्ह उनके प्रतिनिधि को प्रदान करते हुए श्री यू.सी. अग्रवाल एवं श्री सिद्धेश्वर जी

नई दिल्ली में सरदार पटेल की 129 वीं जयंती पर मंचासीन अतिथिवृंद के बीच श्री सिद्धेश्वर जी

महरौली के अध्यात्म साधना केंद्र में आयोजित सरदार पटेल जयंती समारोह में विषय को प्रस्तुत करते श्री सिद्धेश्वर जी

अणुव्रत भवन में सरदार पटेल जयंती पर राष्ट्रीय एकता रैली को रवाना करने के पूर्व पटेल की प्रतिमा पर माल्यार्पण करते श्री सिद्धेश्वर जी

सरदार जयंती समारोह में पधारे अतिथियों के बीच श्री सिद्धेश्वर जी

पटना की एक विचार संगोष्ठी में अतिथियों के बीच श्री सिद्धेश्वर जी

मंच के राष्ट्रीय अधिवेशन में शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पित करते
राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री अग्रवाल के साथ श्री सिद्धेश्वर जी

साहित्यकार स्व. तोमर की याद में प्रकाशित 'यादें' काव्य-संग्रह के लोकार्पण
के अवसर पर श्री सिद्धेश्वर जी

अहिंसा प्रशिक्षण की उपादेयता पर आयोजित संगोष्ठी में अतिथिवृंद के साथ श्री सिद्धेश्वर

जगराओं में अणुव्रत कार्यशाला को संबोधित करते हुए श्री सिद्धेश्वर जी

अणुव्रत भवन में अहिंसा समवाय की ओर से आयोजित अहिंसा प्रशिक्षण शिविर के प्रतिभागियों के बीच श्री सिद्धेश्वर

उपराष्ट्रपति निवास में गांधी दर्शन समिति (राष्ट्रीय, कोलकाता) द्वारा गांधी सेवा पुरस्कार के लिए आयोजित सम्मान समारोह में अतिथियों के साथ श्री सिद्धेश्वर

नई दिल्ली में सरदार पटेल के 129वें जयन्ती-समारोह के अवसर पर 'विचार दृष्टि' के 21वें अंक का लोकार्पण करते हुए अतिथियों के बीच श्री सिद्धेश्वर

श्री सिद्धेश्वर जी के पुत्र सुधीर रंजन एवं पुत्रवधू सुनीता रंजन

देशरत्न डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के 115 वें जयंती-समारोह में आयोजित विचार संगोष्ठी में आलेख पाठ करते हुए श्री सिद्धेश्वर

सरदार जयंती समारोह को संबोधित करते पद्म श्री डॉ श्याम सिंह शशि

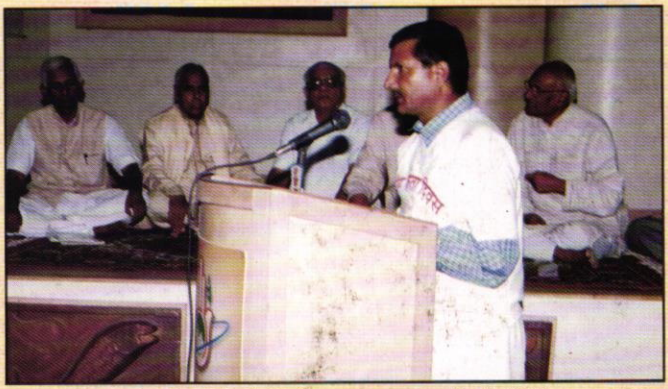

सरदार जयंती समारोह के अतिथियों के प्रति आभार प्रकट करते श्री मिथिलेश कुमार सिन्हा

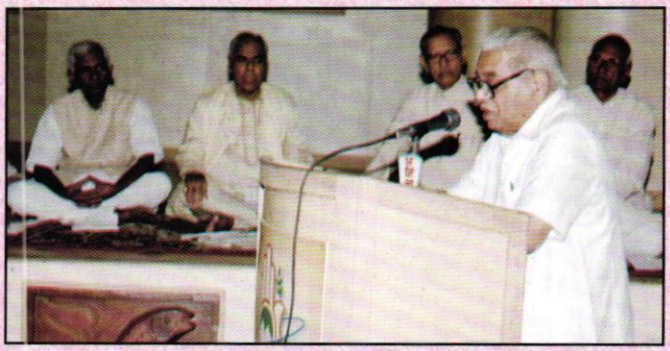

सरदार जयंती समारोह में अध्यक्षीय भाषण प्रस्तुत करते श्री यू.सी. अग्रवाल

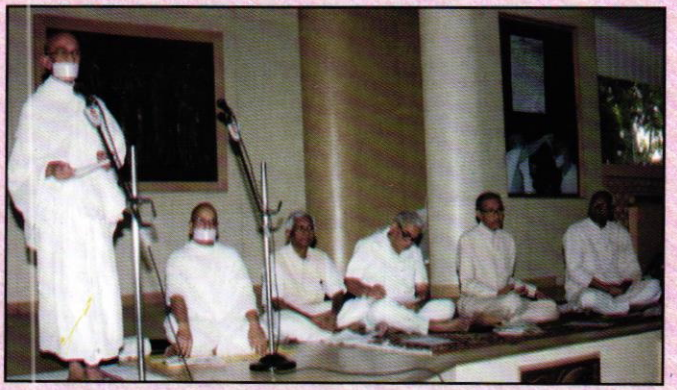

सरदार जयंती समारोह को संबोधित करते मुनिश्री सुखलाल जी

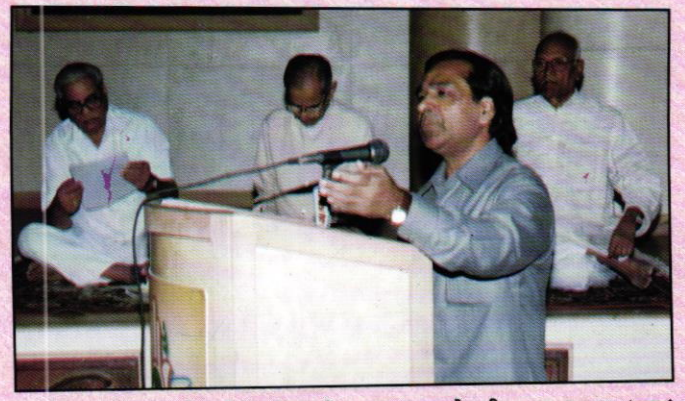

सरदार जयंती समारोह में राष्ट्रीय गीत प्रस्तुत करते श्री उदय कुमार 'राज़'

नई दिल्ली में सरदार जयंती समारोह के अवसर पर राष्ट्रीय एकता रैली

सरदार पटेल की 124 वीं जयंती पर आयोजित सेमिनार में
मंचासीन अथितिवृंद के साथ

अहिंसा समवााय द्वारा अणुव्रत भवन में आयोजित
अहिंसा प्रशिक्षण शिविर के प्रतिभागी

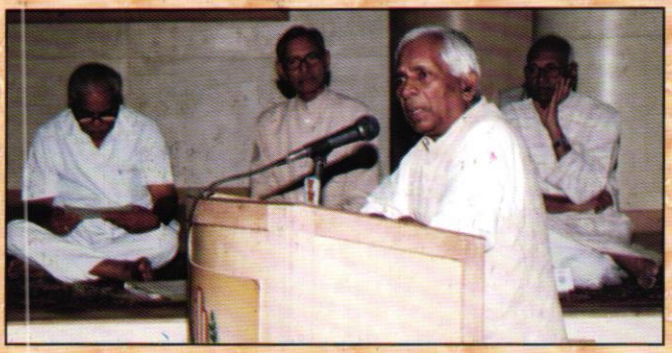

नई दिल्ली में सरदार जयंती समारोह को संबोधित करते श्री सिद्धेश्वर जी

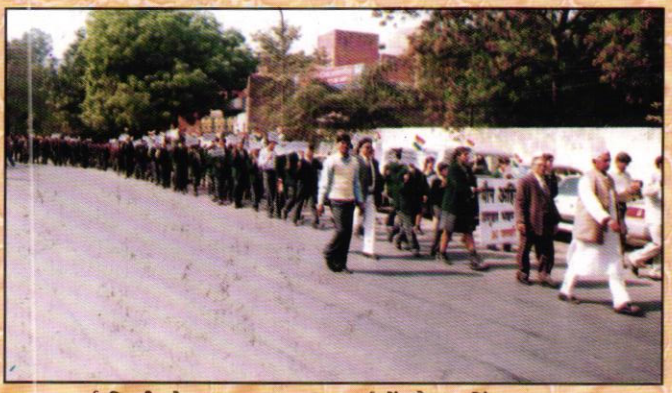

नई दिल्ली के बहादुरशाह जफर मार्ग में मौन अहिंसा यात्रा का
नेतृत्व कर रहे श्री सिद्धेश्वर जी

राजघाट पर बापू की समाधि की परिक्रमा करती मौन अहिंसा यात्रा के प्रतिभागी

अहिंसा प्रशिक्षण शिविर के प्रतिभागी को प्रमाण पत्र प्रदान करते श्री सिद्धेश्वर

अहिंसा प्रशिक्षण शिविर के प्रतिभागी को प्रमाण पत्र प्रदान करते श्री सिद्धेश्वर

अहिंसा प्रशिक्षण शिविर के प्रेक्षाध्यान में भाग लेते श्री सिद्धेश्वर जी

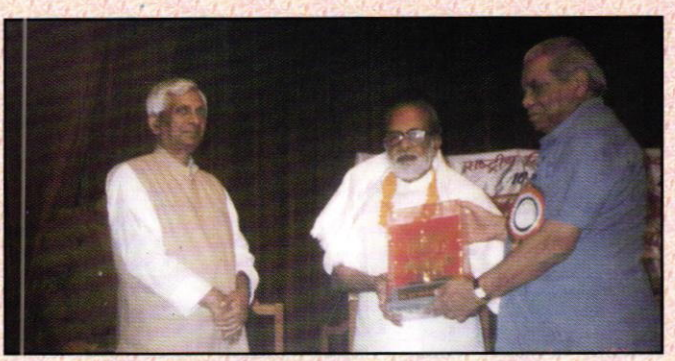

मंच के राष्ट्रीय अधिवेशन में 'विचार श्री' से डॉ. एन चन्द्रशेखरन नायर को सम्मानित करते अध्यक्ष श्री यू.सी. अग्रवाल के साथ श्री सिद्धेश्वर जी

सरदार पटेल की 123 वीं जयंती पर मंचासीन अतिथिवृंद

पंजाब के जगराओं में अणुव्रत कार्यशाला में भाग लेते हुए श्री सिद्धेश्वर

# खण्ड : पाँच

# सांगठनिक क्रियाकलाप

पटेल सेवा संघ, बिहार की राज्य कार्यकारिणी के पदाधिकारी एवं सदस्य बैठे हैं, बाये से तीसरे प्रो. राम बुझावन सिंह, डॉ. पी. दयाल तथा स्व. भोला मांडर और खड़ी पंक्ति में सिद्धेश्वर दायें से दूसरे हैं।

सरदार पटेल के 107वें जयंती-समारोह के अवसर पर पटेल सेवा संघ के पदाधिकारियों एवं कार्यकर्त्ताओं के बीच महासचिव सिद्धेश्वर

# संगठन से लगाव

## संगठन का औचित्य

जब व्यक्ति के नियम, सिद्धांत और उद्देश्य में समानता होती है, रचनात्मक दिशा में गतिशीलता होती है, तब मंजिल कदम चूमने लगती है। इस मिले-जुले प्रयास की कार्यसंस्कृति के सुगठित स्वरूप को संगठन कहते हैं। यह संगठन सुख के साथ-साथ बोझिल दु:ख को भी बाँटने का कार्य करता रहता है। यही नहीं, बल्कि यह समस्याओं के निराकरण में भी विशेष योगदान देता रहता है। हमसब इस बात से अवगत हैं कि बहेलिये के षड्यंत्रपूर्ण जाल को खगवृंद ने मिलकर सामूहिक प्रयास से उड़ाकर विफल किया था, खगवृंद के सामूहिक प्रयास ने सभी पक्षियों की जान बचायी, जो आज भी प्रासंगिक है। यही बात समाज व देश के वासियों के साथ भी लागू होती है। आज समाज तथा देश के समक्ष जो चुनौतियाँ खड़ी हैं, उनका मुकाबला इसके वासियों को मिलजुल कर करना है। देशवासियों के सामूहिक प्रयास से ही इसकी समस्याओं का समाधान निकल सकता है। यहीं संगठन की आवश्यकता महसूस होती है। लक्ष्य प्राप्ति का श्रेय समूचे संगठन को जाता है, संगठन के प्रत्येक सदस्य को जाता है।

समाज कार्यसंस्कृति से प्राणवान और दीर्घजीवी होता है। किंतु संगठन की महत्ता को सार्थकता प्रदान करने के लिए उसके सदस्यों की गुणवत्ता, रचनात्मक दृष्टि, कर्तव्यपरायणता, निष्ठा, समयबद्धता इत्यादि आवश्यक हैं। *'सतां संगति: सत्संगति: कथ्यते'* अर्थात् अच्छी संगति का परिणाम तो सुखद होता ही है। इस दृष्टि से सिद्धेश्वर जी ने अपने जीवन में संगठन और उसके सदस्यों की गुणवत्ता पर काफी जोर दिया है तथा सत्संगति के परिणाम को सुखद बताया है। आपने देखा होगा कि जब ये पटेल सेवा संघ, बिहार के महासचिव थे, तब भी और जब आज राष्ट्रीय विचार मंच के अखिल भारतीय महासचिव के पद पर विराजमान हैं, तब भी रचनात्मक दृष्टि एवं अपने आचार-विचार के साथ-साथ समयबद्धता का ख्याल रखते हैं। गुणवत्तासुधार में निरंतरता बनाये रखने की इनकी कोशिश प्रशंसनीय है। उत्कृष्ट कार्यसंस्कृति को विकसित करने में ये अनवरत

प्रयासरत हैं। मंच के मुखपत्र *'विचार दृष्टि'* के नियमित प्रकाशन में भी ये सतत सजग हैं। आखिर तभी तो इनकी यह पत्रिका प्रारंभ से ही बिल्कुल समय पर प्रकाशित होती रही है। इसके पाठक भी इसके नियमित प्रकाशन तथा संपादक की समयबद्धता के कायल हैं।

सिद्धेश्वर जी का मानना है कि देश की बढ़ती हुई विपन्नावस्था में राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली से लेकर राज्यों की राजधानियों के लोगों की शान-शौकत और रहन-सहन अँग्रेजी सत्तासीनों जैसी रही है। जनता के सामने त्याग का आदर्श नहीं रहा, जिसकी बदले हुए वक्त में बहुत आवश्यकता थी। आजादी के बाद राजनीतिक परिवर्तन तो हुआ, परंतु देश के कारोबार में बहुत कुछ पुरानी परंपरा ही चल रही है। लोग भोग की व धन संग्रह की ओर ही झुके हुए हैं। वस्तुएँ अधिक महँगी होने की वजह से ऊँचे आदर्श के अभाव में भ्रष्टाचार और घोटाले की तरफ बढ़ने में लोगों को संकोच नहीं रहा।

आज पूरे देश में जिस तरह भ्रष्टाचार का बोलबाला है, ऐसे में चुपचाप बैठे रहना भी दोष है। पुरुषार्थ इसी में है कि कोई साथ न दे तो भी मनुष्य दुष्टता का मुकाबला अकेले ही करे, परंतु प्राय: अकेला आदमी उतना साहस नहीं कर सकता। अकेले आदमी के प्रयास का सफल होना भी कठिन होता है। जैसे गुण, बल में शक्ति होती है, वैसे ही जनाधार पाकर दोष भी शक्तिशाली बन जाता है। सामूहिक दोष के आगे व्यक्तिगत गुण का टिकना मुश्किल हो जाता है, इसलिए संगठन की आवश्यकता होती है जिसके लिए व्यवस्थित प्रयास करने की जरूरत होती है। इसी भाव से प्रेरित होकर सिद्धेश्वर जी संगठन की आवश्यकता पर बल देते हैं और स्वयं भी संगठन से लगाव रखते हैं। आधुनिक युग में तो सामाजिक कल्याण के लिए संगठन अनिवार्य है। कहा भी गया है- संघे शक्ति: कलियुगे।

## विद्यार्थी जीवन में संगठन से लगाव

कॉलेज जीवन से ही सिद्धेश्वर जी ने संगठन में अभिरुचि लेना प्रारंभ कर दिया था। जब ये पटना कॉलेज में स्नातक के छात्र थे, तभी एनसीसी में इन्होंने सक्रिय रूप से भाग लिया और अपनी कर्मठता और निष्ठा के चलते इन्हें एनसीसी का सर्वोच्च 'सी' सर्टिफिकेट मिला। इसी अवधि में इन्हें पटना कॉलेज स्थित एनसीसी क्लब का आजीवन सदस्य मनोनीत किया गया। कॉलेज के दिनों में सांस्कृतिक एवं अन्य आउटडोर सक्रियता के चलते इन्हें पटना कॉलेज की ओर से सम्मान के रूप में 'कॉलेज कलर' प्रदान किया गया।

जब ये पटना विश्वविद्यालय के श्रम एवं समाज कल्याण विभाग में

स्नातकोत्तर के छात्र हुए, तब भी इन्होंने अपनी सक्रियता कायम रखी और जिसका नतीजा हुआ कि इन्होंने पटना विश्वविद्यालय छात्रसंघ में अपने विभाग की ओर से छात्र के रूप में प्रतिनिधित्व किया और संघ में अपनी अहम भूमिका निभायी।

## सेवाकाल में संगठन

सन् 1962 के अंत में सिद्धेश्वर जी ने स्नोतकोत्तर डिग्री हासिल करने के बाद सन् 1963 में मात्र छह माह तक भारतीय रेल के दक्षिण पूर्व रेलवे के वाणिज्यिक विभाग में रहे, जहाँ इनका पदस्थापन राउरकेला इस्पात संयंत्र के भीतर रेलवे प्लेटफार्म पर बतौर रेलवे प्रतिनिधि के रूप में किया गया था। इस अवधि में इन्हें जो दायित्व सौंपा गया वह यह था कि स्टील प्लांट का जो सामान रेलवे से आता था, प्लेटफार्म पर उतारे जाने के बाद इनकी उपस्थिति में जो सामान गायब अथवा टूटा-फूटा पाया जाता था तो उसका प्रमाणपत्र इन्हें निर्गत करना पड़ता था ताकि राउरकेला इस्पात संयंत्र को उसके दावे का भुगतान हो सके। इस बीच रेलवे में भ्रष्टाचार को देखकर इन्होंने नौकरी छोड़ने का मन बनाया और विभिन्न विभागों की प्रतियोगिता परीक्षाओं में ये बैठने लगे। इनकी मेहनत काम आयी और भारतीय लेखा एवं लेखापरीक्षा विभाग में इनका चयन हो गया। 20 अप्रैल 1964 को इन्होंने विभाग के राँची स्थित महालेखाकार कार्यालय में लेखापरीक्षक के पद पर अपना योगदान किया। संयोग ऐसा कि वहाँ के संघ के पदाधिकारियों एवं कार्यकारिणी के सदस्यों के चुनाव के लिए उम्मीदवारों द्वारा नामांकन दाखिल करने की अंतिम तिथि भी वही थी जिस दिन इन्होंने कार्यालय में पदभार ग्रहण किया। हुआ यों कि नियुक्तिपत्र प्रशासन शाखा में सुपूर्द करने के बाद मध्याह्न में कार्यालय परिसर में चक्कर लगाने के दौरान बिहार सिविल ऑडिट एण्ड एकाउन्ट्स ऑफिस एसोसियेशन के सूचना पट पर इनकी नजर पड़ गयी, जहाँ इन्होंने निर्वाचन अधिकारी द्वारा जारी चुनाव की अधिसूचना देखी और संघ की कार्यकारिणी सदस्य के लिए इन्होंने नामांकन दाखिल कर दिया। फिर क्या था, लगे चुनाव प्रचार करने। इस संदर्भ में एक बात का यहाँ उल्लेख कर देना जरूरी है कि सिद्धेश्वर जी छात्र जीवन से ही खादी का कुर्ता-पायजामा पहनने के आदी थे और रहन-सहन और पहनावे की यह आदत सेवावधि में भी बरकरार रही। कुर्ते-पायजामे में ही इन्होंने प्रचार अभियान प्रारंभ किया और वह भी अकेले-अकेले। बातचीत का ढंग इनका शुरू से अलग था और वक्तृत्व कला के ये धनी तो शुरू से थे ही, सो लोगों का मन जीतने में ये सफल रहे और चुनाव जीतकर संघ की कार्यकारिणी के सदस्य हो गये।

यहीं से चला संघ चलाने का इनका सिलसिला। तब से लगातार बिहार सिविल ऑडिट एण्ड एकाउन्ट्स ऑफिस एसोसियशन की कार्यकारिणी के विभिन्न पदों पर रहकर कर्मचारियों की व्यथा-कथा को उच्चाधिकारियों के समक्ष प्रस्तुत कर उसके समाधान का प्रयास ये करते रहे। एक बार जब संघ संक्रमणकाल के दौर से गुजर रहा था, सिद्धेश्वर जी ने उसके कोषाध्यक्ष के पद पर आसीन होकर संघ की आर्थिक स्थिति को रास्ते पर ला खड़ा किया, जिसकी सराहना इनके सहकर्मियों ने मुक्त कंठ से की।

राँची के अपने सेवाकाल में ही वहाँ की अन्य सांस्कृतिक एवं सामाजिक गतिविधियों में भी सिद्धेश्वर जी ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। इसी क्रम में नगर के *'मगध संघ'* के कार्यकलाप में भाग लेकर उसके कार्यक्रमों को इन्होंने अमली जामा पहनाया। इसी बीच सिद्धेश्वर जी इंडियन ऑडिट एण्ड एकाउन्ट्स डिपार्टमेंट द्वारा आयोजित सबोर्डिनेट एकाउन्ट्स सर्विस (S.A.S.) की अखिल भारतीय प्रतियोगिता परीक्षा में बैठे और अल्पावधि में ही उसके दोनों भागों में उत्तीर्ण हुए। इनकी इस सफलता के पीछे की भी एक अलग कहानी है। हुआ यह कि संघ के कोषाध्यक्ष पद पर रहने के दौरान सिद्धेश्वर जी को बहुत व्यस्त रहना पड़ता था। संघ के प्रति निष्ठा के चलते उसके संचालन का दारोमदार इनके ही कंधों पर था, सो परीक्षा की तैयारी के लिए इन्हें बहुत कम समय मिलता था। यह तो कहिए कि इनके सहकर्मियों में रामविलास साहू, श्याम किशोर प्रसाद, आर० डी० राय सरीखे कुछ ऐसे हमदर्द थे कि उनका अपेक्षित सहयोग इन्हें भरपूर मिला। खासतौर पर रामविलास साहू ने अपनी पूरी लगन व क्षमता से इन्हें परीक्षा की तैयारी कराने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ रखी। यहाँ तक कि कभी-कभी सिद्धेश्वर जी संघ की बैठक अथवा उसके कार्यों को निपटाने में संघ-कार्यालय के बंद कमरे में व्यस्त रहते थे तो श्री साहू कोई-न-कोई बहाने से इन्हें पढ़ने के लिए बुला लिया करते थे। एक बार तो उन्होंने अपनी अस्वस्थ पत्नी को अस्पताल ले जाकर इलाज कराने का बहाना बनाया और संघ के अध्यक्ष, महासचिव से सिद्धेश्वर जी को बैठक से छुट्टी दिलवायी। जब दोनों डोरंडा के निवास पर पहुँचे, तो श्री साहू जी की धर्मपत्नी को बिल्कुल स्वस्थ पाकर सिद्धेश्वर जी दंग रह गये। सिद्धेश्वर जी ने साहू से पूछा- 'इस तरह का मजाक आपने क्यों किया?', तो जवाब मिला, परीक्षा की तैयारी करने के ख्याल से ही दोनों पति-पत्नी ने इस तरह बहानेबाजी की योजना बनायी थी। सच मानिए, श्री साहू की धर्मपत्नी भी ऐसी व्यवहारकुशल महिला हैं कि सिद्धेश्वर जी का मन उन्होंने मोह लिया था। दोनों की गाढ़ी मित्रता का यह भी कारण था और यह परस्पर था, क्योंकि सिद्धेश्वर जी की पत्नी की सदाशयता ने भी दोनों की दोस्ती को प्रगाढ़ बनाया। परीक्षा की तैयारी के बीच

बारी-बारी से दोनों की धर्मपत्नियाँ चाय और नाश्ते का लगातार इंतजाम करती रहीं और इन दोनों की पढ़ाई चलती रही। रामविलास जी पुस्तकों का पाठ करते और सिद्धेश्वर जी उसे बड़े मनोयोग से सुनकर बाद में दोनों एकाउन्ट्स तथा ऑडिट की गुत्थियों को विचार-विमर्श कर सुलझाते। इस सिलसिले में सहकर्मी श्याम किशोर प्रसाद तथा आर० डी० राय का सहयोग यह रहा कि कार्यालय अवधि में तीनों सम्मिलित रूप से किसी-न-किसी विषय पर उत्पन्न समस्याओं पर चर्चा करते और उनका निदान ढूँढ़ते।

यहाँ यह कहना भी यथोचित होगा कि राँची में अपने सेवाकाल के दौरान सिद्धेश्वर जी को इनसे दो वर्ष वरिष्ठ राजेन्द्र प्रसाद सिन्हा का बड़े भाई-सा स्नेह और मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। सच तो यह है कि सन् 1964 से सन् 1973 के नवंबर तक न केवल महालेखाकार कार्यालय के सभी सहकर्मी, अपितु डोरंडा और उसके आसपास के सभी शुभेच्छु इन दोनों को सहोदर भाई ही समझते रहे। कारण कि दोनों जहाँ भी रहे एक ही फ्लैट में रहे। यहाँ तक कि दोनों का खाना एक ही रसोईघर में बनता था। जहाँ सिद्धेश्वर जी श्री सिन्हा जी को अपने अग्रज-सा सम्मान देते थे वहीं श्री सिन्हा जी से अनुज-सा स्नेह भी सिद्धेश्वर जी को मिला। लोगों को पता ही न चला कि दोनों भाई नहीं हैं। यह राज तब खुला जब महालेखाकार कार्यालय का कुछ भाग पटना स्थानांतरित होने के पश्चात सिद्धेश्वर जी का तबादला पटना हो गया। साउथ आफिस पाड़ा के 'घटक निवास' से सिद्धेश्वर जी जब पटना जाने की तैयारी कर रहे थे, तब इनकी पत्नी से मकान मालकिन श्रीमती घटक तथा उनके परिवार के सदस्यों को यह जानकर बड़ा सुखद आश्चर्य हुआ कि ये दोनों न केवल अपने भाई नहीं हैं, दूर के रिश्तेदार भी नहीं हैं। एक जमाना वह था जब भाई-रिश्तेदार भी न होने पर दोनों ने सहोदर भाई सरीखे लगभग एक दशक बिताया और आज भी दोनों का पारिवारिक संबंध अत्यंत गहरा है। दोनों एक-दूसरे का सम्मान करते हैं। क्या आज की नयी पीढ़ी अपने पूर्वजों या बुजुर्गों से इन दोनों की आत्मीयता का अनुकरण कर पाएगी ? रिश्ता निभाने की अनोखी मिसाल इन दोनों ने जो कायम की वह भावी पीढ़ी के लिए पथ-प्रदर्शन का काम करेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

राँची में सेवाकाल के दौरान सिद्धेश्वर जी वहाँ की साहित्यिक संस्था *'गुंजन गोष्ठी'* से जुड़कर अपनी साहित्यसेवा की शुरुआत की। तत्कालीन कारखाना निरीक्षक आत्मानंद जी के संयोजकत्त्व में चल रही *'गुंजन गोष्ठी'* के प्राय: सभी साहित्यिक कार्यक्रमों में भागीदारी देकर वे नगर के कई सुप्रसिद्ध साहित्यकारों व लेखकों के संपर्क में आये, उनमें कवि रामकृष्ण उन्मन का नाम सर्वोपरि है। उनके सान्निध्य में रहकर इन्हें साहित्य की कई गुत्थियों को समझने

का अवसर मिला।

राँची कार्यालय से जब सिद्धेश्वर जी का पटना के महालेखाकार कार्यालय में स्थानांतरण हुआ, तब तक एस० ए० एस० परीक्षा के नतीजे आ गए थे और सिद्धेश्वर जी उस परीक्षा में सफल होकर पटना के कार्यालय में अनुभाग अधिकारी के पद पर पदोन्नति पायी। पटना महालेखाकार कार्यालय में बिहार सिविल ऑडिट एण्ड एकाउन्ट्स एसोसियेशन की शाखा का जब गठन हुआ तो सिद्धेश्वर जी उसके संस्थापक अध्यक्ष निर्वाचित हुए और फिर उस पद पर तब तक रहे, जब तक ऑडिट ऑफिसर के पद पर इनकी प्रोन्नति न हो गयी। इनकी इस अवधि में ही भारतीय रेल के कर्मचारियों ने अपनी माँगों की पूर्ति के लिए हड़ताल की और अन्य केंद्रीय कर्मचारियों से सहयोग करने का आह्वान किया गया। बस क्या था, सिद्धेश्वर जी के नेतृत्व में संभवत: 10 जून 1974 को अन्य केंद्रीय कर्मचारियों के साथ महालेखाकार कार्यालय के कर्मचारी भी एक दिन की सांकेतिक हड़ताल पर चले गये। अनुभाग अधिकारी के पद पर रहकर भी सिद्धेश्वर जी इस हड़ताल को पूरी तरह सफल बनाएँगे, इस बात को लेकर लोगों में ऊहा-पोह की स्थिति थी और हड़ताल के सफल होने में लोगों का संदेह था। किंतु यह जानकर आपको आश्चर्य होगा कि सिद्धेश्वर जी की निष्ठा और कर्मचारियों के प्रति लगाव के चलते हड़ताल शत-प्रतिशत सफल रही। इंटेलिजेंसवाले अधिकारी चाहकर भी सिद्धेश्वर जी को गिरफ्तार नहीं कर पाये, क्योंकि इनके सहकर्मियों का पूरा सहयोग इन्हें प्राप्त था। इन्होंने अपनी पूरी सूझबूझ से कर्मचारियों के हित को ध्यान में रखते हुए हड़ताल को सफल बनाने में अपनी कुशलता का परिचय दिया। दूसरे दिन कर्मचारी नेताओं पर अधिकारियों द्वारा कहर ढाया जाने लगा और एक-एंक कर 16 नेताओं को निलंबित किया गया, जिनमें सिद्धेश्वर जी भी एक थे। और लोगों के साथ इनपर भी कर्मचारियों को भड़काने का आरोप लगा तथा तत्कालीन वरीय उपमहालेखाकार वाई० मोहन को इनके विरुद्ध लगाये गये आरोपों की जाँच की जिम्मेदारी दी गयी। एक दिन अकस्मात् या यों कहिए कि संयोगवश उनसे जब सिद्धेश्वर जी की मुलाकात कार्यालय परिसर में हो गयी, तो उस उच्चाधिकारी ने इन्हें अपने कार्यालय कक्ष में बुलाया और इन पर लगे आरोपों के बारे में जब इनसे बात करने लगे, तब सिद्धेश्वर जी ने जाँच अधिकारी से स्पष्ट कहा--"आप इन आरोपों की जाँच के लिए स्वतंत्र हैं, किंतु इस संबंध में कृपया मुझसे कुछ भी चर्चा न करें तो शायद अच्छा होगा।" मसलन सिद्धेश्वर जी चाटुकारिता को बिल्कुल पसंद नहीं करते थे, सो इन्हें मक्खन लगाना मंजूर नहीं हुआ। नतीजा यह हुआ कि इन पर लगे आरोप सिद्ध नहीं होने के बावजूद अपनी रिपोर्ट में उन्होंने पाँच प्रतिशत

काटकर इन्हें वेतन भुगतान करने की बात कही। किंतु इस आशय का आदेश महालेखाकार से प्राप्त होने के पश्चात् जब सिद्धेश्वर जी ने वेतन लेने से इनकार करते हुए इस फैसले के विरुद्ध अदालत का दरवाजा खटखटाने की अनुमति माँगी, तो एक माह के भीतर ही वेतन में बिना कटौती किये इन्हें पूर्ण भुगतान का आदेश निर्गत कर दिया गया।

इस संदर्भ में एक और मजेदार कहानी की चर्चा करना यथोचित इस मायने में होगा कि उससे इनके स्वाभिमानी होने की बात झलकती है। हुआ यों कि जब इनके निलंबन की अवधि लगभग एक वर्ष होने को थी, तो एक दिन उसी अवधि में कार्यालय के मनोरंजन क्लब के पदाधिकारियों के चुनाव में मतदान के लिए सिद्धेश्वर जी पटना के श्रीकृष्णपुरी स्थित आजाद भवन गये हुए थे, जहाँ से कार्यालय का प्रशासन चलता था और उन दिनों श्री गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव प्रशासन के उपमहालेखाकार के पद पर आसीन थे। विदित हो कि श्री श्रीवास्तव बाद में इलाहाबाद में महालेखाकार हुए, फिर प्रोन्नति के पश्चात् एडिशनल डिप्टी सी० ए० जी और बाद में केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण (CAT) की अहमदाबाद बेंच में सदस्य (प्रशासन) के पद को उन्होंने सुशोभित किया। अक्टूबर 2003 में इन्होंने इस पद से अवकाश ग्रहण किया। हाँ तो, श्री श्रीवास्तव जी, जो उन दिनों केंद्रीय कर्मचारियों की हड़ताल की अवधि में उपमहालेखाकार (प्रशासन) थे, ने अपने कार्यालय कक्ष में इन्हें बुलाकर कहा--'सिद्धेश्वर जी, क्या आप अपना रिइंस्टेटमेंट नहीं चाहते हैं?' 'नहीं चाहते तो नौकरी ही क्यों करता ?' इन्होंने उन्हें उत्तर दिया। इन्होंने पुन: कहा कि मैं कल भी नौकरी में योगदान दे सकता हूँ। सिद्धेश्वर जी ने उन्हें फिर कहा कि जब तक सभी पंद्रहों निलंबित सहकर्मी नेताओं का निलंबन समाप्त नहीं हो जाता और रिइंस्टेटमेंट आदेश की चिट्ठी नहीं मिल जाती, मैं नौकरी में नहीं आ सकता। इसके बाद उपमहालेखाकार ने इनसे कहा, 'क्या आपको पैसे की जरूरत नहीं है?' इन्होंने कहा--'पैसे की जरूरत किसे नहीं होती, यदि जरूरत नहीं होती तो मैं नौकरी में आता ही क्यों ? हाँ, इतना जरूर है कि जितने पैसे की मुझे जरूरत है उससे कहीं अधिक निर्वाह भत्ता के रूप में उतना अभी भी मिल रहा है।' प्रशासन में तो वे थे ही, तुरंत उन्होंने वेतन रजिस्टर मंगाकर देखा, तो सचमुच नौकरी में रहने की अपेक्षा निलंबन की अवधि में इन्हें अधिक राशि का भुगतान हो रहा था। दरअसल असलियत यह थी कि नौकरी की अवधि में सिद्धेश्वर जी अपने वेतन से सामान्य भविष्य निधि (जीपीएफ) में नियमानुसार निर्धारित राशि से कहीं अधिक राशि जमा करते थे और नियमानुसार निलंबन की अवधि में जी० पी० एफ० की राशि की कटौती नहीं की जाती है। नतीजा यह था कि निलंबन की

अवधि में ही अधिक रकम का भुगतान होता था। ऐसी स्थिति में सिद्धेश्वर जी ने अपने उपमहालेखाकार (प्रशासक) से कहा कि अब भला आप ही बताइए कि बिना नौकरी पर रहे नौकरी की अवधि से अधिक राशि पाकर कौन नौकरी में आना चाहेगा। यही नहीं, सभी निलंबित नेताओं को निलंबन की अवधि में संघ की ओर से एक निर्धारित राशि का भुगतान किया जाता था, ताकि उनका मनोबल गिरे नहीं। सिद्धेश्वर जी इसका भी लाभ स्वयं नहीं उठाकर अन्य निलंबित साथियों को अधिक राशि का भुगतान करते थे। इन सबों के बावजूद सिद्धेश्वर जी ने जब अपने उपमहालेखाकार को यह बताया कि मेरे निलंबन के बाद मेरे पूज्य पिताजी को सबसे अधिक खुशी हुई थी, कारण कि वे भी सामाजिक मानसिकता के थे। इसलिए उन्हें इस बात की प्रसन्नता थी कि उनका सुपुत्र कोई भ्रष्टाचार के मामले में नहीं, बल्कि अपने केंद्रीय कर्मचारियों की जायज माँगों के लिए तथा उनपर दबाव बनाने के लिए हड़ताल पर गया था और उसी कारण से इन्हें निलंबित किया गया था। फिर, वे किसान परिवार के होने के नाते स्वयं भी स्वाभिमानी थे और सिद्धेश्वर जी को भी यह गुण विरासत में मिला था।

सिद्धेश्वर जी की धर्मपत्नी श्रीमती बी० प्रसाद को अपने पति के निलंबन के बाद यह जानकर खुशी हुई कि उन्हें घर-गृहस्थी के संचालन के लिए अब अधिक पैसे मिल सकेंगे। इन सभी तर्कों व तथ्यों की जानकारी के पश्चात् उपमहालेखाकार का आश्चर्यचकित होना स्वाभाविक था। मन-ही-मन वे इसलिए प्रसन्न हुए कि उनके साथ काम करनेवाले ऐसे भी स्वाभिमानी तथा स्वार्थ से परे अधिकारी हैं जिनके मन में त्याग की भावना है और संघ तथा अपने सहकर्मियों के लिए समर्पण का भाव है। सिद्धेश्वर जी के प्रति श्री गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव के हृदय में सम्मान और स्नेह का भाव संभवत: उसी अवधि से जगा, जो आज तक बरकरार है। आखिर तभी तो दिल्ली स्थित भारत के नियंत्रक-महालेखा परीक्षक (CAG) के कार्यालय में (सीएजी) अपर उपनियंत्रक-महालेखा परीक्षक के उच्च पद पर रहकर भी सिद्धेश्वर जी द्वारा स्थापित राष्ट्रीय चेतना के वैचारिक *'राष्ट्रीय विचार मंच'* की राष्ट्रीय कार्यकारिणी के न केवल संरक्षक पद को उन्होंने स्वीकारा, बल्कि दिल्ली तथा अहमदाबाद में रहकर मंच को सदैव संरक्षण प्रदान किया और सिद्धेश्वर जी ने हमेशा उनका मार्गदर्शन प्राप्त किया तथा आज भी कर रहे हैं। संप्रति वे *'विचार दृष्टि'* पत्रिका के संपादकीय सलाहकार हैं। इसके अतिरिक्त मंच के मुखपत्र *'विचार दृष्टि'* को वे रचनात्मक सहयोग दे रहे हैं। यही नहीं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती नीरजा श्रीवास्तव भी अपनी रचनाएँ मुहैया कराकर उसे रचनात्मक सहयोग भी दे रही हैं। सिद्धेश्वर जी

प्रशासन और साहित्य के वैसे शख्सियत को अपने बीच पाकर गर्व का अनुभव करते हैं, क्योंकि वैसे सशक्त एवं यशस्वी हस्ताक्षर संगठन और साहित्य को विरले ही मिलते हैं।

खैर जो हो, अंततः सिद्धेश्वर जी ने अपने निलंबन समाप्ति के पश्चात् नौकरी के साथ-साथ संघ के अध्यक्ष पद को पुनः संभाला और लगातार तब तक उस पद पर बने रहे जब तक कि इनकी प्रोन्नति लेखापरीक्षा अधिकारी के पद पर न हो गयी। इस बीच जब विभाग ऑडिट और एकाउन्ट्स दो भागों में बँटा तो सिद्धेश्वर जी ने कई कारणों और अपने स्वभाव की वजह से ऑडिट में रहना स्वीकार किया। इस बीच बिहार राज्य लेखापरीक्षा से संबंधित बिहार राज्य के सभी केंद्रीय कर्मचारियों व अधिकारियों द्वारा गठित ऑडिट कोऑर्डिनेशन कमेटी, बिहार, पटना के संस्थापक अध्यक्ष पद पर सिद्धेश्वर जी आसीन हुए और इसका सफल संचालन इन्होंने कई वर्षों तक किया, जिसमें इन्हें अपने सहृदय सहकर्मी मनु सिंह का सराहनीय सहयोग मिला। इसके बाद इन्हें ऑडिट ऑफिसर्स एसोसियेशन का पदाधिकारी बनाया गया। फिर कुछ ही वर्षों के पश्चात् आल इंडिया ऑडिट आफिसर्स एण्ड सिनियर ऑडिट आफिसर्स एसोसियेशन के सिद्धेश्वर जी ज्वांयट सेक्रेटी जनरल निर्वाचित हुए, जिस पद पर रहकर इन्होंने न केवल संघ की गरिमा को बढ़ाया, बल्कि अपनी एक अलग पहचान भी बनायी और उस पद पर ये स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के पूर्व तक बने रहे।

## पटेल सेवा संघ

राँची से पटना के महालेखाकार कार्यालय में स्थानांतरित होते ही सिद्धेश्वर जी लौहपुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल की यादगार को बिहारवासियों के दिल में ताजा रखने के ख्याल से सन् 1972 ई० में गठित गैरसरकारी एवं गैर-राजनीतिक राज्य स्तरीय स्वैच्छिक संगठन '*पटेल सेवा संघ*' की गतिविधियों से जुड़ गये और कुछ ही वर्षों में इन्होंने अपनी सक्रियता के बल पर उसकी राज्य कार्यकारिणी के विभिन्न पदों पर रहकर उसके कार्यकलाप को गति प्रदान की जिसका प्रतिफल यह हुआ कि सन् 1980 में इन्हें संघ के महासचिव पद पर निर्वाचित किया गया। कहना नहीं होगा कि आज जिस प्रकार देश के महापुरुषों, जिन्होंने स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लेकर अपना सब कुछ न्योछावर कर दिया, को अपनी जातीय सीमा में घसीट कर उन्हें बौना बनाने का प्रयास विभिन्न संगठनों द्वारा किया जा रहा है, सिद्धेश्वर जी प्रारंभ से ही इस बात से सतर्क थे। आखिर तभी तो संघ के महासचिव पद पर आसीन होते ही इन्होंने समाज के हर

वर्ग, जाति, मजहब, भाषा और क्षेत्र के लोगों को न केवल इसके साधारण सदस्य, बल्कि आजीवन, संरक्षक सदस्य भी बनाया, क्योंकि सिद्धेश्वर जी की स्पष्ट अवधारणा है कि देश की कुर्बानी करनेवाले महापुरुष किसी जाति, धर्म, भाषा या वर्ग व क्षेत्र विशेष के नहीं, अपितु ये राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय शख्सियत हो जाते हैं। इसलिए इन्हें जाति या मजहब की सीमा में बाँधकर बौना या छोटा करने का अधिकार किसी को नहीं है। यदि कोई संगठन वैसा करता है तो इससे बढ़कर और कोई अपराध नहीं हो सकता। इसी का ख्याल रखते हुए बड़ी निर्भीकता से बिना किसी की परवाह किये लौहपुरुष सरदार पटेल के व्यक्तित्व और उनके विचारों के अनुरूप संघ का दरवाजा देश के उन सभी नागरिकों के लिए खुला रखा, जो उनके आदर्शों में आस्था व निष्ठा रखते हों। इसी का प्रतिफल है कि इन्हें संघ के कार्यकलाप को गति प्रदान करने तथा सरदार पटेल के विचारों को जन-जन तक पहुँचाने में समाज के सभी वर्गों एवं तबकों का अपेक्षित सहयोग मिला और बिहार सरकार ने भी पटना के दारोगा प्रसाद राय पथ पर सरदार पटेल स्मारक भवन एवं सरदार वल्लभ भाई पटेल राष्ट्रीय एकता संस्थान के निर्माण हेतु पाँच कट्ठे का एक भूखण्ड आवंटित किया, जिसका भवननिर्माण कार्य जारी है। समाज के सभी वर्गों का यह पुनीत कर्त्तव्य होता है कि देशवासियों में राष्ट्रीयता की भावना जागरित करने एवं लौहपुरुष सरदार पटेल की यादगार ताजा रखने हेतु स्मारक भवन एवं राष्ट्रीय एकता संस्थान के निर्माण में अपना अपेक्षित सहयोग प्रदान करें, यह एक जागरूक नागरिक की गरिमा के अनुरूप भी है। ऐसे वक्त जब देश में राष्ट्रीयता की भावना का द्रुत गति से लोप होता जा रहा है, सरदार पटेल द्वारा बताये रास्ते पर चलकर ही देशप्रेम का भाव जगाया जा सकता है। वैसे भी देखा जाए तो आज की तिथि में लौहपुरुष सरदार पटेल ही देश के एक ऐसे सर्वप्रिय नेता हैं, जिन्हें समग्र देशवासियों का श्रद्धा-सम्मान प्राप्त है। आखिर तभी तो पिछले दिनों स्वतंत्रता की 57वीं वर्षगांठ पर देश के सर्वाधिक लोकप्रिय नेता के लिए हुए एक सर्वेक्षण में यहाँ तक कि राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी को भी अपनी सीट सरदार वल्लभ भाई पटेल के लिए छोड़नी पड़ी। एक तरह से इसे आजादी के 57 साल बाद देश की सोच में आये एक बड़े बदलाव का सूचक माना जा सकता है।

सिद्धेश्वर जी की इसी मानसिकता और विश्वास के कारण इनके संघ के कार्यकाल में बोकारो इस्पात संयंत्र ने बोकारो इस्पात नगर में पटेल सेवा संघ, बिहार की बोकारो इकाई को सरदार पटेल की स्मृति को कायम रखने हेतु पचास डिसमिल के एक भूखण्ड का आवंटन किया है और आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इनकी प्रेरणा से लगभग 25 लाख रुपयों की लागत से सरदार

पटेल पब्लिक स्कूल भवन का निर्माण हो पाया है और विद्यालय सुचारु रूप से चल रहा है तथा पटेल सेवा संघ की बोकारो इकाई की गतिविधियों को भी बल मिला है।

यह सिद्धेश्वर जी की कर्मठता और निष्ठा का ही प्रतिफल रहा कि इनके कार्यकाल में पटेल सेवा संघ, बिहार के अधिकांश जिलों व कस्बों में इसकी शाखाएँ बनी और कार्यरत हैं। हाँ, कुछ सधे और नि:स्वार्थ व त्यागी कार्यकर्ताओं का अभाव आज अवश्य खटकता है। विभिन्न जिलों व क्षेत्रों में सिद्धेश्वर जी को लोग पटेल सेवा संघ वाले सिद्धेश्वर ही कहकर पुकारते हैं, जानते हैं और यही नहीं सच तो यह है कि पटेल सेवा संघ भी इन्हीं के नाम से जाना जाता है यानी संघ और सिद्धेश्वर जैसे दोनों एक-दूसरे के पूरक हों, दोनों का अन्योन्याश्रय संबंध हो, कारण कि अपने सेवाकाल में इन्होंने पूरे बिहार में दौरा कर सरदार पटेल के प्रति चेतना जागरित की और जन-जन तक पहुँचने का विरल कार्य किया। इसी से सामाजिक कार्यकर्त्ता के रूप में इनकी भी एक अलग पहचान बनी। अपने सेवाकाल के दौरान भी इनका अधिकतर वक्त संघ के कार्यकलाप में गुजरता था। यहाँ तक कि महालेखाकार कार्यालय में दायित्व के प्रमुख पदों पर रहने के बाद भी संघ के कार्यकलाप को ये अपने सहकर्मियों के सहयोग से मूर्तरूप देते थे। राधेश्याम प्रसाद, कृष्णनन्दन प्रसाद सिन्हा, मनोज कुमार तथा जयप्रकाश मल्ल इत्यादि कुछ ऐसे सहकर्मी थे जिनके सिद्धेश्वर जी आज भी कायल हैं, क्योंकि अपने अनुभाग के कार्यों के साथ-साथ संघ के कार्यों को भी वे लोग बड़े सुचारु ढंग से निष्पादित करते थे। यही था सिद्धेश्वर जी के प्रति लोगों का स्नेह, जिसका आज निश्चय ही अभाव दिखता है। सिद्धेश्वर जी के कार्यकाल में सरदार पटेल के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को केंद्र में रखकर बेशुमार संगोष्ठियाँ, परिचर्चाएँ, परिसंवाद तो संपन्न हुए ही, नेत्र चिकित्सा शिविर, स्वास्थ्य शिविर, गरीब व प्रतिभावान छात्र-छात्राओं को छात्रवृति, बाढ़-सुखाड़ में रिलीफ कैंप जैसे सामाजिक कार्यक्रम और प्राकृतिक विपदाओं के वक्त संघ के सदस्यों का योगदान उल्लेखनीय रहा। इस प्रकार कुल मिलाकर हम देखते हैं कि एक ओर जहाँ पटेल सेवा संघ को सिद्धेश्वर जी ने एक पहचान दिलायी, वहीं दूसरी ओर इसके माध्यम से इनकी भी एक अलग पहचान बनी।

## राजेन्द्र साहित्य परिषद

पटना में अपने सेवाकाल के दौरान सिद्धेश्वर जी का पटेल सेवा संघ, बिहार के अतिरिक्त कई साहित्यिक, सामाजिक, शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक संगठनों से लगाव हुआ जिनमें भारत के प्रथम राष्ट्रपति देशरत्न राजेन्द्र प्रसाद के

नाम पर गठित '*राजेन्द्र साहित्य परिषद*' का नाम उल्लेखनीय है। उसकी कार्यकारिणी में कई वर्षों तक सेवाएँ अर्पित करने के पश्चात् इन्हें परिषद् के उपाध्यक्ष पद पर निर्वाचित किया गया, जिसका दायित्व ये आज भी निभा रहे हैं। पटना में रहने पर आज तक शायद ऐसा कम ही हुआ हो, जब उसके विविध कार्यक्रमों में इनकी भागीदारी न हुई हो। इसी प्रकार ये महाकवि आरसी साहित्य परिषद से भी जुड़े, किंतु इनका खुद का कहना है कि परिषद् के शीर्ष पदाधिकारियों की उदासीनता के चलते ये भी उसमें कोई संतोषजनक योगदान नहीं कर पा रहे हैं। बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन के कार्यक्रमों में भी अपनी उपस्थिति दर्ज कर तथा साहित्यमनीषियों की जयंतियों अथवा अन्य साहित्यिक कार्यकलापों के अवसर पर अपने उद्‌गार व्यक्त कर जन मानस को झकझोरने की अपनी जिम्मेदारी निभा रहे हैं। इसके अतिरिक्त नगर या उसके आसपास के कस्बों एवं जिला मुख्यालयों की साहित्यिक या सामाजिक संगठनों द्वारा आयोजित कार्यक्रमों की अध्यक्षता कर अथवा विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित होकर ये अपने विचारों को अभिव्यक्त करते हैं।

जहाँ तक शैक्षणिक संगठनों से उनके जुड़ाव व उनमें योगदान का सवाल है, इनका यही प्रयास रहा है कि बिढ़नी के खोते सरीखे शैक्षणिक संस्थानों में पद और पैसे को लेकर जो आये दिन बवाल मचता दिखायी देता है, उससे ये पूर्णत: वाकिफ हैं और इसीलिए बराबर उन सबों से ये बचने का प्रयास करते हैं। एक बार पटना में सरदार पटेल उच्च विद्यालय की स्थापना और उसके संचालन में इन्होंने अपनी भागीदारी भी निभायी, तो कुछ अंतराल के बाद उसे पटना के बेली रोड नहर पर स्थित जलालपुर-रूपसपुर गाँव में स्थानांतरित किया और अपने कॉलेज के सहपाठी डी० पी० सिंह के सबल कंधों पर उसके संचालन का दायित्व सौंपा। इन्हें इस बात की प्रसन्नता है कि उस विद्यालय का आज अपना एक भवन हो गया है। गाँधी नगर में स्थापित सरदार पटेल कॉलेज के शासी निकाय के अध्यक्ष पद को भी कुछ वर्षों के बाद छोड़ना इन्होंने मुनासिब समझा। इसी तरह पटना नगर में स्थापित कई सहकारी समितियों से जुड़े लोगों ने भी सिद्धेश्वर जी के व्यक्तित्व का लाभ लेने के ख्याल से इन्हें अपनी-अपनी समितियों का संरक्षक बनाया, किंतु बाद में जब उनकी गतिविधियाँ इन्हें रास न आयीं तो तत्काल उनसे अलग होने से भी ये बाज न आये।

## राष्ट्रीय विचार मंच

पटेल सेवा संघ, बिहार के महासचिव पद पर सन् 1985 तक अपनी उल्लेखनीय सेवाएँ प्रदान करने के पश्चात् सिद्धेश्वर जी का ध्यान कुछ प्रबुद्धजनों ने देशवासियों में तेजी से लुप्त हो रही राष्ट्रीयता की भावना की ओर आकृष्ट किया और व्यापक एवं वृहत्तर हित में सक्रिय होने का सुझाव इन्हें दिया। इन्होंने इसे बड़ी गंभीरता से लिया और इसपर काफी चिंतन-मंथन किया। अंततः सिद्धेश्वर जी के अत्यंत तीखे राष्ट्रप्रेम की भावना से ओत-प्रोत कई शुभेच्छुओं की नेक सलाह और सहयोग के बल पर *'राष्ट्रीय विचार मंच'* के नाम से सन् 1986 में राष्ट्रीय चेतना का एक वैचारिक मंच पटना में स्थापित किया गया, जिसके संस्थापक महासचिव के पद का भार सिद्धेश्वर जी के कंधों पर दिया गया और इसके संस्थापक अध्यक्ष हुए अनुग्रह नारायण सिन्हा समाज अध्ययन संस्थान, पटना के तत्कालीन प्राध्यापक एवं सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री डॉ० सीताराम अकिंचन। प्रो० साधुशरण ने मंच के उपाध्यक्ष पद पर रहकर अपनी असीम क्षमता का परिचय दिया। सिद्धेश्वर जी मंच के महासचिव पद पर तब तक रहे जब तक ये मंच के अखिल भारतीय महासचिव के लिए नयी दिल्ली में निर्वाचित न हुए।

मंच की नियमावली समिति ने इसका जो आमुख तय किया वह इस प्रकार है-

'देश की विशाल किंतु संकीर्ण दायरों एवं मान्यताओं के कारण विभाजित जन-समुदाय को राष्ट्र की मुख्यधारा से जोड़ना तथा राष्ट्र निर्माण के लिए सामाजिक, शैक्षणिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक विकास हेतु एक आवश्यक वातावरण तैयार करना ताकि सामाजिक न्याय, सहयोग एवं सौहार्द पर आधारित एक नयी राष्ट्रीय चेतना का निर्माण हो सके।'

जहाँ तक मंच के कार्यकलाप का सवाल है, राष्ट्रीय चेतना की गैरसरकारी एवं गैर-राजनीतिक स्वैच्छिक संस्था *'राष्ट्रीय विचार मंच'* वैचारिक अभिव्यक्ति का एक ऐसा सार्थक एवं सशक्त मंच है जिसके द्वारा सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक ताने-बाने से लेकर साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विषयों पर विचारगोष्ठी, परिसंवाद, परिचर्चा एवं कविसंध्या का आयोजन कर देश व समाज के ज्वलंत मुद्दों का बड़ी निर्भीकता एवं निष्पक्षता से विश्लेषण किया जाता है। इस प्रकार पिछले डेढ़ दशकों से राजनीतिक एवं सार्वजनिक जीवन में बढ़ते भ्रष्टाचार, सामाजिक विभाजन, अपसंस्कृति के शोर-शराबे तथा अनेक परिवर्तनों को मंच के पटल से रेखांकित किया गया है तथा आम जनमानस को कुरेदकर उसमें राष्ट्रीय चेतना

जागरित करने का प्रयास किया गया है। मंच का यह भी उद्देश्य है कि यह समाज में संवदेनशीलता एवं गत्यात्मकता प्रदान करे, ताकि स्वस्थ एवं नैतिक वातावरण तैयार हो सके। सामाजिक जीवन में और विशेषकर उपेक्षित वर्गों को सक्रिय एवं गतिशील बनाये रखनेवाले कार्यक्रमों को यह मंच बढ़ावा देता है। राष्ट्रीय एकता की ताकतों को मजबूत करने हेतु यह मंच सांप्रदायिकता, जातीयता, भाषा एवं क्षेत्रीयता इत्यादि से संबंध रखनेवाले तत्त्वों का विरोध करता है। मंच के इन्हीं उद्देश्यों के आलोक में इसकी ओर से कई वर्षों तक बिहार में देश की ज्वलंत समस्याओं पर संगोष्ठियों, परिचर्चाओं आदि का आयोजन कर जनमानस को आंदोलित किया गया और उनमें जारूकता पैदा करने का हर संभव प्रयास किया गया। समय-समय पर प्राकृतिक विपदाओं के वक्त सिद्धेश्वर जी के नेतृत्व में रिलीफ कैंप आयोजित कर समाज के पीड़ित लोगों तक राहत पहुँचायी गयी।

इस बीच मंच के इतिहास ने एक नया मोड़ तब लिया जब रेल मंत्री श्री नीतीश कुमार के सौजन्य से सिद्धेश्वर जी को इनकी साहित्यिक अभिरुचि एवं सक्रियता के मद्देनजर रेल मंत्रालय की एक राष्ट्रीय एवं उच्च स्तरीय रेलवे हिंदी सलाहकार समिति का सन् 1999 में तीन वर्षों के लिए एक सदस्य मनोनीत किया गया। कहा जाता है कि भारत सरकार के एक अधिकारी के पद पर रहने के चलते रेलवे की उक्त समिति में एक गैरसरकारी सदस्य के रूप में इनके मनोनयन की औपचारिकता पूरा करने के वक्त गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग की ओर से कुछ आपत्ति भी उठायी गयी थी, किंतु माननीय नीतीश कुमार के व्यक्तिगत प्रयास से इसे हरी झंडी मिली और विधिवत् इस आशय की अधिसूचना रेलवे बोर्ड की ओर से जारी की गयी। सदस्य के रूप में इन्हें रेलवे की ओर से न केवल दिल्ली या किसी और शहर में आयोजित समिति की बैठकों में भाग लेकर राजभाषा हिंदी के प्रयोग एवं प्रचार-प्रसार संबंधी विचारों व सुझावों को प्रस्तुत करने का मौका मिला, बल्कि भारतीय रेल के पूरे देश में स्थित विभिन्न मंडल एवं क्षेत्रीय कार्यालयों में राजभाषा संबंधी कार्यों का निरीक्षण करने का एक अवसर भी प्राप्त हुआ जिसकी विस्तार से चर्चा पूर्व में की जा चुकी है।

रेलवे हिंदी सलाहकार समिति ने अपने तीन सालों के कार्यकाल में सिद्धेश्वर जी को पूरे भारत में राजभाषा के कार्यों की देखरेख के लिए रेलवे पास की सुविधा उपलब्ध करायी थी, जिसके द्वारा इनके रेलवे के वातानुकूलित कोच में अपने एक साथी के साथ यात्रा करने का प्रावधान था। इस सुविधा का इन्होंने भरपूर उपयोग इस मायने में किया कि जहाँ कहीं भी ये रेलवे के क्षेत्रीय व मंडल कार्यालयों के राजभाषा निरीक्षण के सिलसिले में इस देश के दक्षिण, उत्तर, पश्चिम और पूरब के क्षेत्रों में गये, रेलवे के कार्यों के साथ-साथ राष्ट्रीय विचार

मंच और इसके मुख पत्र *'विचार दृष्टि'* का भी प्रचार-प्रसार उन्होंने किया, क्योंकि बहुत माने में दोनों के कार्य एक जैसे थे। उदाहरण के लिए राजभाषा हिंदी के प्रयोग-प्रसार की जब बात उठती है, तो हिंदी के लेखकों व साहित्यकारों अथवा हिंदी के सेवियों व हिंदी के शुभेच्छुओं से संपर्क स्थापित करना लाजिमी हो जाता था, चाहे वे रेलवे के अधिकारी, कर्मचारी हों या फिर उस शहर के प्राध्यापक-प्रबुद्धजन। तीन सालों की अवधि में तमिलनाडु की यात्रा में चैन्नई के जिन हिंदी एवं तमिल प्रेमियों का सान्निध्य सिद्धेश्वर जी को प्राप्त हुआ, उनमें डॉ० बाल शौरि रेड्डी, डॉ० मधु धवन, डॉ० एम० शेषण, डॉ० इंदरराज बैद, डॉ० ईश्वर 'करुण', त० शि० क० कण्णन, डॉ० कमला विश्वनाथन, एम० कल्याणी, डॉ० पी० सी० कोकिला, डॉ० गुलाब चंद कोट डिया, डॉ० चुन्नीलाल शर्मा, डॉ० जयलक्ष्मी सुब्रह्मण्यन, डॉ० विद्या शर्मा, डॉ० श्रीमती निर्मला एस० मौर्य, आर० पार्वती, प्रह्लाद श्रीमाली, डॉ० पी० के बाला सुब्रह्मण्यन, आशुतोष मनुज, रमेश गुप्त नीरद, डॉ० रवीन्द्र कुमार जैन, राधा, विजय लक्ष्मी, सुंदरराजन, शिवानंद धुत्रे, डॉ० ए० बी० साई प्रसाद, डॉ० एन सुन्दरम, डॉ० सुब्रह्मण्यन 'विष्णुप्रिया', वी ऐलुमल्लै, नलिनी मेहता, डॉ० आर० शौरि राजन, दाक्षायणी मेनन, पी के इंदिराबाई, प्रदीप मेहता, अन्नु रंजन और पी० आर० वासुदेवन के नाम उल्लेखनीय हैं। स्टेल्ला मारीस कॉलेज, चैन्नई की हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ० मधु धवन की अध्यक्षता में गठित राष्ट्रीय विचार मंच की तमिलनाडु इकाई को डॉ० ईश्वर करुण, डॉ० कमला विश्वनाथन, डा० बाल शौरि रिड्डी, डॉ० एम० शेषण, डॉ० पी०के० बालासुब्रहमण्यन, डॉ० निर्मला एस० मौर्य, श्रीमती सुनीता जाजोदिया, श्रीमती मंजु भंडारी, श्रीमती चन्द्रकांता, श्री कण्णन, श्री प्रहलाद श्रीमाली, डॉ० गुलाम चंद कोटाडिया, डॉ० जयलक्ष्मी सुब्रह्मण्यन, आर० पार्वती तथा रमेश गुप्त नीरद सरीखे विद्वत्जनों के अपेक्षित सहयोग से मंच के कार्यकलाप को गति मिल रही है।

विगत 1 अगस्त 04 को मंच की राजस्थान इकाई की सिद्धेश्वर जी की उपस्थिति में संपन्न चुनाव में अध्यक्षा प्रो० राज चतुर्वेदी हुई हैं, जिन्हें डॉ० सुषमा शर्मा, प्रो० मंजुला गुप्ता जैसी विदुषी महिलाओं का सहयोग मिल रहा है। प्रो० सत्येन्द्र चतुर्वेदी पुनः विचार दृष्टि के ब्यूरो प्रमुख हुए है।

इसी प्रकार कर्नाटक राज्य में मंच की शाखा के गठन में रेलवे बैंगलोर मंडल के वरिष्ठ राजभाषा अधिकारी चन्द्रपाल सिंह, स्व० सीताराम शर्मा, एस० पी० सिंह, संजय प्रकाश इत्यादि का सहयोग सिद्धेश्वर जी को काफी मिला और अंततः संजय प्रकाश के संयोजकत्व में राष्ट्रीय विचार मंच की गाड़ी कई वर्षों तक चली किंतु संजय प्रकाश के असामयिक निधन के बाद जून 2004 में पूनः

डॉ० ऐ०बी० साई प्रसाद की अध्यक्षता में मंच की कर्नाटक इकाई का पुनर्गठन हुआ और डॉ० इस्पाक अली इसके महासचिव निर्वाचित हुए और विचार दृष्टि के ब्यूरो प्रमुख की जिम्मेदारी कन्नड़ एवं हिंदी के वरिष्ठ पत्रकार पी० एस० चन्द्रशेखर संभाल रहे हैं। आंध्र प्रदेश में मंच की इकाई का दायित्व जहाँ हैदराबाद की सांस्कृतिक गतिविधियों के केंद्र बने प्रो० नेहपाल सिंह वर्मा के सबल कंधों पर है, वहीं विचार दृष्टि का मार्गदर्शन वहाँ ब्यूरो प्रमुख के रूप में डॉ० ऋषभदेव शर्मा कर रहे हैं। हैदराबाद के डॉ० वाचक्नवी तथा चन्द्रमौलेश्वर प्रसाद का सहयोग सराहनीय है।

जहाँ तक केरल राज्य में गठित मंच की इकाई का सवाल है, दक्षिण भारत के प्रेमचंद के रूप में चर्चित मलयालम और हिंदी के सशक्त हस्ताक्षर डॉ० एन० चन्द्रशेखरन नायर मंच के अध्यक्ष पद को सुशोभित कर इसके उद्देश्यों को साकार रूप प्रदान कर रहे हैं साथ ही मंच के राष्ट्रीय महासचिव सिद्धेश्वर को समय-समय पर उनसे मार्गदर्शन भी मिल रहा है। विचार दृष्टि को तिरुवनंतपुरम की विदुषी लेखिका डॉ० रति सक्सेना देख रही हैं।

पश्चिमी भारत के महाराष्ट्र एवं गुजरात में सिद्धेश्वर जी ने अथक परिश्रम से क्रमशः मुंबई तथा अहमदाबाद में मंच की शाखाएँ गठित की हैं। मुंबई में वीरेन्द्र याज्ञिक के कंधे पर जहाँ *'विचार दृष्टि'* का भार दिया गया है, वहीं अहमदाबाद में मंच की अध्यक्षता सुप्रसिद्ध साहित्यकार एवं *'हाइकु भारती'* के संपादक डॉ० भगवतशरण अग्रवाल कर रहे हैं और अगस्त 2004 से कार्यकारी अध्यक्ष पद पर कविवर कमल किशोर दुबे 'कमल' आसीन हुए हैं। *'विचार दृष्टि'* के ब्यूरो प्रमुख साहित्यकार रमेश चन्द्र शर्मा 'चंद्र' हुए हैं।

सिद्धेश्वर जी ने पूर्वी क्षेत्र में भी अपना कदम बढ़ाया है और वहाँ के जाने माने पत्रकार व साहित्यकार जितेन्द्र धीर मंच के अध्यक्ष और *'विचार दृष्टि'* के ब्यूरो प्रमुख की जवाबदेही निभा रहे हैं।

जहाँ तक बिहार राज्य का सवाल है, यहीं से राष्ट्रीय विचार मंच ने पूरे भारत में अपने पाँव फैलाये हैं, सिद्धेश्वर जी के मंच के राष्ट्रीय महासचिव पद पर निर्वाचित होने के पश्चात् सन् 2002 में मंच की बिहार इकाई का भारतीय प्रशासनिक सेवा के वरिष्ठ अधिकारी एवं सुधी साहित्यकार जिया लाल आर्य की अध्यक्षता में मंच के दीर्घकाल तक संयुक्त सचिव (साहित्य) पद पर रहे मनोज कुमार को महासचिव बनाया गया फिर जनवरी 2005 में संपन्न चुनाव में श्री आर्य अध्यक्ष तथा डॉ० शाहिद जमील महासचिव हुए। दरअसल हुआ यों कि जब रेलवे हिंदी सलाहकार समिति के सदस्य पद पर रहकर सिद्धेश्वर जी के अथक प्रयास से पूरे भारत में मंच की शाखाएँ गठित हुईं तो इसे राष्ट्रीय स्वरूप

प्रदान किया गया और सन् 2001 में इसके राष्ट्रीय अध्यक्ष पद पर जहाँ माननीय न्यायाधीश बी० एल० यादव निर्वाचित हुए, वहीं सिद्धेश्वर जी मंच के अखिल भारतीय महासचिव यानी राष्ट्रीय महासचिव हुए। न्यायमूर्ति श्री यादव के देहावसान के बाद श्री यू० सी० अग्रवाल, भा०प्र०से० ने अध्यक्ष पद संभाला।

मंच को एक गहरा धक्का तब लगा, जब 24 मार्च 2002 को इसके राष्ट्रीय अध्यक्ष माननीय न्यायाधीश तथा राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग के अध्यक्ष श्री बी० एल० यादव जी का हृदय गति रुक जाने के कारण इलाहाबाद में निधन हो गया। पुन: नयी दिल्ली के राजघाट स्थित राष्ट्रीय गाँधी संग्रहालय के सभागार में आयोजित मंच की आम सभा में भारतीय प्राशासनिक सेवा के वरिष्ठ अधिकारी यू० सी० अग्रवाल के सबल कंधों पर मंच के राष्ट्रीय अध्यक्ष का दायित्व दिया गया। श्री अग्रवाल न केवल वक्तृत्व कला के धनी हैं, बल्कि वे लेखनी और विचार के भी धनी हैं। आखिर तभी तो उन्हें नयी दिल्ली के भारतीय लोक प्रशासन संस्थान से प्रकाशित पॉलिटकल जरनल का संपादक प्रमुख बनाया गया है। भारत सरकार के मुख्य सतर्कता आयुक्त पद पर भी उन्होंने अपनी सेवाएँ दी हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यह सिद्धेश्वर जी की कर्मठता और मंच के प्रति इनकी निष्ठा का ही प्रतिफल है कि अब तक इस देश के लगभग दस राज्यों में मंच की शाखाएँ गठित हो चुकी हैं। किंतु सिद्धेश्वर जी स्वयं यह स्वीकारते हैं कि इधर हाल के वर्षों में खासकर दक्षिण भारत की शाखाओं के कार्यकलाप में शिथिलता आयी है। कारण पूछने पर ये बताते हैं कि रेलवे हिंदी सलाहकार समिति के सदस्य के रूप में तीन साल का कार्यकाल पूरा होने के पश्चात् रेलवे पास की सुविधा से इन दिनों ये वंचित हैं और मंच इतना साधन संपन्न नहीं है कि तीन-तीन माह के अंतराल पर ये सभी दस राज्यों का भ्रमण कर उनके कार्यों का समन्वय कर सकें। फिर भी इस दिशा में ये प्रयासरत हैं कि कम-से-कम साल में एक बार भी उन राज्यों की यात्रा कर उनके कार्यकलापों को दिशा प्रदान कर सकें। मंच की राष्ट्रीय कार्यकारिणी के निर्देशानुसार राष्ट्रीय महासचिव श्री सिद्धेश्वर ने सन् 2004 के जून, जुलाई, अगस्त तथा सितंबर में दक्षिण तथा पश्चिम के राज्यों का दौरा कर राज्य कार्यकारिणी का पुनर्गठन किया। इसी क्रम में इन्होंने प्रो० पारसनाथ श्रीवास्तव को मंच तथा विचारदृष्टि के लखनऊ प्रतिनिधि के रूप में मनोनीत कर मंच की उत्तर प्रदेश शाखा के गठन की दिशा में कदम बढ़ाया है। ग्वालियर के प्रतिनिधि डॉ० महेन्द्र भटनागर तथा सतना के प्रतिनिधि डॉ० राम सिया सिंह पटेल को मनोनीत किया गया है। इसी प्रकार देहरादून के प्रतिनिधि डॉ० राजनारायण राय हुए हैं।

दक्षिण, पश्चिम तथा पूर्वोत्तर भारत के राज्यों के दौर के दौरान सिद्धेश्वर जी ने अहिंदी भाषी रचनाकारों की बिरादरी को नजदीक से देखा और समझा है। इनकी मान्यता है कि राष्ट्रभाषा में सोचने, चिंतन और सर्जन करने के बावजूद अहिंदी भाषी लेखकों के सामने उपस्थित समस्याओं, उनकी शिकायतों और उनके दु:ख-दर्दों पर राष्ट्रीय चिंतन नहीं हो पा रहा है और उनके हिंदी लेखन को हिंदी साहित्य में जो स्वीकृति मिलनी चाहिए, अभी तक नहीं मिल पा रही है। अपनी अस्मिता और पहचान के लिए अहिंदी भाषी हिंदी लेखक आज भी जूझ रहे हैं और गोलबंद होने के लिए प्रयासरत हैं। निश्चय ही गोलबंद होने की उनकी इस प्रवृत्ति से राष्ट्र की साहित्यिक-सांस्कृतिक गरिमा को नुकसान पहुँच सकता है। आखिर वे भी कब तक दोयम दर्जे का होकर ठगे-से महसूस करते रहेंगे ? जहाँ तक हिंदी लेखकों को सम्मानित और उनकी कृतियों के लिए पुरस्कार प्रदान किये जाने का प्रश्न है, उसमें उन्हें उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है, जबकि वे हिंदी में बोलते, लिखते, सोचते और समझते हैं। फिर भी उनके समक्ष राष्ट्रीय स्तर पर पहचान का संकट सदैव बना रहता है। अतएव समय की माँग है कि समय के अनुसार उनकी समस्याओं व दुख-दर्दों पर राष्ट्रीय चिंतन की आवश्यकता है। जहाँ तक मंच की दिल्ली इकाई का संबंध है सन् 2002 में जब पुन: दिल्ली शाखा का पुनर्गठन हुआ तो राजधानी कॉलेज के सेवानिवृत्त हिंदी प्राध्यापक एवं सुप्रसिद्ध साहित्यकार डॉ० रमाशंकर श्रीवास्तव इसके अध्यक्ष, उसी कॉलेज के राजनीति विज्ञान के पूर्व प्राध्यापक डॉ० धर्मेन्द्रनाथ अमन उपाध्यक्ष तथा राष्ट्रीय गाँधी संग्रहालय के उपनिदेशक डॉ० अनिल दत्त मिश्र महासचिव हुए। पुन: वर्ष 2004 में हुए पुनर्गठन में डॉ० रमाशंकर श्रीवास्तव की अध्यक्षता में डॉ० देवेन्द्र आर्य तथा डॉ० धर्मेन्द्रनाथ उपाध्यक्ष और डॉ० मेदिनी प्र० राय महासचिव हुए। वर्ष 2006 में संपन्न चुनाव में मंच की दिल्ली शाखा के अध्यक्ष पद पर डॉ. सोमदत्त शर्मा 'सोम' तथा महासचिव के पद पर श्री उदय कुमार 'राज़' विराजमान हुए।

## पत्रकारिता को अभिनव आयाम

सिद्धेश्वर जी के लिए पत्रकारिता सर्वाधिक सुखद एवं सर्जनात्मक अनुभव है। इन्होंने अपनी क्षमता और सामाजिकता की तरलता से पत्रकारिता को अभिनव आयाम दिया है। पत्रकारिता इनके जीवन का पर्याय बन गयी है। संपादन कला के मर्मज्ञ तो ये हैं ही एक अच्छे लेखक एवं साहित्यकार के गुण भी इनमें विद्यमान हैं। अपनी रचनाओं से ये हिंदी साहित्य को समृद्ध करने का अविराम प्रयत्न कर रहे हैं। समाजोपयोगी, जीवनपरक, राजनीतिक साहित्यिक, मूल्यपरक

एवं सांस्कृतिक सभी तरह के आलेख इन्होंने लिखे हैं। इनकी सरल प्रांजल भाषा शैली, समृद्ध विलक्षण क्षमता इनके आलेखों की उल्लेखनीय विशेषता हैं। आप स्वतंत्र लेखन के साथ *'विचार दृष्टि'* राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक पत्रिका के संपादन के क्रम में नवीनतम जानकारी एकत्र करने के आदी हो गये हैं। आखिर तभी तो उम्र के 66वें कदम पर भी कलम चलाने की प्रवृत्ति जस-की-तस इनमें मौजूद है। विचार दृष्टि पत्रिका के संपादकीय आलेख के माध्यम से ये अपने मौलिक एवं प्रभावोत्पादक चिंतन तथा उत्कृष्ट विचार से पाठकों को एक स्वस्थ मानसिक खुराक प्रदान कर रहे हैं। अपनी बेवाक लेखनी से सामाजिक रूढ़िवादिता एवं धार्मिक अंधविश्वास पर जो प्रहार ये करते हैं, वह काबिले तारीफ है। साथ ही दिग्भ्रमित राजनीति एवं निरंकुश प्रशासन पर अनवरत प्रहार कर इन्होंने समाज का सदैव मार्गदर्शन किया है।

बतौर संपादक ये देश भर के रचनाकारों, चाहे वे बड़े हों या उदीयमान बड़ी निष्पक्षता के साथ महत्त्व दे रहे हैं। साहित्यकार गाँव का हो या शहर का, परिचित हो या अपरिचित, सभी की रचनाएँ *'विचार दृष्टि'* में प्रकाशित कर ये अपनी जिंदादिली का परिचय दे रहे हैं। महिलाओं के प्रति उदार एवं सम्मानजनक सोच रखनेवाले सिद्धेश्वर जी हमारे जैसे समाज के सैकड़ों सामाजिक कार्यकर्ताओं, रचनाकारों के लिए प्रेरणा के स्रोत हैं, जो स्वैच्छिक संस्था *'राष्ट्रीय विचार मंच'* तथा पत्रिका *'विचार दृष्टि'* के माध्यम से जातिवाद, संप्रदायवाद, भाषावाद तथा क्षेत्रीयतावाद, रुढ़िवाद और अंधविश्वास के खिलाफ संघर्षरत हैं। समाज में व्याप्त भ्रष्टाचारों, बुराइयों, कुरीतियों को मिटाने के लिए ये प्रयासरत हैं। अंधकारनाशक और निर्भीक विचारक्रांति रूपी जिस दीये को इन्होंने प्रज्ज्वलित किया है, हमारा दायित्व बनता है कि हम उसे प्रज्ज्वलित रखने में इनके कंधों से कंधे मिलाकर इन्हें सहयोग प्रदान करें।

सूचना और संचार क्रांति के प्रादुर्भाव के साथ पत्रकारिता और जनसंचार का क्षेत्र आज काफी महत्त्वपूर्ण हो गया है। यह बाद ठीक है कि इलेक्ट्रॉनिक्स मीडिया के प्रभाव में बेतहासा वृद्धि हुई है, पर यह भी उतना ही सच है कि इसके बावजूद पत्र-पत्रिकाओं की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है और उनके पृष्ठों, पठनीय सामग्रियों एवं स्तंभों में विविधता के साथ-साथ उनके रूप-रंग, साज-सज्जा, शिल्प एवं कथ्य में भी परिष्कार हुआ हैं, समाचारपत्रों और पत्रिकाओं के न केवल संस्करण बढ़े हैं, बल्कि उनमें आपसी प्रतिस्पर्धा भी बढ़ी है। ऐसी प्रतिस्पर्धा की घड़ी में पत्रकारिता को भी अपने कार्यक्रमों में शामिल कर सिद्धेश्वर जी ने एक जोखिम भरा दायित्व अपने कंधों पर लिया है, खासकर तब जब ये साधनविहीन हैं और साधनयुक्त प्रतिष्ठानों के द्वारा संचालित एवं

प्रकाशित महत्त्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाएँ दिन-प्रति-दिन बंद होती जा रही हैं जिनमें धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, दिनमान, रविवार, दी इडियन नेशन, आर्यावर्त, सर्च लाइट, प्रदीप इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं। हालाकि ऐसा भी नहीं कि सिद्धेश्वर जी ने अपनी स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के बाद पत्रकारिता शुरू की है, बल्कि सच तो यह है कि अपनी सेवावाधि में भी ये कई पत्रिकाओं का संपादन कर चुके हैं। पटना के महालेखाकार (लेखा परीक्षा) कार्यालय में रहकर न केवल *'प्रहरी'* शीर्षक से एक विभागीय पत्रिका के ये संपादक तब तक रहे, जब तक इन्होंने स्वेच्छा से सेवानिवृत्ति नहीं ले ली। उसी कार्यालय से *'संघमित्रा'* नामक एक विभागीय संवाद-पत्र का प्रकाशन प्रारंभ हुआ था और उसके संपादन का भार भी इनके ही कंधों पर दिया गया था। कहना नहीं होगा कि इन दोनों पत्र-पत्रिकाओं का जिस तन्मयता और लगन से इन्होंने सफल संपादन किया उसका प्रतिफल यह हुआ कि *'प्रहरी'* पत्रिका को भारत के नियंत्रक-महालेखा परीक्षक, नयी दिल्ली के अधीनस्थ पूरे भारत के विभिन्न राज्यों एवं क्षेत्रों के कार्यालयों से प्रकाशित पत्रिकाओं में इसे अब्बल करार दिया गया और इसकी उत्कृष्टता के लिए इसे शील्ड और प्रशस्तिपत्र प्रदान किये गये। *'प्रहरी'* के संपादक की हैसियत से सेवा में एक वरिष्ठ अधिकारी के महत्त्वपूर्ण पद पर रहते हुए भी इसको बड़ी निर्भीकता और निष्पक्षता के साथ इन्होंने अपने सेवाकाल में निकाला। इनके संपादकीय और विभिन्न आलेखों एवं कविताओं पर की गयी इनकी टिप्पणियों के आज भी लोग कायल हैं। कारण कि जब भी किसी सहकर्मी या उच्चाधिकारी की रचना पर ये अपनी टिप्पणी देते थे, तो बड़े मन से और उसकी गहराई में जाकर। इनकी टिप्पणी पर न केवल रचनाकार निहाल हुए, बल्कि पाठकों ने भी मुक्तकंठ से उसे सराहा। इनकी टिप्पणियों और संपादकीय आलेखों पर देश के कोने-कोने से अच्छी प्रतिक्रियाएँ प्राप्त होती थीं और रचनाकारों का मनोबल भी बढ़ता था। कभी-कभी तो ऐसा भी हुआ कि इनके उच्चाधिकारी, जिनके मातहत इन्हें काम करने का मौका मिला, वे भी अपनी रचनाओं पर इनकी टिप्पणी की अपेक्षा करते थे और कभी-कभार इनके उपसंपादक के द्वारा उनकी रचनाओं पर टिप्पणी दे दी जाती थी, तो वे पुन: सिद्धेश्वर जी से उनकी टिप्पणी के लिए अनुरोध करते थे। यही नहीं प्राप्त रचनाओं की भाषा, शिल्प और कथ्य को सिद्धेश्वर जी ऐसा संवारते थे कि उनमें एक अलग तरह का निखार आ जाता था और पाठकों की अभिरुचि और स्तर के अनुरूप हो जाता था। इनके सान्निध्य में रहकर *'प्रहरी'* के उपसंपादक राधेश्याम प्रसाद, जय प्रकाश मल्ल तथा मनोज कुमार इत्यादि सहकर्मियों को इनकी शैली, भाषा और अनूठे अंदाज से बहुत कुछ सीखने का अवसर मिला।

*'प्रहरी'* के प्रकाशन में संपादक सिद्धेश्वर जी की निर्भीकता इस कदर रही कि उसके संदर्भ में एक छोटा-सा मिशाल यहाँ पेश करने के लोभ का संवरण मैं नहीं कर पा रहा हूँ। कहानी यों है कि एक बार *'प्रहरी'* के एक अंक में भारतीय संस्कृति पर चर्चा करते हुए आकाशवाणी व दूरदर्शन से श्रोताओं के बीच परोसी जानेवाली अपसंस्कृति का समावेश अपने संपादकीय आलेख में सिद्धेश्वर जी ने किया। बस क्या था, इसे देखते ही तत्कालीन महालेखाकार, जो *'प्रहरी'* के पदेन संरक्षक भी थे और संयोग से संपादक जी के पटना विश्वविद्यालय के सहपाठी भी, ने सरकार का खामियाजा भुगतने के भय से दूरदर्शन पर की गयी टिप्पणीवाले भाग को उस संपादकीय आलेख से निकाल देने का निर्देश दिया। किंतु संपादक जी अपनी टिप्पणी पर अडिग रहे और यहाँ तक कि संपादन के भार से मुक्त करने का महालेखाकार से अनुरोध कर डाला। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि संपादक के सहपाठी महालेखाकार डी० एन० प्रसाद जी को इनके हठ के आगे यह कहकर नतमस्तक होना पड़ा कि 'जाइए, मेरी नौकरी लेने में ही आपको आनंद है तो वही कीजिए।' सिद्धेश्वर जी ने उन्हें उत्तर दिया, ''फिक्र मत कीजिए, संपादक की हैसियत से पहले मेरी नौकरी जाएगी, आपकी बारी तो बाद में आएगी।'' यह था पत्रकारिता के संदर्भ में संपादक की निर्भीकता और निष्पक्षता का एक जीता जागता उदाहरण।

इसी तरह का एक और उदाहरण यहाँ प्रस्तुत करना कदाचित् अनुचित नहीं होगा। छोटी-सी घटना है कि सिद्धेश्वर जी ने *'प्रहरी'* के किसी अंक के लिए 'देश के विकास में ऑडिट की भूमिका' विषय पर एक आलेख तैयार किया, जिसके पढ़ते ही इनके एक वरिष्ठ अधिकारी, जो उन दिनों प्रशासन के प्रभार में थे, उबल पड़े और संपादक को वह आलेख *'प्रहरी'* के उस अंक में नहीं देने का निर्देश दिया, किंतु संपादक जी अपनी पहल पर अड़े रहे और अंतत: मामला महालेखाकार तक जा पहुँचा। उस समय के नियंत्रक महालेखा परीक्षक (सीएजी) का वरदहस्त इन्हें प्राप्त था। इस कारण इनका एक रुतबा था और कार्यालय में इनकी खूब चलती थी। संपादक की बुलाहट महालेखाकार के दरबार में हुई और ये तुरंत उनके कार्यालय कक्ष में हाजिर हुए। प्रशासन के वरिष्ठ अधिकारी ने मामले को महालेखाकार के समक्ष पेश किया और महालेखाकार ने वरिष्ठ अधिकारी को ही आलेख पढ़ने का आदेश दिया। दरअसल ऑडिट की भूमिका लिखते वक्त संपादक जी ने भारत सरकार और राज्य सरकारों द्वारा सस्ती लोकप्रियता हासिल करने के लिए शुरू की गयी कई प्रौढ़शिक्षा, सस्ती रोटी, आधी कीमत पर गेहूँ-चावल आदि मुहैया कराने से संबंधित कई योजनाओं पर इन्होंने कड़ी टिप्पणी की थी और सरकार के काले कारनामों पर उँगली उठायी

थी। जब महालेखाकार ने उस वरिष्ठ अधिकारी से पूछा कि उन पंक्तियों से संपादक के विरुद्ध कौन-सा आरोप बनता है' तो वे सकते में आ गये और कहा--''यह तो सरकार के विरुद्ध में बात जाती है।'' इसे सुनते ही महालेखाकार ने उन वरिष्ठ अधिकारी को स्वयं यह समझाया कि उन्हें यह मालूम होना चाहिए कि सरकार के काले कारनामों को उजागर करना ही तो ऑडिट का दायित्व है, फिर इसमें संपादक जी ने कौन सा बड़ा अपराध किया है? जो हम सब रोज कर रहे हैं, उसे संपादकीय आलेख में ऑडिट की भाषा शैली और अपने अंदाज में भावों को संपादक ने अभिव्यक्ति दी है। इसमें हम सबों को कोई एतराज नहीं होना चाहिए और सच तो यह है कि इस पर हम लोगों को गर्व करना चाहिए। फिर उन्होंने आदेश दिया कि इस संपादकीय आलेख को पूरा, बिना काटे-छांटे 'प्रहरी' के अंक में जाना चाहिए। सिद्धेश्वर जी ने पुन: वही बात इन महालेखाकार के सामने भी दुहरायी कि पहले संपादक की नौकरी पर आँच आएगी तब किसी और की सेवा पर खतरा। यही, नहीं उसी अंक के संपादकीय आलेख में सिद्धेश्वर जी ने बिहार विधान परिषद् के माननीय सदस्यों एवं सभापति को उनके दायित्व की याद दिलाते हुए लिखा था कि ऑडिट की आलोचना न कर वे यदि परिषद् के कीमती वक्त को बर्बाद न करें तो जनता का भला होगा, क्योंकि परिषद् के सत्र पर करदाताओं के ढेर सारे पैसे खर्च होते हैं। दरअसल उसके कुछ दिनों पूर्व जब किसी साल ऑडिट रिपोर्ट सदन के पटल पर प्रस्तुत की गयी थी, तो बजाय उस पर चर्चा करने और सरकारी खजाने से बिना वजह हुए खर्च पर एतराज करने के परिषद् के सदस्य ने ऑडिट की ही आलोचना की थी और माननीय सभापति जी ने भी सुर में सुर मिलाया था। इसी पर संपादक जी ने अपने संपादकीय आलेख में टिप्पणी की थी। महालेखाकार ने इसे भी हरी झंडी दे दी। संपादक की यह बात सुनते हुए कि विशेषाधिकार के हनन का मामला बनने पर ये स्वयं परिषद् में हाजिर होकर जिरह करेंगे और नतीजों का सामना करेंगे। यही है एक निष्पक्ष पत्रकारिता के लिए कर्त्तव्य के प्रति संपादक की निर्भीकता, ईमानदारी और हिम्मत, जो आज पत्रकारिता के माहौल से गायब दिखती हैं।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि 'प्रहरी' के माध्यम से सिद्धेश्वर जी ने न केवल अपने सहकर्मियों में राजभाषा हिंदी के प्रति रुझान पैदा कर उन्हें हिंदी में लिखने के लिए प्रोत्साहित किया, बल्कि कार्यालय में राजभाषा हिंदी के प्रगामी प्रयोग और प्रचार-प्रसार को बढ़ावा भी मिला। यही कारण है कि महालेखाकार (लेखा परीक्षा) के कार्यालय में अब अधिकांश कार्य हिंदी में किये जाते हैं, जिसमें वहाँ के उच्चाधिकारियों का भी अपेक्षित सहयोग शामिल

है। वैसे सिद्धेश्वर जी ने भी अपनी सेवा के छत्तीस सालों में सदैव हिंदी का प्रयोग किया। एक बार अपने अहिंदी भाषी उच्चाधिकारी के अनुरोध पर भारत सरकार के सांख्यिकी विभाग के कार्यों पर सिद्धेश्वर जी ने हिंदी में तैयार अपनी रिव्यू रिपोर्ट का अँग्रेजी अनुवाद भी उसके साथ प्रस्तुत किया था, ताकि इनके अधिकारी को रिपोर्ट के तथ्य को समझने में कोई कठिनाई नहीं हो। उल्लेखनीय है कि न केवल उस रिपोर्ट की उच्च स्तर पर सराहना की गयी, बल्कि दिल्ली स्थित प्रधान कार्यालय से किसी तरह की कोई पूछताछ भी नहीं की गयी, कारण कि रिव्यू का कार्य भी इन्हें इनकी परीक्षा के लिए सौंपा गया था, जिसमें ये खरे उतरे, क्योंकि एक ओर जहाँ इन्हें अपने सहकर्मियों का अपेक्षित सहयोग भरपूर प्राप्त था तो दूसरी ओर ये स्वयं भी परिश्रमी एवं लगनशील और कलम के धनी भी थे।

## राष्ट्रीय विचार पत्रिका

सन् 1997 में *'राष्ट्रीय विचार पत्रिका'* नामक वैचारिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया गया था और सिद्धेश्वर जी उसके संस्थापक संपादक हुए। उसका भी एक इतिहास यों है कि जब ये राष्ट्रीय विचार मंच, बिहार के महासचिव पद पर थे, तो सरदार पटेल के एक जयंती-समारोह में पटना के तत्कालीन कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश माननीय न्यायमूर्ति बी० एल० यादव को इन्होंने मुख्य अतिथि के रूप में सादर आमंत्रित किया था। बस क्या था, मंच के कार्यकलाप और सिद्धेश्वर जी की सक्रियता से प्रभावित होकर माननीय न्यायाधीश ने एक दिन इन्हें अपने बेली रोड स्थित निवास में भोजन पर बुलाया। भोजनोपरांत बातचीत के दौरान न्यायाधीश श्री बनवारी लाल यादव जी ने सिद्धेश्वर जी को एक पत्रिका प्रकाशित करने की सलाह दे डाली। हजार नाकर-नुकर करने के बाद सिद्धेश्वर जी ने आखिर पत्रिका प्रकाशित करने का आश्वासन तो नहीं, पर इसपर विचार करने का वादा इन्होंने किया। दरअसल पत्रिका प्रकाशित करने जैसा जोखिम भरा काम ये अपने कंधों पर इसलिए नहीं लेना चाहते थे कि साधनविहीन लोगों के लिए पत्रिका निकालना ताड़ पर चढ़ने के बराबर है। श्री यादव इन्हें यह समझाने में सफल हुए कि सामाजिक, साहित्यिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक गतिविधियों में अभिरुचि रखनेवाला व्यक्ति ही पत्रिका निकाल सकता है। उनका कहना यथोचित था कि पत्रिका प्रकाशित करने के लिए केवल पैसे ही काफी नहीं, बल्कि उसके अतिरिक्त कुछ और गुण चाहिए जो सिद्धेश्वर जी में उन्होंने पाया। केवल पैसा ही यदि काम करता तो बड़े-बड़े साधन संपन्न प्रतिष्ठानों की धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान व

दिनमान जैसी पत्रिकाएँ आखिर क्यों लुप्त हो गयीं। खैर जो हो, *'राष्ट्रीय विचार पत्रिका'* शीर्षक से एक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन इन्होंने 1997 के अक्टूबर माह से प्रारंभ किया और उसके प्रवेशांक का लोकार्पण लौहपुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल के 122वें जयंती-समारोह के पुनीत अवसर पर हुआ। सिद्धेश्वर जी ने नियमानुसार पत्रिका के दस संभावित नामों की सूची भारत सरकार, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के नयी दिल्ली स्थित भारत के समाचारपत्रों के पंजीयक के कार्यालय में भेजी जिसमें से एक शीर्षक का अनुमोदन किया जाना था और *'राष्ट्रीय विचार पत्रिका'* शीर्षक से पत्रिका का प्रकाशन इस उम्मीद से इन्होंने प्रारंभ कर दिया कि उस नाम का अनुमोदन पंजीयक कार्यालय (आरएनआई) से हो जाएगा। किंतु पंजीयक द्वारा 'विचार दृष्टि' नाम का अनुमोदन हुआ। इस प्रकार दो वर्षों तक उसी नाम से पत्रिका का सफल प्रकाशन होता रहा।

## विचार दृष्टि

*'राष्ट्रीय विचार पत्रिका'* के प्रकाशन के दो वर्षों के बाद अचानक आर० एन० आई, दिल्ली से एक पत्र प्राप्त हुआ, जिसमें *'विचार दृष्टि'* शीर्षक का अनुमोदन किया गया था। यह नाम भी भेजी गयी सूची में था और इस शीर्षक को लोगों ने पहले वाले *'राष्ट्रीय विचार पत्रिका'* से बेहतर समझा। फिर कोई और चारा तो बच भी नहीं गया था, सो इसे स्वीकार करते हुए 'विचार दृष्टि' के पंजीयन के वास्ते दिल्ली पुलिस के उपायुक्त के माध्यम से भारत के समाचारपत्रों के पंजीयक से अनुरोध किया गया और अंततः *'विचार दृष्टि'* का पंजीयन राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संवाहिका के रूप में हुआ, जिसके प्रवेशांक का फिर लौहपुरुष सरदार पटेल के 124वें जयंती समारोह के पुनीत अवसर पर 31 अक्टूबर 1999 को पाटलिपुत्र के श्रोताओं एवं सुधीजनों से खचाखच भरे एक सभागार में लोकार्पण हुआ। तब से विधिवत यह पत्रिका प्रकाशित हो रही है और विगत वर्षों से इसका स्थायी पंजीकृत कार्यालय, *'दृष्टि'* यू० 207, शकरपुर, विकास मार्ग, दिल्ली-92 में स्थित है। इसके पूर्व कुछ वर्षों तक दिल्ली के झंडेवालान, रानी झाँसी रोड से यह निकलती रही।

*'विचार दृष्टि'* पत्रिका ने अब तक अपने सात वर्ष सफलता पूर्वक पूरे किये हैं। इस बीच इसने कितने उतार-चढ़ाव देखे, पर न तो कभी यह अनियमित हुई और न इसका कोई संयुक्त अंक निकला। यह इस बात का द्योतक है कि सिद्धेश्वर जी की निष्ठा और सक्रियता काम आ रही है। स्वाभाविक है, विस्तार से इस पत्रिका के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों पर हम प्रकाश डालना चाहेंगे, क्योंकि इसकी अस्मिता और इसका नियमित रूप से प्रकाशन *'विचार दृष्टि'* के

संस्थापक संपादक सिद्धेश्वर जी के सुदीर्घ अनुभवों का प्रतिफल हैं। पत्रकारिता की ऊँची शिक्षा प्राप्त किये बिना पत्रकारिता के सिद्धांत और प्रत्यक्ष व्यवहार के दोनों क्षेत्रों में ये कुशल हैं। दरअसल सुप्रसिद्ध साहित्यकारों एवं ख़्यातिप्राप्त पत्रकारों के सान्निध्य में रहने से इन्होंने उनके अनुभवों से काफी कुछ हासिल किया है। यही कारण है कि इन्होंने अपने दायित्वों, समाज व देश के प्रति अपनी प्रतिबद्धताओं के समक्ष खड़ी चुनौतियों को स्वीकार किया है और सजग रहकर ये अपनी रचनात्मक भूमिका निभा रहे हैं। सच तो यह है कि सामाजिक दायित्वों के निर्वहन के लिए ही पत्रकारिता की शुरुआत हुई थी। जनहित की भावना से जनजीवन की चेतना को जागरित करना और शिक्षित करना पत्रकारिता का दायित्व है। किंतु दु:ख की स्थिति यह है कि आज पत्रकारिता न केवल सामाजिक सरोकार से कटती जा रही है, बल्कि घून की तरह समाज को भीतर से कमजोर करने पर तुली है। अब तो पीली पत्रकारिता के नाम से यह तथ्य उजागर हो रहा है, जो चिंतनीय है। आज पत्रकारिता व्यवसासियों के लिए धन कमाने का एक जरिया और समाज एवं सरकार पर धौंस जमाने का एक औजार बनकर रह गयी है। जिस तरह की घटिया चीजें पत्रकारिता के माध्यम से पाठकों के समक्ष परोसी जा रही हैं, उनसे समाज बनने की बजाय अस्वस्थ होता जा रहा है। समाचारों और विचारों के नाम पर आज बड़े पैमाने पर घालमेल हो रहा है।

ऐसी विषम परिस्थिति में भी सिद्धेश्वर जी के अथक परिश्रम एवं अध्यवसाय से यह *'विचार दृष्टि'* नियमित रूप से निकल रही है और अब तक देश भर के हजारों पाठकों तक इसने देश के ज्वलंत मुद्दों पर विद्वत्जनों के विचारों को पहुँचाया है और हिंदी साहित्य एवं पत्रकारिता जगत् को समृद्ध किया है।

राष्ट्रीय चेतना की यह वैचारिक पत्रिका पूरी तरह अव्यावसायिक है, जिसका देश भर में फैला एक बड़ा-सा पाठक परिवार है। इससे जुड़ा समूह अवैतनिक रूप से इसके लिए काम करता है। सारे लोग आजीविका के लिए अन्यत्र काम करते हैं। किसी तरह कुछ विज्ञापन दाताओं और शुभचिंतक सदस्यों के सहयोग से इसकी छपाई का खर्च जुटाया जाता है। वैसे सच कहा जाए तो इसके अधिकतर अंकों में सिद्धेश्वर जी के खुद के पेंशन के पैसे भी इसके प्रकाशन में लगते रहे हैं और पेंशन के पैसे खर्च करने में इन्हें इसलिए आनंद का अनुभव होता है कि इनका मकसद लाभ कमाना नहीं, साहित्य और समाज को कुछ प्रदान करना तथा आमजन में राष्ट्रीय चेतना जागरित करना है। इस कार्य में भारत के प्राय: सभी भाषाओं के रचनाकारों से इन्हें नैतिक और रचनात्मक सहयोग मिलता रहा है। उसी का प्रतिफल है कि इस पत्रिका को स्तरीय रचनाओं का आजतक अभाव नहीं खटका है, क्योंकि देश भर के रचनाकारों ने इसकी

भूमिका को स्वीकार किया है। इसने अपने नाम को चरितार्थ इस मायने में किया है कि देश व समाज से जुड़े विभिन्न मुद्दों पर यह स्वस्थ विचार से लोगों को एक अच्छी-खासी मानसिक खुराक तो प्रदान कर ही रही है, उन मुद्दों पर इसकी पैनी दृष्टि भी रही है, जिनसे लोगों को मानसिक रूप से समृद्ध करने में इसने बहुत-कुछ सफलता भी पायी है।

'*विचार दृष्टि*' ने सात वर्ष पूर्व बिहार की राजधानी पटना से अपना सफर शुरू कर पिछले छह वर्षों से राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली से प्रकाशन के दौरान तमाम खट्टे-मीठे अनुभव प्राप्त किये, किंतु पाठकों एवं लेखकों का स्नेह और सहयोग ही इसके पीछे एक मजबूत स्तंभ की भाँति खड़ा रहा, यह इन्हीं के बल पर अपने कर्त्तव्य-पथ पर अविचलित भाव से आज भी नियमित रूप से चल रही है। पाठकों एवं आमजनों को स्वर देना, उनके दु:ख-सुख में एक सहृदय मित्र की भाँति न केवल उनके साथ खड़ा रहना, बल्कि देश व समाज के ज्वलंत मुद्दों पर किये जा रहे जनांदोलनों में अपनी सक्रिय भागीदारी निभाना यह अपना कर्त्तव्य समझती है। सात वर्षों की अपनी सेवावधि में इसकी कोशिश रही है कि सामाजिक-साहित्यिक सरोकारों से जुड़कर असली तस्वीर सामने रखे, ताकि विद्रूपता समाप्त करने में मदद मिल सके। अपने प्रयास में यह कितनी खरी उतरी, इसका दावा करना तो ठीक नहीं, पर प्रबुद्ध पाठकों एवं सुधी रचनाकारों की बढ़ती संख्या इस बात का द्योतक है कि अच्छे रास्ते पर चलनेवाले लोगों के दिल में इसने एक जगह बनायी है और वही इसके लिए प्रकाश स्तंभ का काम कर रही है। इसके संस्थापक परामर्शी होने के नाते मुझे इस बात का अहसास होता है कि यह सही दिशा में चल रही है। फिर भी पाठकों से यह अपेक्षा अवश्य की जाती है कि समय-समय पर पथप्रदर्शक की भूमिका निभाते हुए वे इसकी कमियों की ओर इसका ध्यान अवश्य आकृष्ट कराते रहें।

इस संदर्भ में एक और बात की चर्चा करना मैं जरूरी समझता हूँ कि हमारे देश का गौरवमय अतीत रहा है और इसकी पहचान अपनी अस्मिता से रही है। इसकी संस्कृति, सभ्यता, आहुति चेतना, स्वाधीनता संग्राम के दिनों के बलिदान तथा श्रमशक्ति इसकी विशेषता रही हैं। शिक्षा, साहित्य, कला एवं परंपरा से परिपूर्ण इस राष्ट्र की धरती वंदनीय रही है, किंतु आज हालात सोचनीय है, लेकिन इतनी भी नहीं कि बदली न जा सके। जरूरत केवल इस बात की है कि यहाँ के लोगों में चेतना भरी जाए और सबको खड़ा किया जाए कँधे-से-कँधा मिलाकर काम करने के लिए। मेरा विश्वास है कि तब तस्वीर बदलते देर न लगेगी, क्योंकि इतिहास साक्षी है कि देश को नयी राह हमेशा रचनाकारों एवं पत्रकारों ने दिखायी हैं। इसके आलोक में देश के खोये हुए अतीत

का गौरव पुनः प्राप्त करने में तथा लोगों के साथ कदम-से-कदम मिलाकर चलने में *'विचार दृष्टि'* पत्रिका काम करती रहेगी। कुल मिलाकर यह पत्रिका अपनी वैचारिक, सर्जनात्मक, विश्लेषणात्मक पाठ्य सामग्री के साथ-साथ एक साहित्यिक पत्रिका के राजनीतिक संपादकीय आलेखों के लिए भी संभवतः याद रखने लायक बन पड़ी है, क्योंकि इसके संपादक सिद्धेश्वर जी का मानना है कि आज कोई भी सवाल राजनीति से बचकर नहीं रह सकता।

इसके अतिरिक्त साहित्य-शीर्षक के *'कथा स्तंभ'* में कथासम्राट मुंशी प्रेमचंद के परिवार के एकमात्र जीवित कथाकार और रिश्ते में उनके भतीजे कृष्ण कुमार राय की प्रायः प्रत्येक अंक में समाविष्ट की जा रही मार्मिक कहानी इस पत्रिका का एक आकर्षण मानी जानी चाहिए। हमउम्र पचासी वर्षीय श्री राय का रचनात्मक सहयोग और समय-समय पर उनका मार्गदर्शन इस पत्रिका के लिए वरदान साबित हो रहे हैं। दृष्टि और अनुभव से संपन्न संपादक सिद्धेश्वर जी उनकी हार्दिकता के लिए हृदय से आभार मानते हैं और उनके दीर्घायु एवं स्वस्थ जीवन की कामना करते हैं।

ये राष्ट्रीय विचार मंच के राष्ट्रीय महासचिव तथा इसके मुखपत्र *'विचार दृष्टि'* के संपादक के पद पर रहकर इसके कठिनतम ग्रंथियों को भी सरलतम युक्तियों से सुलझाते हुए एक ओर जहाँ मंच के कार्यक्रमों को साकार करते रहे हैं, वहीं पत्रिका के नियमित प्रकाशन में भी अपनी अद्‌भुत क्षमता का परिचय दे रहे हैं। मूर्तरूप में ये हमारे बीच रहकर समाज एवं साहित्य की सेवा करने का मार्ग नयी पीढ़ी के लिए प्रशस्त कर रहे हैं। निःसंदेह इनके प्रयास ने रंग लाए हैं और मंच तथा पत्रिका ने इनके नेतृत्व में विकास की नयी मंजिलें तय की हैं और तेजी से पूरे भारत खासकर दक्षिण एवं पश्चिम भारत के राज्यों में अपने कदम बढ़ाये हैं। मंच एवं इस पत्रिका की उपलब्धियों के बारे में पूछने पर ये बताते हैं-'हम लोगों ने आमजन की आशाओं और आकांक्षाओं के अनुरूप काम किया है, जनहित को ध्यान में रखते हुए समाज और साहित्य की सेवा करने का प्रयास किया है। हमने क्षेत्रवाद की दीवारों को ध्वस्त कर उत्तर और दक्षिण के बीच की खाई भरने की कोशिश की है। भाषा के सवाल पर की जा रही राजनीति से दूर रहकर पाठकों एवं लेखकों को राष्ट्रभाषा हिंदी को संपर्क भाषा बनाने एवं उसे समृद्ध करने के साथ-साथ हमने सभी भारतीय भाषाओं के उन्नयन की लगातार कोशिश की है। इस प्रयास में मंच एवं विचार दृष्टि के साथ दक्षिण तथा पश्चिम भारत के साहित्यकारों एवं प्रबुद्धजनों का भरपूर सहयोग मिल रहा है जिससे मनोबल बढ़ा है।'

सिद्धेश्वर जी ने *'विचार दृष्टि'* का प्रकाशन मुख्य रूप से राष्ट्रीय चेतना

जागरित करने के ख्याल से किया है, क्योंकि ये ऐसा महसूस करते हैं कि आज के दौर में राष्ट्रीयता की भावना का जितना ह्रास होता जा रहा है, उतना और किसी चीज का नहीं। यह सबसे दु:खद स्थिति है। इसलिए समय का तकाजा है कि लोगों में राष्ट्र के प्रति प्रेम और सम्मान के भाव जगाये जाएँ जिनके बिना न तो समाज स्वस्थ होगा और न राष्ट्र सबल। इस देश के राजनीतिक दलों और उनके नेताओं में जिस तेजी से नैतिकता का क्षरण हो रहा है और सिद्धांत गायब हो रहे हैं, आज मीडिया की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका है। उसका यह दायित्व हो जाता है कि वह सामाजिक अथवा राजनीतिक महत्त्व के सवालों पर जनमत का निर्माण करे। समाज में आज जिस प्रकार हिंसक प्रवृत्तियाँ बढ़ रही हैं, हत्या, लूट-डकैती, अपहरण, बलात्कार और रंगदारी की घटनाएँ हो रही हैं, सामाजिक मूल्य-मर्यादाओं की रक्षा और मानदण्ड की स्थापना पत्रकारिता का दायित्व हो जाता है।

देश तथा दुनिया में बढ़ते आतंकवाद के माहौल में पत्रकारिता एक-दूसरे के बीच मैत्री शांति, अहिंसा सद्भाव एवं सामाजिक समरसता का भाव जगाने में एक अहम भूमिका अदा कर सकती है। पत्रकारिता के जरिये जनजीवन में सर्जनात्मकता पैदा की जा सकती है। बेरोजगारी और बेकारी की हालत में युवाशक्ति का रचनात्मक उपयोग कर विनाश के ताण्डव से देश व समाज को बचाया जा सकता है। सिद्धेश्वर जी इस दिशा में प्रयत्नशील हैं और इनकी *'विचार दृष्टि'* पत्रिका इसे मद्देनजर रखते हुए सतत् सचेत और चौकस है। इनके संपादकीय आलेख विचारोत्तेजक तो होते ही हैं, समय, समाज व देश के ज्वलंत मुद्दों पर विश्लेषणात्मक और विवेकपूर्ण भी होते हैं, जिनसे इनके अनुभव और चिंतन लोगों के बीच पहुँचकर उन्हें झकझोरते और आंदोलित करते हैं। समाचार-विश्लेषण के क्रम में ये बिना पूर्वाग्रह के उपलब्ध तथ्यों के आधार पर तर्क के माध्यम से समाचारों का सम्यक् विश्लेषण करते हैं, जो पाठकों के लिए रोचक तो होता ही है, ज्ञानवर्द्धक भी। इनके संवाददाताओं और प्रतिनिधियों की दृष्टि खोजी तथा तथ्यों की पारखी होती है। विभिन्न राज्यों की राजधानियों में विचार दृष्टि के ब्यूरो प्रमुख समाज को गहराई से समझनेवाले प्रवक्ता होते हैं जीवन के मर्म को समझते हैं। सामाजिकता की दृष्टि से ये व्यवहारकुशल और विनम्र स्वभाव के हैं। यही कारण है कि विचार दृष्टि की सामग्रियों को लोगों ने काफी सराहा है और इसकी निष्पक्षता की भूरि भूरि प्रशंसा की जाती है।

*'विचार दृष्टि'* की अपनी यात्रा में कई निर्णायक और ऐतिहासिक मोड़ हैं। 28 अंकों व हजारों पाठकों के स्नेह का यह मुकाम कर्मयोगी संपादक सिद्धेश्वर की दृष्टि व सकंलन का ही नतीजा है कि यह पत्रिका देश के स्तर पर अपनी

एक अलग पहचान बना रही है। अब यह बदलते जमाने की ही नहीं, जमाने को बदलने वाली संवाहिका बनती जा रही है। सिद्धेश्वर जी के दक्ष प्रयासों का ही यह असर हुआ कि *'विचार दृष्टि'* ने समूचे उत्तर भारत में विस्तार करने के बाद दक्षिण तथा पश्चिम भारत में भी दस्तक दी है। बहुल संस्कृतियों एवं बहुभाषियों के इस देश में यह पत्रिका एकात्मकता का संगठित सेतु हो चुकी है। *'विचार दृष्टि'* अब लोगों के बीच अंतरित आस्था होती जा रही है। इसलिये यह अब यह देश की आवाज है, क्योंकि इसने हमेशा अपने लक्ष्य पर उपेक्षित, पीड़ित, वंचित वर्ग को ही रखा और इसी प्रेरणा के साथ राष्ट्रीय चेतना को प्राथमिकता देकर इसने बुलंदियों को छूने की कोशिश की है। कुल मिलाकर यह आम आदमी के साथ हर उस मुहाने पर खड़ी रह रही है जहाँ उन्हें इसकी जरूरत व दरकार है। एक सतत प्रहरी की तरह निष्पक्षता और निभीर्कता के साथ यह सच का पक्ष लेते हुये जीवन मूल्य-मर्यादाओं के साथ सुधी पाठकों के भरोसे इसकी मुहिम चलती रहेगी वक्त के साथ और वक्त के आगे। लेकिन इसके लिये सिद्धेश्वर जी को पाठकों का सहयोग सबसे अधिक अहमियत रखता है। ये विश्वास दिलाते हैं कि ये पहले की तरह उनकी सेवा में तत्पर रहेंगे। जिस प्रकार चित्रकार अपना अपनापन रंगों व रेखाओं के जरिये व्यक्त करता है तथा शिल्पकार अपना अपनापन पाषाण-प्रतिभाओं में गढ़ता है, सिद्धेश्वर जी शब्दों और अक्षरों के माध्यम से पाठकों एवं आम आदमी की मनोभावनाओं को अभिव्यक्ति करते रहेंगे, क्योंकि यह सच है कि जो रचेगा वही बचेगा और इस प्रक्रिया में ये सभी पाठकों, विचार दृष्टि परिवार तथा राष्ट्रीय विचार मंच के सभी सदस्यों सहित अपने सभी हित चिंतकों एवं शुभेच्छुओं को शामिल कर चुके हैं।

## पीत पत्रकारिता

सिद्धेश्वर जी आज की पीत पत्रकारिता के दो मुख्य कारण बताते हैं--एक तो इसका व्यवसायीकरण और दूसरा पत्रकारिता के क्षेत्र में अच्छे और प्रतिभावान् लोगों का न आना। पत्र-पत्रिका के मालिक के दिमाग में आज अधिक-से-अधिक धन कमाने का ध्यान रह गया है। वे यह भूल गये हैं कि पत्र-पत्रिका उत्पादक नहीं, बल्कि सूचना व विचार के संवाहक और संप्रेषक होते हैं। यही कारण है कि सामाजिक सरोकार की पत्रकारिता आज खण्डित हो रही है। दूसरी बात यह है कि बेरोजगारी पराकाष्ठा पर होने की वजह से कम-से-कम वेतन में भी लोग पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन में काम पकड़ लेते हैं, जिसका नतीजा यह है कि नौकरशाहों, राजनीतिज्ञों तथा राजनीतिक कार्यकर्ताओं को ब्लैकमेल कर उनसे धन ऐंठते हैं। ऐसा देखा गया है कि पहले पत्रकारिता में साहित्यकार आते थें।

आज उनका अभाव खटकता है। आज जिनको लिखने-पढ़ने से कोई मतलब नहीं, वे ही पत्रकार बन बैठते हैं। यही कारण है कि किसी भी कार्यक्रम या आयोजन के प्रारंभ होने के पूर्व ही आयोजकों से प्रेस विज्ञप्ति माँगते हैं, ताकि उसी के आधार पर कुछ उल्टी-सीधी बात छाप दें और उन्हें अपने से कुछ लिखना न पड़े। आपने देखा होगा कि कभी-कभी पत्रकार आयोजन में वैसे लोगों के नाम समाचार में दे डालते हैं, जो या तो इस दुनिया में नहीं रहे या फिर उस आयोजन में उपस्थित नहीं हो सके। सिर्फ छपे-छपाये कार्यक्रम के आधार पर उनके नाम अतिथियों व वक्ताओं की सूची में डाल देते हैं और कभी-कभी तो मृत या अनुपस्थित लोगों के उद्‌गार भी प्रकाशित कर देते हैं। ऐसी पत्रकारिता को आप क्या कहेंगे ? पीत पत्रकारिता नहीं, तो और क्या ?

सिद्धेश्वर जी का कहना है कि तटस्थ व्याख्या और विश्लेषण के सिद्धांत की जानकारी न होने की वजह से कुछ युवा पत्रकार समाचार के नाम पर निम्न और घटिया किस्म का संपादकीय आलेख लिख डालते हैं यह चिंता का विषय है। सिद्धेश्वर जी का स्पष्ट मत है कि पत्रकारिता सामाजिक जीवन की एक धड़कन है, जिससे उसकी जीवंतता और प्राणवत्ता का बोध होता है। पत्रकारिता की मूल अवधारणा है परोपकार की भावना और जनजीवन से तादात्म्य स्थापित करना। विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के बाद पत्रकारिता लोकतंत्र का चौथा स्तंभ है जो उत्पीड़ित और समाज की निचली सीढ़ी पर बैठे लोगों की आवाज बनकर सरकार के समक्ष उपस्थित होता है और जिसमें समाज का प्रतिबिंब परिलक्षित होता है। व्यक्ति में सामाजिक, राजनीतिक और राष्ट्रीय चेतना जागरित करने का दायित्व पत्रकारिता का है।

## वैचारिक क्रांति की अनुगूँज

एक संवेदनशील साहित्यसेवी और सामाजिक कार्यकर्त्ता पत्रकारिता की दुनिया को किस नजर से देखता है, इसका दिग्दर्शन सिद्धेश्वर जी के संपादकत्त्व में पिछले सात वर्षों से लगातार नियमित रूप से प्रकाशित *'विचार दृष्टि'* के विभिन्न अंकों से होता है। वैचारिक क्रांति लाने के लिए आमजन में चेतना जागरित करना इस पत्रिका का उद्देश्य है, क्योंकि इसके संपादक की स्पष्ट अवधारणा है कि जब देश में हर आदमी गलत काम कर रहा हो, प्रवृत्ति सुविधाभोगी हो गयी हो, लोकतंत्र की आड़ में निरंकुश भीड़तंत्र की हुकूमत हो, शासन-प्रशासन की ऊँची कुर्सियों पर बैठे लोगों ने कानून अपने हाथ में ले लिये हों, सांविधानिक संस्थाओं के अधिकारी एवं जनप्रतिनिधि अपने कर्त्तव्य भूल गये हों, पूरा प्रशासन आकंठ भ्रष्टाचार में डूब गया हो तथा जनता किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गयी हो, तब

खूनी क्रांति नहीं, वैचारिक क्रांति जरूरी हो जाती है। यह वैचारिक क्रांति न तो सत्ता का सुख भोग रहे राजनीतिज्ञ ला सकते हैं और न सुविधाभोगी भ्रष्ट अधिकारी, जिनके पास विचार का अभाव होता है। यह वैचारिक क्रांति एक ही बात को सदियों से दोहराते आ रहे कथावाचक भी नहीं ला सकते। लोगों के सोचने का ढंग, विचार करने का ढंग, अन्याय के खिलाफ लड़ने की लचर पद्धति को बदलने की क्षमता यदि किन्हीं में है, तो वे हैं प्रबुद्ध जन चाहे वे महाविद्यालय या विश्वविद्यालय के विचारवान् छात्र हों, प्राध्यापक हों, लेखक-साहित्यकार हों या फिर संचारमाध्यमों से जुड़े प्रबुद्ध पत्रकार। सच की लड़ाई वे ही लड़ सकते हैं, अपने विचारों के माध्यम से वैचारिक क्रांति वे ही ला सकते हैं। कुछ इसी भाव से प्रेरित होकर राष्ट्रीय चेतना की इस *'विचार दृष्टि'* पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इसकी प्रतिबद्धता निश्चित तौर पर आमजनों एवं प्रबुद्धजनों को सर्वश्रेष्ठ चीजों को प्रस्तुत करना तथा लोकतांत्रिक बनाने के साथ सांप्रदायिकता से संघर्ष करना तथा शोषित, पीड़ित, उपेक्षित, पिछड़े, अल्पसंख्यक और गरीब लोगों के प्रति वफादारी बरतना है। शोषित एवं पीड़ित समाज की करुण तथा खतरनाक स्थिति का यह पत्रिका प्रतिबिंब बने, इसी कामना के साथ यह प्रकाशित की गयी है। प्रयास यही है कि वैचारिक धरातल पर झकझोरने और आंदोलन की मानसिकता तैयार करने में यह पत्रिका अहम भूमिका निभाए। अवधारणा यह है कि यह पत्रिका लोगों की गैरबराबरी, शोषण, दु:ख-दर्द और दमन के विरुद्ध आम आदमी को वाणी दे, आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग का सामूहिक नरसंहार, औरतों पर अत्याचार, तेजी से हो रहे राष्ट्रीयता की भावना का ह्रास, राजनीति में तेजी से गिरते मूल्य इत्यादि इस पत्रिका के लेखकों की पीड़ा बनें। सिद्धेश्वर जी कहते हैं कि इसके संचालक-संपादक मंडल के अध्यवसाय और योजनाबद्धता से इन भावनाओं की कदर करते हुए हिंदी पत्रकारिता को एक नया आयाम देने का हर संभव प्रयास जारी है। विभिन्न विधाओं की अनेक विषयों पर कई तरह की रचनाओं से लबरेज हिंदी पाठकों, विशेषकर वर्तमान पीढ़ी के रचनाकारों के लिए यह पत्रिका धरोहर के रूप में सहेजकर रखी जा सके, इसके लिए रचनाओं के चयन में कुशलता और सतर्कता बरती जा रही है। कहना नहीं होगा कि राष्ट्रीय भावनाओं पर आधारित यह पत्रिका देश व समाज की ज्वलंत समस्याओं को निर्भीकता से विश्लेषण करती है और सूचनाओं के बढ़ते शोर-शराबे में से उपयोगी जानकारी को पर्याप्त विस्तार, गहराई और साफगोई से प्रस्तुत करने का प्रयास कर रही है।

देश और समाज के उत्थान के लिए खरी-से-खरी तथा सही बातें कहने में यह पत्रिका कोताही नहीं करती, क्योंकि संपादक को यह विश्वास है कि

प्रजातंत्र का भविष्य पत्र-पत्रिकाओं की निष्पक्षता, निर्भीकता और मजबूती पर ही उज्ज्वल हो सकता है। यही कारण है कि समाज की रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों पर हमला करने, राजनीतिक दलों एवं उनके नेताओं की पोलें खोलने और समाजविरोधी तत्त्वों एवं देशद्रोही ताकतों के विरुद्ध आवाज उठाने में यह पत्रिका कभी कंजूसी नहीं करती है और देश के संचालकों में सूखी डाल में अग्नि की तरह सोयी सुप्त चेतना को विचारों के माध्यम से जागरित करने और संघर्ष तथा रचना की दिशा में मोड़ने का कार्य सतत कर रही है। इसी क्रम में यह पत्रिका एक और दायित्व निभा रही है कि यह प्रबुद्धजनों को 'नकली बौद्धिक कुहासा वाले खोल से बाहर लाकर और उनके सोचने का अंदाज बदलकर वैचारिक क्रांति लाने का प्रयास करती है।'

*'विचार दृष्टि'* पूरी तरह अव्यावसायिक पत्रिका है। इसका एक संचालक और संपादक-मंडल का छोटा-सा परिवार है जिसे समय-समय पर पद्मश्री डॉ० श्याम सिंह शशि, प्रो० रामबुझावन सिंह, श्री गिरीशचन्द्र श्रीवास्तव, श्री जियालाल आर्य, श्री बाल शौरि रेड्डी, डॉ० सच्चिदानंद सिंह 'साथी', श्री जे० एन० पी० सिन्हा, श्री बाँकेनन्दन प्र० सिन्हा तथा प्रो० धर्मेन्द्र नाथ अमन तथा डॉ० एल.एन. शर्मा के परामर्शों से बल मिलता है। इनके अतिरिक्त मंच के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष प्रो० साधुशरण की निरंतर सलाह से पत्रिका को काफी प्रोत्साहन मिलता है। पत्रिका से जुड़े समूह अवैतनिक रूप से इसके लिए कार्य करते हैं। बेटी अंजलि, भतीजे दीपक, भानजे दिलीप व सुधांशु तथा शुभेच्छु शशिभूषण, पीयूष एवं अनुज का शब्दसंयोजन और सेटिंग में योगदान सराहनीय कहा जाएगा। ये सभी लोग आजीविका के लिए अन्यत्र काम करते हैं।

मंच तथा पत्रिका को आत्मनिर्भर बनाने के प्रश्न के उत्तर में इनका कहना है कि सदस्यता अभियान के साथ-साथ विज्ञापन की ओर इन्होंने खास ध्यान दिया है। मंच के शुभेच्छु तथा पत्रिका के पाठक व लेखक अच्छी तरह समझते हैं कि मंच और पत्रिका राष्ट्रीय चेतना जागरित करने तथा राष्ट्रीयता की भावना भरने में अनवरत कार्यरत हैं तथा लोगों को सस्ती लोकप्रियता की चीजें न परोसकर एक अच्छी खासी मानसिक खुराक प्रदान कर रहे हैं। मंच को जहाँ आम आदमी की चिंता है, वहीं विचार दृष्टि को उन्हें स्वस्थ बनाने की चिंता है। यही कारण है कि समाज के हर तबके का सहयोग प्राप्त है।

किसी तरह विज्ञापनदाताओं, शुभचिंतकों एवं सदस्यों के सहयोग से छपाई का खर्च जुटाया जाता है। इसके लेखकों का नैतिक व रचनात्मक सहयोग भी संबल है। पत्रकारों की जवाबदेही के सवाल पर सिद्धेश्वर जी का कहना है कि ये पत्रकार ही हैं, जो देश को सही दिशा दे सकते हैं और सही रास्ते पर ले जा

सकते हैं। यही कारण है कि इन्होंने पत्रकारिता को बड़ी गंभीरता से लिया है और संपूर्ण पत्रकारिता के भविष्य को भी अपनी चिंता का विषय बनाया है। इसी के साथ ही विचार दृष्टि के माध्यम से साहित्य-सेवा और राष्ट्रभाषा हिंदी के उन्नयन हेतु ये सदैव प्रयत्नशील हैं। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विभिन्न विधाओं में हिंदी के जाने-माने विद्वानों से अनेक विषयों पर लेख लिखवाते हैं और अपनी पत्रिका '*विचार दृष्टि*' में छापते हैं। विगत पाँच-सात वर्षों में हिंदी साहित्य के विविध विषयों पर भरपूर सामग्री इस पत्रिका में प्रकाशित हुई है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रभाषा हिंदी के विकास के लिए भारतीय भाषाओं को भी इस पत्रिका में ये प्रश्रय देते हैं। खासकर दक्षिण भारतीय मलयालम, तमिल, तेलुगु और कन्नड़ भाषाओं में विशेष सामग्री प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस पत्रिका ने स्वस्थ, आदर्श और सम्मानित पत्रकारिता की मिसाल कायम की है, क्योंकि पिछले छह वर्षों से निर्बाध प्रकाशित होनेवाली इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य विविध विधाओं की रचनाओं द्वारा जनचेतना के विभिन्न आयामों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना रहा है।

इनके साथ मंच और पत्रिका की एक बहुत बड़ी बिरादरी हिंदी के प्रचार-प्रसार में लगी है, जो हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं को समीप लाने का काम बड़ी ईमानदारी से कर रही है। इस दिशा में चेन्नई में डॉ० मधु धवन, डॉ० बालशौरि रेड्डी, पी० आर० वासुदेवन, डॉ० ईश्वर करुण, डॉ० विद्या शर्मा, डॉ० कोकिला, बैंगलोर में वीणा जैन, हैदराबाद में प्रो० नेहपाल सिहं वर्मा, डॉ० ऋषभदेव शर्मा, तिरुवनंतपुरम में डॉ० एन० चंद्रशेखरन नायर, डॉ० रति सक्सेना, डॉ० एन० सुरेश, मुंबई में श्री वीरेन्द्र याज्ञिक, डॉ० शोभनाथ यादव, अहमदाबाद में डॉ० भगवतशरण अग्रवाल, डॉ० ठाकुर वीरेन्द्रकुमार सिंह, डा० ए०बी०सीई प्रसाद डॉ० इस्पाक अली, डॉ० किशोर डाबरा, कमल किशोर दूबे 'कमल', कोलकाता में श्री जितेन्द्र धीर, श्री अरुण कुमार सिंह, दिल्ली में डॉ० रमाशंकर श्रीवास्तव, डॉ० धर्मेन्द्रनाथ अमन, डॉ० अनिल दत्त मिश्र सहित बिहार के अनेकानेक विद्वज्जन काम कर रहे हैं।

'*विचार दृष्टि*' के कई विशेषांक निकले और बहुत लोकप्रिय हुए जिनमें गीतकार गोपीवल्लभ पर जो विशेषांक निकला, उसकी मुक्तकंठ से साहित्य जगत में सराहना की गयी। इसी प्रकार अधिवेशन विशेषांक और जे० पी० की जन्मशती पर जयंती विशेषांक का सारे देश में स्वागत हुआ, क्योंकि वह अनूठा था। इस प्रकार एक सांस्कृतिक जनजागरण में '*विचार दृष्टि*' का बड़ा योग रहा।

'*विचार दृष्टि*' के संपादन के क्रम में सिद्धेश्वर जी ने एक पत्रिका के सफल प्रकाशन के लिए जो रहस्य होते हैं, उन्हें समझा और देश के विभिन्न राज्यों के नये-नये

लेखक निर्मित किये। उदीयमान प्रतिभाओं की परख में ये कुशल हैं। ये नये लेखकों को ठोक-पीटकर निखार देते हैं। साहित्य के अतिरिक्त समाज, राजनीति, शिक्षा तथा कला-संस्कृति से संबंधित सामग्रियों का समावेश कर इस पत्रिका ने पूरे समाज का सम्मान अर्जित किया है, मात्र किसी एक दल या वर्ग का नहीं। आज के बदलते दौर में यह सम्मान बहुत कम पत्रिकाओं को मिल पाता है। इस पत्रिका की एक विशेषता यह है कि इसमें सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना प्रखर रूप में उभर कर आती है। यह पत्रिका लकीर का फकीर नहीं है, क्योंकि इसमें वैचारिक क्रांति के दर्शन होते हैं। पत्रिका अपने नगर और राज्य की टटकी खबरों के साथ-साथ अन्य राज्यों की साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधियों का भी दर्पण बन रही है।

## मंच एवं पत्रिका का राष्ट्रीय अधिवेशन

राष्ट्रीय विचार मंच के इतिहास में यह पहला मौका आया जब इसके राष्ट्रीय महासचिव सिद्धेश्वर ने मंच की शाखाओं एवं अपने सहयोगियों के सहयोग से सत्ता के केंद्र बने बहादुरशाह जफर की ऐतिहासिक धरती, जिसने अनेक उत्थान-पतन देखे, देश की राष्ट्रीय राजधानी नयी दिल्ली के दीनदयाल उपाध्याय मार्ग स्थित राजेन्द्र भवन में मंच तथा *'विचार दृष्टि'* का प्रथम द्विदिवसीय राष्ट्रीय अधिवेशन का सफल आयोजन विगत 16 एवं 17 नवम्बर 2002 को किया गया। राजधानी की राजनीतिक हलचलों के बीच एवं विचारशून्यता की इस बेला में आजादी के बाद 'वैचारिक क्रांति के नये आयाम और हमारा दायित्व' को केंद्र में रखकर आयोजित इस अधिवेशन में देश के उन ज्वलंत सवालों को विचार-विमर्श का मुद्दा बनाया गया जिनसें भारत को आज भी जूझना पड़ रहा है। इसके मद्देनजर अधिवेशन के विभिन्न सत्रों में निम्न चार विषयों को विचार-विमर्श के लिए शामिल किया गया--

1. सामाजिक समरसता और सांप्रदायिक सद्भाव के बिना राष्ट्रीय एकता खतरे में
2. वैश्विकीकरण और आतंकवाद : आज की चुनौती
3. बढ़ती आबादी पर अंकुश में युवाओं की भूमिका
4. भारतीय भाषाओं की वर्तमान स्थिति और राष्ट्रीय नीति

अधिवेशन के निर्धारित इन मुद्दों पर पूरे भारत का प्रतिनिधित्व कर रहे विभिन्न राज्यों के संवदेनशील और विचारवान साहित्यकारों एवं विद्वज्जनों ने सामाजिक सरोकारों को उठाने, पहचानने तथा राजनीति सहित समाज के हर क्षेत्र में गिरते मूल्यों, मर्यादाओं की पुनर्स्थापना की इच्छा जतायी, साथ ही विकृत मानसिकता को रोककर रचनात्मक प्रवृत्ति को प्रेरित करने तथा अन्याय, शोषण

और भ्रष्टाचार के विरुद्ध वैचारिक क्रांति के माध्यम से जनचेतना जागरित करने का संकल्प लिया गया। आजाद भारत के प्रथम राष्ट्रपति देशरत्न डॉ० राजेन्द्र प्रसाद की सादगी, बौद्धिकता तथा सदाशयता को समर्पित इस अधिवेशन का उद्घाटन जहाँ भारत सरकार के तत्कालीन रेलमंत्री नीतीश कुमार ने किया, वहीं सांध्य सत्र में आयोजित अखिल भारतीय सर्वभाषा कविसम्मेलन को भारत सरकार की तत्कालीन स्वास्थ्यमंत्री सुषमा स्वराज, सांसद बालकवि बैरागी और मधुर शास्त्री ने अपनी उपस्थिति से गरिमा प्रदान की। श्री यू० सी० अग्रवाल की अध्यक्षता में आयोजित **'मूल्य माटी के'** के लोकार्पण समारोह के उद्घाटन सत्र को मुख्य अतिथि के रूप में भारतीय सेना के जनरल एन० एस० मलिक, विशिष्ट अतिथि के रूप में जहाँ केरल हिंदी साहित्य अकादमी के अध्यक्ष डॉ० एन० चन्द्रशेखरन नायर, प्रेसिडेंसी कॉलेज, चेन्नई की प्राध्यापिका डॉ० पी० सी० कोकिला ने अपनी उपस्थिति से इसे गौरवान्वित किया। कुलदीप गौहर, डॉ० राजेंद्र गौतम, डॉ० वीरेन्द्र कुमार तिवारी, राजेश 'चेतन', सतीश सागर, डॉ० धर्मेन्द्रनाथ अमन, डॉ० सहदेव सिंह 'पाचर', श्रीमती अल्केश त्यागी, श्रीमती जशोदा प्रकाश, चंद्र प्रकाश माया, डॉ० एन० सुरेश, डॉ० प्रेमा खुल्लर तथा धनंजय श्रोत्रिय ने अपनी रचनाओं का पाठ कर सर्वभाषा कविसम्मेलन को जीवंत बनाया। डॉ० लक्ष्मीशंकर वाजपेयी ने मंच का सफल संचालन कर अपनी परिपक्वता का परिचय दिया।

इस प्रकार पूरे सात सत्रों में चले मंच के इस राष्ट्रीय अधिवेशन को जहाँ अहिंसा यात्रा तथा अहिंसा आंदोलन से जुड़े कई मुनि-संतों का सान्निध्य प्राप्त हुआ, वहीं दिल्ली नगर निगम के पार्षद व अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष ईश्वर गोयल ने अपनी उदारता एवं सहृदयता का परिचय देकर पूरे अधिवेशन को सफल बनाया।

विभिन्न राज्यों के जिन प्रमुख साहित्यकारों, लेखकों, प्रबुद्धजनों, चिंतकों-विचारकों व प्रखर पत्रकारों ने इस अधिवेशन के विविध विषयों पर अपने विचार प्रस्तुत किये तथा विद्वान् लेखकों ने अपने आलेख भेजकर इसे सफल बनाया और आम जनमानस को झकझोरा, उनमें दिल्ली के यू० सी० अग्रवाल, डॉ० परमानंद पांचाल, डॉ० रमाशंकर श्रीवास्तव, हरियाणा के प्रो० कुमार रवीन्द्र, इलाहाबाद के डॉ० वीरेन्द्र कुमार तिवारी, चेन्नई के डॉ० विद्या शर्मा, और डॉ० पी० सी० कोकिला, डॉ० गुलाबचंद कोटड़िया, पटना के प्रो० साधुशरण, डॉ० रामशोभित प्र० सिंह, ज्योति शंकर चौबे, के० के० विद्यार्थी, रजनीकांत सिन्हा, डॉ० पी० दयाल, गोविंद शर्मा, डॉ० शिववंश पाण्डेय, डॉ० कलानाथ मिश्र, केरल के प्रो० एन० सुरेश के नाम उल्लेखनीय हैं।

अधिवेशन के पटल से सामाजिक समरसता, सांप्रदायिकता, वैश्विकीकरण, आतंकवाद, बढ़ती आबादी, भारतीय भाषाएँ तथा वैचारिक क्रांति पर प्रस्ताव पारित हुए। इस अधिवेशन की एक और विशेषता यह रही कि मंच के पटल से पहली बार राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत देश के सुपरिचित तीन हस्ताक्षरों को देश व समाज में चेतना जागरित करने के लिए शॉल, प्रतीक चिह्न एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान कर विचार पुरस्कार से सम्मानित किया गया। मंच के तत्कालीन राष्ट्रीय अध्यक्ष न्यायाधीश बनवारी लाल यादव को मरणोपरांत 'विचार रत्न', सुप्रसिद्ध समाजवादी चिंतक श्री किशन पटनायक को 'विचार भूषण' तथा उत्तर और दक्षिण के साहित्य सेतु डॉ० एन० चंद्रशेखरन नायर को 'विचारश्री' से सम्मानित किया गया। समन्वयक की हैसियत से इस पूरे अधिवेशन को सफलता की मंजिल तक पहुँचाने का दायित्व निभाया मंच के राष्ट्रीय महासचिव और *'विचार दृष्टि'* के संपादक श्री सिद्धेश्वर जी ने और इनके हर कदम के सहयोगी डॉ० अनिल दत्त मिश्र, डॉ० रमाशंकर श्रीवास्तव तथा डॉ० धर्मेंद्रनाथ अमन ने अपनी अद्‌भुत क्षमता का परिचय दिया। मंच के कोषाध्यक्ष संजय सौम्य, युवा कोषांक के महासचिव सुधीर रंजन तथा शशि भूषण ने अपने अनेक युवा साथियों के सहयोग से इसे मूर्त रूप दिया।

इस प्रकार नयी दिल्ली में राष्ट्रीय अधिवेशन का आयोजन कर सिद्धेश्वर जी ने राष्ट्रीय विचार मंच और *'विचार दृष्टि'* के विराट स्वरूप का साक्षात्कार कराया।

## राजनीति से लगाव

गाँधीवादी होने के कारण सिद्धेश्वर जी अहिंसा के प्रतिपादक तो हैं ही, साथ ही प्रतिष्ठा के मामले में काफी संवेदनशील भी हैं। ये सदैव सादा जीवन और उच्च विचार के तहत कार्य कर रहे हैं। सामाजिक जीवन में इन्होंने हमेशा आदर्श को प्रश्रय दिया और स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के पश्चात् जब इन्होंने राजनीति को अपनाया तो उसे भी इन्होंने आदर्श की तरह लिया है।

सामाजिक एवं राजनीतिक अनुभवों से सराबोर अपनी बौद्धिक क्षमताओं की प्रकाशमणि से राष्ट्रीय विचार मंच की बैठकों का ये सफलतापूर्वक संचालन करते हैं और मंच तथा विचार दृष्टि के माध्यम से ये नागरिक स्वतंत्रता व लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए अपनी आवाज बुलंद करते रहे हैं। यही नहीं सार्वजनिक जीवन में, खासकर राजनीति में शुचिता को बढ़ाने के लिए ये हमेशा सतर्क रहते हैं।

मर्यादा और समाज को एकसूत्र में बाँधनेवाले सिद्धेश्वर जी विशुद्ध

सामाजिक व राजनीतिक कार्यकर्ताओं का सही मायने में प्रतिनिधित्व करते हैं। समाज अथवा पार्टी में कोई छोटा हो या बड़ा, ये हर एक के साथ बड़ी सौम्यता से पेश आते हैं। समाज का प्रत्येक व्यक्ति इनके साथ सदैव अपने को गौरवान्वित महसूस करता है। ये न सिर्फ कठिन स्थिति में सहज रहते हैं, बल्कि दूसरों को भी सहज बने रहने को प्रेरित करते हैं।

सिद्धेश्वर जी राजनीति से जुड़े हैं, क्योंकि इनका मानना है कि कोई रचनाकार अपने को राजनीति से उदासीन रखकर आम जिंदगी को समझ सकेगा, यह मुश्किल है। राजनीति चाहे कितनी भी गंदी क्यों न हो गयी हो, उसे समझने का प्रयास करना होगा। राजनति को बिना समझे स्वच्छता का सपना और जनता की बेहतरी का सपना नामुमकिन है। इनका कहना है कि सर्जन केवल कलम से ही नहीं होता, इसके लिए ज्ञानात्मक संवदेना और संवेदनात्मक ज्ञान का होना जरूरी है, क्योंकि इन दोनों के संयोग से ही सर्जनात्मक उँचाई की ओर बढ़ा जा सकता है। संगठनों, गोष्ठियों, परिसंवादों, परिचर्चाओं, बहसों तथा विचारों के आदान-प्रदान से संवेदना में धार आती है और दृष्टि मिलती है। संगठन उत्प्रेरक की भूमिका अदा करता है और उसकी उपस्थिति रचनाकार की चेतना को रूपांतरित करती है। ये चाहते हैं कि इन संगठनों के माध्यम से उन मूल्यों की रक्षा की जाए जो जात-पात की संकीर्णता और सांप्रदायिकता से बचाए और करुणा एवं मनुष्यता की रक्षा करने की सोच विकसित करे। इसके लिए लेखकों और प्रबुद्धजनों को बौद्धिक रूप से संघर्ष के लिए तैयार रहने की आवश्यकता है, क्योंकि पिछले कई वर्षों में फासीवाद ने अपने चेहरे के कई रंग बदले हैं, संवेदना पर कुठाराघात किया है, जिसका एक उदाहरण गुजरात का दंगा है।

सिद्धेश्वर जी समाजवादी धारा की राजनीति में संप्रति जद (यू०) में एक ईमानदार क्रियाशील कार्यकर्ता की हैसियत से जुड़े हैं। किंतु भारतीय राजनीति की आज जो स्थिति है, उसमें चाटुकार एवं नवनीतलेपक की प्रधानता है। पार्टी के शीर्ष पर बैठे नेताओं के आगे-पीछे रहने तथा उन्हें दर्शन देते रहने की प्रवृत्ति कार्यकर्ताओं में इधर हाल के वर्षों में काफी बढ़ी है। चाटुकारिता की इस दौड़ में प्रबुद्धजन अपने को बहुत पीछे पाते हैं। दूसरी ओर किसी पार्टी में प्रबुद्धजनों की पूछ कम होती जा रही है, क्योंकि राजनीति में आपराधिक प्रवृत्ति के लोगों का बोलबाला बढ़ता जा रहा है और उनके सहयोग के बिना पार्टी अथवा उसके नेता का चलना दूभर-सा हो गया है। अपनी सुरक्षा के लिए नेताओं के द्वारा अपराधियों को संरक्षण मिल रहा है।

राजनीति में सिद्धेश्वर जी की काफी अभिरुचि है। यूँ तो सेवावधि के

दौरान भी इन्होंने, पत्र-पत्रिकाओं तथा अपनी रचनाओं के माध्यम से राजनीति में अपनी दिलचस्पी का परिचय दिया है, किंतु सेवानिवृत्ति के पश्चात् बाजाप्ता समता पार्टी की सदस्यता ग्रहण कर सामयिक मुद्दों पर न केवल अपने विचार व्यक्त करते रहे हैं, बल्कि उन मुद्दों को लेकर जब कभी जद (यू) पार्टी की ओर से धरना या बंद का आयोजन होता है, तो उसमें शामिल होने के साथ-साथ अनेक बार जेल के सीकचों में भी इन्हें जाना पड़ा है। सिद्धेश्वर जी ऐसे विरल राजनीतिक कार्यकर्त्ता व नेता हैं, जिन्होंने राजनीति में रहकर भी अपनी संवेदनशीलता को कायम रखा है। संवेदनशीलता ही रचनाधर्मिता की वह पहली और अनिवार्य शर्त है, जिसे सिद्धेश्वर जी ने कायम रखी है। इनकी मानवीय संचेतना और संवेदना का ही प्रतिफल है कि इनकी एक-से-एक अच्छी कृतियाँ आयी हैं, चाहे वे निबंध-संग्रह हों या काव्य-संग्रह।

सच कहा जाये तो इस देश में साहित्यकार अभी भी जन-मानस में अभिनंदनीय नहीं बन सका है जबकि राजनेता शीघ्र ही तालियों की गड़गड़ाहट पर झूम उठता है और जीवन में एक बार भी विधानसभा का संसद में जगह पा गया तो सरकारी पेंशन आदि लेकर तमाम आर्थिक संकटों से मुक्त हो जाता है। और यदि येन-केन प्रकारेण स्वतंत्रता सेनानी में अपना नाम दर्ज करा लेता है तो फिर क्या कहने। चांदी ही चांदी, किंतु सिद्धेश्वर जी इसके अपवाद स्वरूप हैं। कारण कि साहित्यकार एवं पत्रकार के रूप में तो इन्होंने ख्याति अर्जित की ही, सामाजिक कार्यकर्ता की हैसियत से भी इन्होंने अपनी एक अलग पहचान बनाई है। इस कारण से राजनेता की कतार में जाकर विधानसभा अथवा संसद से वंचित रहना इन्हें नहीं खला। वैसे यह बात दिगर है कि समाज के प्राय: सभी तबके के लोग इन्हें विधायक अथवा सांसद के रूप में देखना चाहते हैं। लेकिन पता नहीं क्यों सन् 2000 में भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग से स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति लेने के बाद सन् 2005 में संपन्न दो बिहार विधान सभा चुनावों में जब अवसर आए, तो स्वेच्छा से टिकट के दावेदार ये नहीं हुए। पूछने पर इन्होंने बताया कि समाज, साहित्य एवं पत्रकारिता के क्षेत्र में रहकर जो प्रतिष्ठा ये पा रहे हैं वे सब धूल में मिल जाती। और विधायक बनने पर जो बौछारें होतीं सो अलग। वैसे इनका कहना है कि राजनीति में जल्दबाजी घातक सिद्ध होती है और सिद्धेश्वर जी यह मानते हैं कि प्रबुद्धजनों को राजनीति में भाग लेना चाहिए, पर राजनीति में आने का यह कतई मतलब नहीं कि विधानसभा या ससंद में ही जायें। हालांकि भारतीय राजनीति का जो वर्तमान परिदृश्य है उसमें राजनीति में प्रवेश का आदी ही हो गया है विधायक अथवा सांसद बनना, आखिर तभी तो आज के युवा वर्ग एक-दो चुनाव में विधायकों व सांसदों का सहयोग करने के बाद तुरत उस पद का स्वयं दावेदार

बन जाते हैं। सिद्धेश्वर जी इसके अपवाद हैं। यों तो सरकारी सेवा में रहकर भी इनकी काफी दिलचस्पी राजनीति में रही और पिछले दो तीन दशक से राजनीति में इन्होंने अपनी सक्रिय भूमिका निभायी है और आज भी ये सक्रिय रूप से जनता दल (यू०) से जुड़े हैं और दल के नेतृत्व के आह्वान पर तथा दल के निर्णयानुसार जनता के सवालों पर ये संघर्ष में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करते हैं। राजनैतिक दल से रिश्ता रखने के बावजूद कभी किसी से राजनीतिक लाभ उठाने की कोशिश इन्होंने नहीं की।

## राजनीति में प्रबुद्धजनों की भागीदारी

सिद्धेश्वर जी इस मत के हैं कि लेखकों अथवा प्रबुद्धजनों के लिए केवल लेखन से जुड़े रहना काफी नहीं है, बल्कि उन्हें बाकायदा किसी सिद्धांतवादी राजनीतिक दल का सदस्य बनकर राजनीति करनी चाहिए और उन्हें भी सड़क पर उतरना चाहिए। आजादी के पूर्व प्रबुद्धजनों ने अहम भूमिका निभायी थी, किंतु आजादी के बाद इस देश के बुद्धिजीवी वर्ग ने देशनिर्माण का काम राजनेताओं के जिम्मे छोड़कर अपना निजी और पारिवारिक जीवन सुखमय बनाने में अपने को व्यस्त रखा। उनके लिए राजनीति अस्पृश्य हो गयी उन्हें अपनी ही सुविधाओं का जुगाड़ करना आसान जान पड़ा। इसका नतीजा यह हुआ कि एक ओर जहाँ भारतीय समाज में बुद्धिजीवी की भूमिका सीमित हो गयी, वहीं दूसरी ओर राजनीतिक दल विचारहीन, और सिद्धांतहीन होते गये। सिद्धेश्वर जी का मानना है कि किसी देश का प्रबुद्ध वर्ग ही उसकी अंतश्चेतना होता है और वही समाज में बहस को जिंदा रखकर जनमत तैयार करता है। आज स्थिति यह है कि राजनीतिक दलों ने बुद्धिजीवियों और रचनाकारों को या तो अपने से दूर रखने का प्रयास किया है या उन्हें अपना अनुचर बना लिया है। आज जब पानी खतरे के निशान से ऊपर आ गया है और बाहर बह रहा है तो बुद्धिजीवियों को असली भूमिका याद आ रही है और राजनीतिक दलों व उनके नेताओं को न कोसने में लगे हैं। जो बुद्धिजीवी ऐसा नहीं करते, उन्हें सिद्धेश्वर जी धिक्कारते हुए बताते हैं कि बहुत सारे प्रबुद्ध लोग भी राजनीति के नाम पर नाक-भौं सिकोड़ते हैं। बेकार ही ये उन्हें अपने हाथ रंगने की सलाह देते हैं, जो राजनीति को समझते हैं उनका पक्ष लेने का सुझाव देते हैं, क्योंकि राजनीति ही इस वक्त पूरी दुनिया की नियति है, साहित्य नहीं। आज के भयावह समय में तमाम प्रबुद्धजनों, लेखकों, साहित्यकारों, कलाकारों को अपने हाथ रंगने पड़ेंगे, सिद्धेश्वर जी की यह स्पष्ट धारणा है। बहर हाल राजनीति तो अपना रंग दिखाती ही रहेगी, लेकिन ताजा हवा के झोंके की तरह। ये देश व समाज को एक अच्छा भविष्य प्रदान करे, यही आशा की जाती है।

## जनता को चौकस होना होगा

जब व्यक्ति समाज और देश की भयावह परिस्थितियों का सामना होते नहीं देखता है, तब वह भगवान् को याद करने लगता है और तभी उसमें शुचिता, सात्त्विकता व निर्मलता जैसे गुण स्वत: प्रादुर्भूत होने लगते हैं तथा उसमें अन्याय का विरोध करने की क्षमता उद्‌भूत होने लगती है। ऐसा व्यक्ति विषमतम परिस्थितियों में भी अपने पथ से कभी विचलित नहीं होता।

मंच ने आम आदमी को बराबर सलाह दी है कि भारतीय लोकतंत्र नामक जहाज में एक मामूली सुराख हो गया है। जहाज धीरे-धीरे डूबेगा, क्योंकि इस लोकतंत्र के दो स्तंभों कार्यपालिका, विधायिका को भ्रष्टाचार और अनैतिकता रूपी दीमकें तो चाट ही रही हैं, तीसरे स्तंभ न्यायपालिका पर भी उँगलियाँ उठने लगी हैं और चौथा स्तंभ मीडिया व्यावसायिकता के चलते पीली पत्राकारिता पर उतर आयी है। विचार दृष्टि पत्रिका लगातार आम जन को सचेत कर रही है, क्योंकि मामला दिन-प्रतिदिन गंभीर होता जा रहा है। 53-54 सालों के इस संसदीय लोकतंत्र की संस्थाओं की सारी कमजोरी, लापरवाही, अराजकता और गैरजिम्मेवारी जगजाहिर हो चुकी है जिन्हें समझते-बूझते हुए भी जनता बर्दाश्त कर रही है। लेकिन लोकतंत्र की इन संस्थाओं के मनमौजी रवैयों और स्वार्थी हरकतों से परेशान जनता में अब हड़बड़ाहट और घबड़ाहट का दौर शुरू हो गया है। जनता दिन-प्रति-दिन अपने प्रतिनिधियों से दूर होती जा रही है। यही कारण है कि मंच तथा पत्रिका सिद्धेश्वर जी के नेतृत्व में लोकतंत्र को डूबने से बचाने के लिए सतत सतर्क हैं तथा जनता को तमाम उपाय बताये जा रहे हैं। जैसे, मंच की यह धारणा है कि जेपी के सुझाव के अनुरूप प्रतिनिधियों की वापसी का प्रावधान किया जाए और मतदाताओं को इसका अधिकार दिया जाए।

इसी प्रकार पूरे विश्व में आर्थिक उदारीकरण और खुलापन की वजह से भारत जिस प्रकार अपने यहाँ भूमण्डलीकरण, उदारीकरण और निजीकरण को बढ़ावा दे रहा है, उससे यहाँ की आम जनता के समक्ष गरीबी, बेरोजगारी, भुखमरी, हिंसा जैसी चुनौतियाँ आ रही हैं और जनता की सोच भी बदल रही है। दुष्परिणामों की ओर मंच और पत्रिका ने जनता का ध्यान आकृष्ट किया है। ध्यान रहे कि यहाँ हमारा उद्देश्य भूमण्डलीयीकरण, उदारीकरण एवं निजीकरण को बदनाम अथवा निंदा करना नहीं, बल्कि समयानुसार वास्तविकताओं से जनता को अवगत कराना है, ताकि सरकार पर दबाव बन सके। यह बात दीगर है कि सरकार के द्वारा उदारीकरण और निजीकरण का फैसला जापान और अमेरिका जैसे विकसित देशों के दबाव में लिया गया है, जिसकी वजह से बहुराष्ट्रीय

कंपनियों ने सब कुछ चौपट करके रख दिया, है, यहाँ तक कि हमारी संवेदनाओं को भी फ्लॉपी में बंद करने का प्रयास किया है। इसी प्रकार आम आदमी के समक्ष आनेवाली समस्याओं के प्रति हमारी कार्यपालिका और विधायिका जिस प्रकार लापरवाह होती जा रही हैं, वह भी हमारे लिए चिंता का विषय है। दूसरी बात यह है किसी भी समस्या के लिए हमेशा सरकार को ही जिम्मेदार ठहराना और ऐसा आग्रह पालना कि सरकार ही समस्या का हल निकालेगी, एक विचित्र किस्म की मानसिकता है। ऐसा लगता है कि लंबे समय तक गुलाम रहने के कारण इस देश के लोग ऐसी मानसिकता से ग्रस्त हो गए हैं, क्योंकि किसी अच्छे काम के लिए उनके अंदर आत्म विश्वास की कमी है। उन्हें ऐसा नहीं लगता कि वे खुद भी कुछ कर सकते हैं या उन्हें करना चाहिए। ऐसी स्थिति में सिद्धेश्वर जी का कहना है कि लोगों को इतना जागरूक तो होना ही पड़ेगा कि किसी संकट की स्थिति में वे अपनी भूमिका को समझ सकें।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सिद्धेश्वर जी बेहतर भविष्य को लेकर सदैव चिंतित हैं। इनकी उम्मीद यकीनन बलवती है, क्योंकि ये जनता में चेतना जगाने में विश्वास रखते हैं और उसके लिए ये हमेशा प्रयासरत भी हैं। इनके प्रयास से लोगों में विश्वास भी जगा है। लोगों में जगे इस विश्वास के पीछे यदि कोई शख्सियत डटकर खड़ी है, तो उसका नाम निश्चित रूप से सिद्धेश्वर है। जिस तन्मयता से ये राष्ट्रीय चेतना जागरित करने में लगे हुए हैं, हमारा विश्वास है कि आनेवाले दिनों में कुछ-न-कुछ बात बनेगी, क्योंकि इनकी इच्छाशक्ति बलवती है। विपरीत हालतों में अपने लक्ष्य की ओर लगातार बढ़ते रहना सिद्धेश्वर जी जैसी मजबूत शक्सियत के ही बूते ही बात है। इनकी फौलादी इच्छाशक्ति, दृढ़ विश्वास और इनके समर्पण से ही सपने को साकार किया जा सकता है। योजनारूपी किश्ती को मंजिल तक पहुँचाने का माद्दा भी सिद्धेश्वर जी में ही है।

सिद्धेश्वर जी ने राजनीति को जिस दृष्टि से देखा है, वह अत्यंत स्वच्छ, मानवीय और यथार्थ है। इनके अंदर का सर्जनशील, सत्यान्वेषी, आत्मचेता रचनाकार राजनीति को प्रभावित किये बिना नहीं रह सकता। राजनीति में रहकर भी ये वही कहते हैं, जो इन्हें उचित लगता है, चाहे उनके आला कमान नाराज ही क्यों न हों। कई बार इनकी विचार दृष्टि पत्रिका में ये राजनीति पर किये गये विश्लेषण में इनकी साफगोई स्पष्ट झलकती हैं।

जहाँ तक राजनीतिक नजरिया का सवाल है हमारी नजर में आज की राजनीति करनेवाले लोग नैतिकता को अव्यावहारिक मानने लगे हैं और यदि कोई व्यक्ति नैतिकता का पालन करता भी है, तो आपसी प्रतिद्वंद्विता उसके मतंव्य पर प्रश्नचिह्न लगा देती है। इनका मत है कि जिन राजनीतिक दलों ने शुचिता का

बीड़ा उठाया था, अब वे कीचड़ में डूबते चले जा रहे है।

यदि कोई न्याय के तराजू को डिगने से बचाना चाहता है, तो राजनीति में नैतिकता का आदर्श स्थापित करना होगा, सार्वजनिक कार्यकर्ताओं के ऊँचे मानदंड स्थापित करने होंगे और जो राजनतिक कार्यकर्ता ऐसा करते हों उनका स्वागत किया जाना चाहिए, उन्हें साधुवाद देने होंगे, ताकि और लोग भी उस पथ पर चल सकें। किंतु दुखद स्थिति यह है कि आज राजनीतिक दलों के संगठन पदाधिकारी इन सारी सत्प्रवृत्तियों पर न केवल हँसते हैं, बल्कि इनपर कालिख पोतने में व्यस्त दिखते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि सत्ता धूप-छाँव की तरह है। सत्ता आज है, कल ओझल हो जाएगी। शेष रहेगा केवल चरित्र, बचा रहेगा केवल मानदंड, आधार बनेगा केवल आचरण, प्रेरणा देगी केवल सत्परंपरा का निर्वाह और आत्मबल ही बनेगा राष्ट्रबल। दरअसल आज राजनीतिक दलों के शीर्ष नेतागण समाज व राष्ट्र के प्रति अपने दायित्व को भूल चुके हैं या दायित्व के प्रति ईमानदार नहीं हैं। अब उनकी नजर में देश से बड़ा है दल और दल से बड़ा बन गया है व्यक्ति। जिस दल की दिशा गलत होती है, उसके उज्ज्वल भविष्य की कल्पना शुतुरमुर्गी प्रवृत्ति के अलावा और कुछ नहीं है। आज यही स्थिति है प्राय: सभी राजनीतिक दलों की। *'को बड़ छोट कहत अपराधू'* कहावत को चरितार्थ कर रही हैं देश की राजनीतिक पार्टियाँ। देशवासी अब खुद को ठगे हुए अनुभव कर रहे हैं। उन्हें विश्वासघात का अहसास हो रहा है, क्योंकि आजादी के बाद देश के संचालन के लिए जिस संसदीय लोकतांत्रिक पद्धति को अपनाया गया, उसमें आम जन के लिए रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा और स्वास्थ्य की बुनियादी समस्याएँ तो हल की ही जानी थीं, लेकिन आजादी की आधी शताब्दी से भी अधिक गुजर जाने के बाद जनता आज दो रोटियों के लिए भी तरस रही है और नौजवान बेकार सड़कों की खाक छान रहे हैं। सरकारी दफ्तरों एवं विभागों पर यदि एक नजर डाली जाए, तो कोई विभाग भ्रष्टाचार से परे नहीं पाया जाएगा, जिसका और कारण चाहे जो हो, हमारा अत्यंत कमजोर कानूनी तंत्र भी एक है।

## राजनीतिक भ्रष्टाचार

सन् 2020 तक विकसित देश बनने का सपना पालनेवाले भारत जैसे विकासशील देश के लिए नि:संदेह यह एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि गरीबी भुखमरी, बेरोजगारी, अशिक्षा, अंधविश्वास, सांप्रदायिकता और जातीयता इत्यादि से दुनिया के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश को सामाजिक-आर्थिक विकास के पथ पर आगे बढ़ने के लिए भ्रष्टाचार से जुमना पड़ रहा है। भ्रष्टाचार के इस नासूर पर अंतत: काबू पाना ही होगा। आजादी के बाद के वर्षों में खासतौर पर पिछले कुछ वर्षों में, देश के सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार के मामले जिस तेजी से सामने आये

हैं, वह भ्रष्टाचार के बढ़ने को ही नहीं, उसके मामले उजागर होने के प्रमाणपत्र को पुख्ता करती है। लेकिन जनवितरण प्रणाली, स्वास्थ्य, शिक्षा, पुलिस प्रशासन, न्यायपालिका जैसी बुनियादी सेवाओं में चरमोत्कर्ष पर व्याप्त भ्रष्टाचार यह साबित करता है कि भारत की आम जनता को फिलहाल भय, भूख और भ्रष्टाचार से मुक्ति नहीं मिलनेवाली। इन्हें मिटाने के लिए सिद्धेश्वर जी कहते हैं कि प्रशासन में ईमानदारी, पारदर्शिता और जवाबदेही तय की जानी चाहिए।

वस्तुतः आज देश का शासन न्यायपालिका चला रही है, क्योंकि देश में शासन चलाने में सामने आ रही खामियों तक में न्यायपालिका निर्देश दे रही है और समाज में उसका असर स्पष्ट दिख रहा है। किंतु न्यायपालिका को गंभीरता से विचार कर कुछ ठोस कदम उठाने होंगे, ऐसा मानना है सिद्धेश्वर जी का। ये कहते हैं कि सत्ता के लोभ में राजनीतिज्ञ समाज को बाँटने का काम कर रहे हैं। इन नेताओं के कारनामों से जनता अब अनजान नहीं है। इस देश के राजनीतिक दलों को देश की एकता और अखण्डता से कोई वास्ता नहीं है। अपने लाभ के लिए ये लोगों को जाति-बिरादरी में बाँट रहे हैं। आवश्यकता पड़ने पर ये नेता देश की संप्रभुता के साथ भी समझौता कर सकते हैं। इन नेताओं से सावधान रहने की आवश्यकता है, क्योंकि देश को चलानेवाले राजनेता काजल की कोठरी में रहते-रहते खुद इतने काले हो गये हैं कि उन्हें सच की सफेदी तक को देखकर उबकाई आने लगती है।

अगर कोई जिस्म पर लगी कालिख का एक छोटा-सा हिस्सा भी खुरचकर लोगों के सामने लाने का प्रयास करता है तो राजनेता उसकी आवाज दबाने के लिए आसमान तक सिर पर उठा लेने के लिए तत्पर हो जाते हैं।

## सामाजिक दायित्व

सिद्धेश्वर जी सामाजिक दायित्व के निर्वहन को काफी महत्त्वपूर्ण मानते हैं, किंतु दुर्भाग्य है कि आज लोगों की सामाजिक प्रतिबद्धता दिनोंदिन कम होती जा रही है। जैसे-जैसे समाज के लोग विद्यालय, महाविद्यालय या विश्वविद्यालय से पढ़ाई-लिखाई कर नौकरियों में जाते हैं या व्यवसायों को अपनाते हैं, सामाजिक सरोकारों से कटते जा रहे हैं। किंतु सिद्धेश्वर जी ने अपने सामाजिक दायित्व को बखूबी समझा है। आखिर तभी तो पिछले दो दशकों से सामाजिक बुराइयों पर अंकुश लगाने के साथ-साथ लोगों में सामाजिक चेतना जागरित करने का प्रयास ये लगातार कर रहे हैं। सामाजिक विद्वेष, जातीयता, सांप्रदायिकता, भ्रष्टाचार, सामाजिक अंधविश्वास, पाखंड तथा नैतिकता में गिरावट जैसे विषयों पर ये निरंतर कलम चला रहे हैं तथा उससे मुक्ति के लिए विचार संगोष्ठियों,

परिसंवादों, परिचर्चाओं इत्यादि का आयोजन कर आम जनमानस मूल्यों, मर्यादाओं को अक्षुण्ण रखने की कोशिश में ये कभी पीछे नहीं रहते। इसी प्रकार समाज के लोगों में वैचारिक मान्यताओं के सुदृढ़ीकरण में सहयोग करने, शोषितों-पीड़ितों की आवाज को बुलंद करने तथा आम जनता और सरकार के बीच एक कड़ी बनने का इनका हमेशा प्रयास रहा है। दरअसल जो कुछ ये करते हैं, उसे पूरी ईमानदारी से करते हैं। इनके तौर-तरीकों में रत्ती भर की लापरवाही नहीं।

देश और समाज की दयनीय स्थिति पर अनेक बार व्यथा उमड़ी है। आज ओजपूर्ण उद्‌बोधनों द्वारा देश व समाज को जागरित एवं उत्साहित करनेवाली रचनाओं की कमी नहीं है। हमारा कहना है कि समाज के लिए साहित्य अनिवार्य है, क्योंकि साहित्य ही वह उपादान है जो समाज को शिक्षित जागरूक बनाता है और दिशा देता है। समाज की जागरूकता बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करती है कि उसके पास कैसा और कितना साहित्य है। इसलिए साहित्यकार का यह दायित्व हो जाता है कि वह समाज को प्रगतिशीलता की ओर ले जाने वाले साहित्य का सर्जन करे। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान देश के लेखकों एवं कवियों ने अंग्रेजों के जुल्म और शोषण के विरुद्ध विद्रोह तथा देश के लिए त्याग एवं बलिदान की रचनाएँ लिखकर देशवासियों में राष्ट्रीयता और देशप्रेम की भावना पैदा करने में जिस प्रकार अपनी अहम भूमिका निभायी थी उसी प्रकार आज भी सामाजिक विषमताओं और विसंगतियों के खिलाफ आमजन को आंदोलित करने वाले साहित्य की रचना जरूरी है। यह तभी संभव है, जब साहित्यकार समाज व देश के प्रमुख मुद्दों एवं समस्याओं के प्रति सजग हो। इसके लिए उसे सामाजिक कार्यकर्ता भी बनना होगा, तभी सके लेखन से परिवर्तन की क्रांति आ सकती है।

समाज लेखकों, बुद्धिजीवियों का सम्मान तभी करता है, जब वह देखता है कि लेखक व प्रबुद्ध वर्ग समाज की चिंताओं के प्रति गंभीर हैं। साहित्यकारों की बातें समाज के लोगों पर असर तभी डालती हैं जब वे समाज के वर्तमान सवालों से रू-ब-रू होते हैं और उनपर चिंतन-मनन कर उसके भविष्य के बारे में सोचते हैं।

समाज का जो वर्तमान परिदृश्य है, उसमें सामाजिक कार्यकर्ता बहुत कम दिखायी देते हैं और यदि थोड़े बहुत हैं भी तो उन्हें साहित्य से लगाव नहीं के बराबर है। पठन-पाठन में उनकी कोई अभिरुचि नहीं दिखायी देती। बहुत कम लोग ऐसे कार्यकर्ता हैं जिनमें त्याग की भावना है। जो थोड़े लोग सामाजिक क्षेत्र में उतरते भी हैं, तो वर्ष-दो-वर्ष में ही पद और पैसे की ओर उनका रुझान हो जाता है। उनका ध्यान सदैव इसी पर लगा रहता है कि कैसे उन्हें चुनाव में

विधानसभा या लोकसभा के लिए टिकट मिल जाए या फिर स्थानीय संस्थाओं में किसी पद पर आसीन हो जाएँ। उनकी इसी मानसिकता की वजह से समाज उन्हें सम्मान नहीं दे पाता है और वे कहीं के नहीं रह जाते हैं। दरअसल उनके सामने भी रोजी-रोटी के चलते विवशता है। बेरोजगारी के कारण उनके भरण-पोषण तथा परिवार के सदस्यों के प्रति अपने दायित्व के पालन के सवाल हैं। वे करें भी तो आखिर क्या करें ? आज सामाजिक अथवा राजनीतिक कार्यकर्ताओं में जो उदासीनता देखी जा रही है, वह इसी का नतीजा है।

सिद्धेश्वर जी ने समाजसेवा के कार्य को न तो कभी मान-मर्यादा की दृष्टि से आंका और न ही इन्होंने इसे लोकलाज का भय बनाया। जिस समाज में इन्होंने जन्म लिया है, उसके लिए कुछ कार्य करना ये अपना कर्त्तव्य समझते हैं और बड़ी सजगता से निर्णय लेकर अपने कार्यक्षेत्र में बिना किसी भेदभाव के आम जन के बीच कूद पड़ते हैं। इनके व्यक्तित्व में न तो दिखावा देखा गया और न तो इनमें नाम, व कीर्ति की चाह रही। बढ़ती व्यावहारिक मनोवृत्ति और भौतिकतावाद के दौर में भी न केवल धन-वैभव संग्रह करने की प्रवृत्ति पर इन्होंने संयम रखा, बल्कि ये खान-पान पर भी नियंत्रण का मार्ग प्रशस्त करना चाहते हैं-ऐसा विचार करने पर ही इनको लाभ होने की अनुभूति होने लगती है। यही इनकी कृति का वैशिष्ट्य रेखांकित करता है। समाजसुधार और साहित्यसेवा के प्रति इनका चिंतन अत्यंत परिष्कृत है। सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में ये भ्रष्टाचार, भेदभाव, अन्याय, कुरीति और बुराई के विरुद्ध ये चट्टान की तरह खड़े हैं। व्यक्तिगत आचरण की शुद्धता के सिद्धांतों के प्रति इनकी निष्ठा हर कदम पर परिलक्षित होती है।

समाज के बदलने के सवाल का उत्तर देते हुए सिद्धेश्वर जी कहते हैं कि सरकार बदलने से समाज नहीं बदलता। उसे बदलने के लिए लोगों के मन बदलने पड़ेंगे। मनों को बदलने के लिए उनमें एक नया विश्वास जगाना होगा। ऐसा विश्वास वही पैदा कर सकता है, जो उनके मनों को जीत ले। यह काम कठिन है। इसके लिए गाँवों-कस्बों की गलियों की धूल छाननी होगी, बेजुबान लोगों के पास पहुँचकर उनमें बोलने की शक्ति पैदा करनी होगी।

ये पुनः विस्तार से कहते हैं कि लगभग दो-तीन दशकों पूर्व अनेक उलझनों के बावजूद हमारे नायकों ने समाज की प्रगति का प्रवर्तन शिथिल नहीं होने दिया, परंतु मौजूदा स्थिति चिंतनीय हो गयी है। बाहर से निपटने की शक्ति संचित करने से पूर्व हमारी अंदरूनी टूटन शुरू हो गयी है। समाज के उत्थान का लक्ष्य भुलाकर हमलोग आत्मपुष्टि के लिए तथा स्वार्थसाधन के लिए व्यग्र हो चले हैं। अंतर सिर्फ इतना ही दिखता है कि पांडव संघटित व कर्त्तव्यनिष्ठ बने

रहे और हम विघटन में फँसकर केवल अभिनय भर कर रहे हैं। आज के संदर्भ में अपने कर्तव्यपथ को निर्धारित कर अपने-अपने दायित्व का निर्वहन आवश्यक हो गया है। आज समाज के प्रत्येक व्यक्ति का सम्मान खतरे में है, उसकी अस्मिता पर खतरा मंडरा रहा है। उसे बचाने के लिए एक कारगर कदम उठाने की आवश्यकता है। सिद्धेश्वर जी सुझाव प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि ऐसी विषम परिस्थिति में समाज के सजग एवं प्रबुद्ध नागरिकों को आगे आकर लोगों में चेतना जागरित करनी होगी। ऐसी घड़ी में जब वे चुप्पी साधे रहेंगे, तो समाज स्वस्थ नहीं हो सकेगा और स्वस्थ समाज की स्थापना के बिना सबल राष्ट्र की कल्पना नहीं की जा सकेगी। इसलिए समय की माँग है कि हम स्वस्थ समाज के लिए समाज की जड़ता को तोड़ें और रूढ़ियों एवं संस्कारों से उसे मुक्ति दिलाकर नये मूल्यों की स्थापना करेंगे। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि आज समाज में दोहरी जिंदगी जी रहे लोगों के चरित्र में रूढ़ियों, अंधविश्वासों, व्यथाओं तथा अन्य प्रकार के सामाजिक दैन्यों की भरमार ने हमें मजबूर किया है कि हम सजग नागरिक इन विसंगतियों के बारे में सोचें, विचारें और खुद को तथा समाज को संवारे। इसके अतिरिक्त ये मानते हैं कि आपसी मेल, एकता तथा सद्भावना किसी समाज की असली ताकत होती है और किसी व्यक्ति द्वारा समाज के हित में किया गया कार्य उसकी धरोहर होता है, जिसके बूते पर लोग मरने के पश्चात् भी उसे आदर से याद कर उसके द्वारा किये गये कार्य का अनुसरण करते हैं।

## सामाजिक प्रतिबद्धता की कमी :

सिद्धेश्वर जी ऐसा महसूस करते हैं कि सामाजिक प्रतिबद्धता की कमी ने आज जहाँ व्यक्ति को आत्मकेंद्रीत और आलसी बनाया है, वहीं समाज को निर्जीव और स्थिर बना दिया है। कोई समाज नये प्रयोग, नये आविष्कार और नये सुधार तब करता है, जब उसके नागरिक समाज की हर अच्छाई-बुराई के लिए स्वयं को जिम्मेवार मानें और सुधार के लिए प्रयास करें। इसी दृष्टि से समाज के सजग लोगों से ये सामाजिक प्रतिबद्धता का जीवन अपनाने की बात सदैव किया करते हैं।

समाज की मौजूदा वस्तुस्थिति के बारे में इनका नजरिया है कि आज हमारे समाज की प्रगति ऊपरी तौर पर अभिवृद्धि के रूप में हो रही है। होने यह लगा है कि हम व्यक्तिगत समृद्धि के लिए दूसरे की न्यूनतम जरूरतों भी को इस कदर अनदेखा करने लगे हैं कि अब यह प्रवृत्ति हमारी अवचेतना में समा गयी है। इससे छीना-झपटी का एक अनोखा दौर चल पड़ा है। समृद्ध वर्ग और समृद्ध

होने की कोशिश में मध्यम वर्ग के साधनों पर तो कब्जा जमा ही रखा है, पूरे संसाधनतंत्र पर भी उनका ही वर्चस्व कायम है। कुल मिलाकर हालत यह है और सब इसे जानते हैं कि मतलबपरस्त होते जा रहे समय में गरीब आदमी पेटभर रोटी, कपड़े, लंबाई भर छत से तो महरूम है ही, केवल कुछ लोगों की गैरजिम्मेदारी से उसे पर्याप्त हवा, पानी और प्रकाश हैं। तक नसीब नहीं हो पा रहे। सभ्यता के विकास के तमाम दावों के बावजूद हमारी सामाजिक व्यवस्था की नींव प्राय: वैसी ही है। उसमें सकारात्मक-गुणात्मक अंतर नहीं आया। सिद्धेश्वर जी याद दिलाते हैं कि अतीत में सामाजिक व्यवस्था को मजबूत आधार प्रदान करने के लिए रामानंद, चैतन्य महाप्रभु, कबीर, रैदास, एकनाथ इत्यादि कई संतों ने लोगों में वैचारिक शक्ति जगाने का बड़ा काम किया। आज पुन: वही वैचारिक क्रांति जागरित करने की आवश्यकता है और उसके लिए समाज के सजग नागरिक को ही संत बनना होगा, दीया की एक लौ अपने आप बनना होगा। जिसने पूरे समाज को अपनी पकड़ में ले लिया है उसके खिलाफ आवाज उठानी होगी और नयी नस्ल कि मानसिकता में क्रांतिकारी बदलाव लाना ही होगा।

सिद्धेश्वर जी का यह स्पष्ट मत है कि प्रत्येक मनुष्य पर समाज का ऋण है क्योंकि समाज के पैसे से ही कॉलेज, विश्वविद्यालय में उसकी पढ़ाई होती है। तथा उसके बीच रहकर ही उसका विकास होता है। इन सामाजिक ऋणों से मुक्त होने के लिए प्रत्येक भावनाशील व्यक्ति को सेवा-साधना की रीति-नीति अपनानी चाहिए। इसी कर्त्तव्यनिष्ठा का नाम समाजसेवा है। जहाँ यह प्रवृत्ति मूर्च्छित, स्थिति में पड़ी हो, समझना चाहिए कि वहाँ नीरसता एवं निष्क्रियता हैं। इसलिए ये कहते हैं कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को एक-दूसरे का सहयोग करना चाहिए। जो कार्य दूसरे कर रहे हों, उनमें सहयोग प्रदान करने के लिए कोशिश करना इस बात का द्योतक है कि सहानुभूति उथली न होकर गहरी है। दूसरे की घुटन को दूर करना, दु:ख के वक्त धैर्य बँधाना और उसके उज्ज्वल भविष्य की आशा बँधाना भी कुछ ऐसे कार्य हैं, जो बिना अपना अधिक वक्त बर्बाद किये रास्ता चलते हुए भी किये जा सकते हैं। गुमसुम बैठे रहने से अपने जीवन में नीरसता आती है और सहानुभूति, सद्भाव की संपदाएँ बढ़ाने का अवसर हाथ से निकल जाता है। फिर, व्यक्ति की जिंदगी की भी तो एक सीमा है, यह तो नहीं कि वह जितने दिन तक चाहेगा, जीएगा। इसलिए बची हुई अपनी जिंदगी में ही व्यक्ति को समाज के ऋण से उऋण हो जाना चाहिए।

सामाजिकता का पूरा-पूरा लाभ उठाने के लिए हमें अपने संपर्क का दायरा बढ़ाना होगा। कभी-कभी समस्याओं से घिरा व्यक्ति अपने को निरीह समझता है। वह अपने आप को अकेला महसूस करता है। ऐसे समय में यदि वह वास्तव

में सामाजिकता से संपन्न है तो समाज का प्रत्येक व्यक्ति उसकी समस्याओं को बाँटकर उसे राहत देगा। हमारे सामाजिक जीवन में संवेदना का इतना अभाव होता जा रहा है कि इसे अब बेमतलब और फालतू की चीजे माना जाने लगा है। यही कारण है कि आज व्यक्ति के सोचने का दायरा इतना सीमित हो गया है कि वह अपने से परे कुछ सोच ही नहीं सकता। उसके विचारों की सारी खिड़कियों पर स्वार्थ और हिंसा की धूल जम गयी है। ऐसे में सिद्धांतों की बातें बेमानी-सी लगती हैं।

हमारा समाज आधुनिकता की होड़ में अब पश्चिम की बराबरी के स्तर पर पहुँचने का प्रयास कर रहा है। शैक्षणिक, सामाजिक एवं आर्थिक उन्नयन ने वर्णवाद की चूलें हिला दी हैं। जीवन की भागदौड़ ने आम आदमी का पूरा समय ले लिया है। ये सारी परिस्थितियाँ धर्मसाधना पद्धति में परिवर्तन की ओर संकेत करती हैं, लेकिन ऐसा कुछ हुआ नहीं दिखता है। यह स्थिति अत्यंत चिंतनीय है। सामाजिक उत्थान के लिए उसकी कुरीतियों से, परंपराओं से निपटना जरूरी है। कुप्रथाएँ समाज को खोखला कर देती हैं और उसे आगे बढ़ने से रोकती हैं। यदि आज समाज को सही दिशा नहीं प्रदान की गयी, तो वह मंडल-कमण्डल की होड़ में ही लटपटाता-छटपटाता रह जाएगा। आज वक्त की जरूरत है कि चेतनशील लोग आगे आएँ और क्षुद्र राजनीतिक स्वार्थ से की जा रही कार्रवाइयों का डटकर विरोध करें।

समाज जब बड़े काम कर रहा होता है, ऐतिहासिक उपलब्धियाँ कर रहा होता है, परिवर्तन के विराट् सपने को साकार कर रहा होता है, तब वह उथल-पुथल से गुजर रहा होता है, ठीक वैसे ही जैसे कोई व्यक्ति जब बड़ा काम कर रहा होता है, बड़े सपने को साकार करने की साधना में जी रहा होता है, तो वह भी उस वक्त तनावों के अभूतपूर्व दौर से गुजर रहा होता है। पिछले 15-20 वर्षों में समाज में बदलने की उत्कंठा अत्यंत सीमित रूप में दिखायी दी है और उसमें विकास की तुलना में ठहराव, नींद और जड़ता का आलम अधिक रहा है, किंतु आज उस स्थिति में लगातार परिवर्तन दिख रहा है। समाज की वर्तमान अवधारणा को प्रस्तुत करने और आगे बढ़ाने के लिए मशहूर विचारक पुटनामं ने 1979 में एक मेकिंग, डेमोक्रेसी वर्क : सिविक ट्रैडिकांस इन मार्डन इटली' नामक अपनी पुस्तक में सामाजिक पूँजी की अवधारणा की विवेचना करते हुए कहा है कि सामाजिक पूँजी का वास्ता सामाजिक संगठन या संरचना की उन विशेषताओं से है, जिनमें परस्पर विश्वास, सामाजिक आचरण के सर्वमान्य मानदंड तथा नेटवर्क्स होते हैं, जिनसे समाज की कार्यकुशलता बढ़े तथा समन्वित कार्रवाई का मार्ग प्रशस्त हो, दूसरे शब्दों में सामाजिक भाईचारा हो,

त्याग हो, मिलजुलकर लोग रहें, एक दूसरे की मदद करें तथा उत्पादन में सहयोग करें। इसी प्रकार फ्रांसिसी लेखक फुकुयाना ने पहले 'ट्रस्ट' और फिर 'द ग्रेट डिस्प्रेशन' नामक पुस्तक तथा अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष के लिए 'सोसल कैपिटल एंड सिविल सोसायटी' नामक परचा लिखकर सामाजिक पूँजी की अहमियत को इन शब्दों में रेखांकित किया है--'सामाजिक पूँजी आधुनिक अर्थव्यवस्था के कुशलतापूर्वक काम करने के लिए जरूरी है। उसके बिना उदारतावादी जनतंत्र नहीं चल सकता और न ही आधुनिक संस्कृति का अस्तित्व बरकरार रह सकता है, इसी प्रकार विश्व बैंक ने सामाजिक पूँजी को विकास की खोयी हुई कड़ी कहा है।

सामाजिक पूँजी की वर्तमान अवधारणा के हिमायती लोगों का मानना है कि आज भी भारत जैसे देश में सामाजिक पूँजी के स्रोत और जड़ें हैं, जिनको जीवित कर पनपाने का काम सरकार नहीं कर सकती। यह काम गैरसरकारी संस्थाओं के माध्यम से ही हो सकता है, किंतु इन संस्थाओं को राजनीति से परे रहकर काम करना होगा। भारत जैसे विशाल लोकतांत्रिक राष्ट्र में व्यापक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तन कर विकास के अनुकूल परिस्थितियाँ जनता की भागीदारी से ही पैदा की जा सकती हैं। राजनीतिक पार्टी और सत्ता पर काबिज सरकार समाज की शक्ति का इस्तेमाल कर यह काम कर सकती हैं।

समाज आज आत्महीन, सनकी, निर्दय और विकृत विचारोंवाला हो गया है। पूरा वातावरण ही दमन का प्रतीत होता है। वैसे गिरे समाज और उसकी प्रतिकूलता तथा बर्बरता के विरुद्ध लड़ना तो कठिन अवश्य है, पर यदि स्वस्थ समाज के निर्माण की दिशा में कुछ काम करना है, तो इस लड़ाई के लिए तैयार होना होगा। जड़ पड़ी हुई ढेरों सारी व्यवस्थाएँ हैं हमारे समाज में और उनमें आम आदमी पिसता जा रहा है। विडंबना है कि उन खोखली व्यवस्थाओं से लोग परेशान है, किंतु उसके आदी भी हो चुके हैं। इसके मद्देनजर समाज में एक क्रांतिकारी परिवर्तन आवश्यक है और इसके लिए घिटे-पिटे तंत्र के खिलाफ विद्रोह करना होगा। आज की व्यवस्था जनता को आश्रित और पंगु बनाने का प्रयास कर रही है, कारण कि जनता जब तक आरामपसंद, सुविधाभोगी और पराश्रित होगी तभी तक सरकार सत्तासंपन्न होगी। इस स्थिति के संदर्भ में भारतेन्दु लिखित नाटक *'भारत दुर्दशा'* का स्मरण हो आता है। उसमें फिरंगी भी आलस्य, अशिक्षा, रोग, मदिरा, अंधकार जैसे सिपाहियों को ही भारत को लूटने और बर्बाद करने के लिए उपयोग करता है। ब्रिटिश काल के उस अंधेर नगरी' और आज की हमारी 'जनता द्वारा चुनी गयी सरकार' में कितना साम्य है, बिल्कुल हमारे

सामने स्पष्ट हो जाता है। हमारी लोकतांत्रिक सरकार, जो लोक की रक्षा के लिए निर्मित है, अपने हितार्थ उन स्थितियों का निर्माण करती है। आम आदमी उस चक्र में यूँ फँसता जा रहा है कि उससे निकलना उसके लिए असंभव नहीं तो मुश्किल अवश्य है। फिर भी उससे मुक्ति के लिए जनता को ही पहल करना होगा, क्योंकि जनता की खुशहाली तभी लौट सकती है और जनता की खुशहाली के बिना जनतंत्र की सफलता असिद्ध है।

दरअसल हमारे समाज की प्रमुख समस्या उसके मध्यमवर्ग से जुड़ी हैं क्योंकि वही आदमी कुभ के मेले में मौजूद होता है, वही दरगाहों में या उर्स में अपनी उपस्थिति दर्ज कराता है, वही झंडा लेकर आगे निकलता है कि धर्म या मजहब खतरे में है। उच्च वर्ग और निम्न वर्ग की वह समस्या नहीं है। उनमें वह पाखंड नहीं है, जो मध्यम वर्ग में है।

बिहार सहित झारखंड, आंध्र प्रदेश, उड़ीसा, असम, त्रिपुरा, तमिलनाडु इत्यादि राज्यों में इन दिनों नक्सली वारदातें अपनी चरम सीमा पर हैं। नक्सली समस्या भी हमारे देश में व्याप्त भयानक गरीबी, बेरोजगारी एवं सामाजिक असमानता की उपज है। यह हिंसा राजनीतिक विचारधाराओं से प्रेरित कृत्रिम प्रयासों का भी परिणाम है। पहले कानून की आँख में धूल झोंकना और फिर पुलिस एवं प्रशासन की छत्रच्छाया में सुरक्षा हासिल करने का गंदा राजनीतिक खेल आखिर इस देश में कब तक चलेगा ?

इनका मानना है कि अच्छे और सकारात्मक कार्य करके हर कोई लोगों की नजरों में चढ़ सकता है। आज समाज में समता लाना मुश्किल हो गया है, क्योंकि समाजषाद और समाजवादियों की आज जिस प्रकार खिल्ली उड़ायी जा रही है और उसकी कमर तोड़ी जा रही है, वह बहुत चिंतनीय है। सिद्धेश्वर जी इसपर अपनी चिंता जाहिर करते हुए कहते हैं कि एक दिन ऐसा आएगा कि इस देश में गरीबी की बात कोई नहीं करेगा अमेरिका की तरह। वहाँ भी गरीबी है, लेकिन कोई गरीबी की बात नहीं करता। पर, सिद्धेश्वर जी को विश्वास है कि प्रबुद्ध वर्ग का ही एक ऐसा तबका बचेगा, जो समाजवाद की बात करेगा। ये अमेरिका का उदाहरण प्रस्तुत कर कहते हैं कि आज के अमेरीकी समाज में सबसे बड़े विद्रोही प्रबुद्धजन-लेखक, पत्रकार, प्राध्यापक, वैज्ञानिक, अधिवक्ता और कुछ राजनेता ही हैं। वे ही लोग अमरीकी समाज को रोगी होते देख रहे हैं और नॉय चॉयस्की जैसे लोग ही हैं जो बुश का विरोध कर रहे हैं।

भारत के प्रबुद्धजनों के समक्ष भी भूमण्डलीकरण के तहत आर्थिक नीतियों के कारण समाज बदल रहा है, वहीं प्राय: सभी मजहबों के कट्टरपंथियों द्वारा सांप्रदायिकता का फैलाया जा रहा मानसिक जहर है। यहाँ के प्रबुद्धजनों को दलीय विचारधारा छोड़कर इन चीजों के खिलाफ एकजुट होना पड़ेगा।

## सामाजिकता के लिए दोस्ती एक वरदान

भावनात्मक सहयोग व मानसिक शांति के लिए जीवन में दोस्तों एवं शुभचिंतकों का बहुत अधिक महत्त्व है। इनकी ज्यादा संख्या मानसिक रूप से अधिक सुरक्षित होने का अहसास दिलाती है। इन बातों को गहराई में जाकर महसूस किया है सिद्धेश्वर जी ने। आखिर तभी तो इस देश के कोने-कोने में इनके दोस्तों एवं शुभचिंतकों की संख्या हजारों में है। ये दोस्ती को वरदान समझते हैं। दोस्त विद्यालय के हों या महाविद्यालय, विश्वविद्यालय के, मगर सगे रिश्ते से ऊपर होते हैं। मित्रता एक ऐसा संबंध है, जो किसी का मोहताज नहीं होता और जिसे हम अपनी मर्जी से स्वयं बनाते हैं और जो नि:स्वार्थ भाव के आधार पर जन्म लेता है एवं गाढ़े वक्त में साथ रहता है।

माँ-बाप, भाई-बहन, रिश्तेदार इत्यादि का चयन हम खुद नहीं करते, बल्कि प्रकृति करती है। लेकिन, दोस्त तो हम अपनी पसंद से बनाते हैं। विद्यालय या महाविद्यालय में तो हजारों की संख्या में छात्र-छात्राएँ पढ़ते हैं, पर दोस्ती सबों से नहीं होती। जिससे भावनात्मक संबंध हो जाता है, वही दोस्त बनता है, अन्य नहीं। रिश्तेदारों या परिवार के सदस्यों की बजाय भावनात्मक सहयोग के लिए हम दोस्तों पर निर्भर करना अधिक पंसद करते हैं, क्योंकि सच्चे दोस्तों का बंधन स्वैच्छिक होता है, उसमें किसी प्रकार की जबरदस्ती या रिश्तेदारों का दबाव नहीं होता। हर व्यक्ति एक-दूसरे का स्नेह चाहता है क्योंकि यह भी अन्य आवश्यकताओं की तरह एक जरूरी मानसिक आवश्यकता है। इसके अभाव में व्यक्तित्व का पूरा विकास नहीं होता है। इसलिए आपने देखा होगा कि कभी-कभी जब व्यक्ति अपने परिवार के सदस्यों से भावनात्मक संतुष्टि नहीं पाता है, तो वह दूसरों पर अधिक निर्भर करता है और यह उसे दोस्तों व शुभचिंतकों से अधिक मिलता है। यही कारण है कि ये दोस्ती को एक वरदान मानते हैं। अपनी सेवावधि में इन्होंने अपने वरिष्ठ अथवा कनिष्ठ अधिकारियों व सहकर्मियों से जितना स्नेह पाया, उतना शायद ही किसी को मिला हो। आज भी जब कभी किसी काम को लेकर अथवा पेंशन की राशि प्राप्त करने के लिए ये अपने कार्यालय जाते हैं, तो वहाँ के अधिकारी व कर्मचारी इन्हें घेर लेते हैं और कुछ-न-कुछ सुनना चाहते हैं। यहाँ तक कि कार्यालयाध्यक्ष की नजर जब इन पर पड़ गयी, तो अपने चैम्बर में बिठाकर एक कप चाय पिलाना वे नहीं भूलते हैं। आखिर क्यों ? उत्तर है कि इन्होंने सबका स्नेह जीता है। आज के जात-पात, धर्म, भाषा, अगड़ा-पिछड़ा और क्षेत्रीयता के दौर में भी इन्होंने अपने दामन में दाग नहीं लगने दिया और छत्तीस वर्षों की सेवा करने के बाद स्वेच्छा से स्वच्छ छवि के साथ अवकाश प्राप्त किया।

जब भी सिद्धेश्वर जी एसोसियेशन के किसी पद पर रहे, इन्होंने मानवीय कमजोरियों को फटकने नहीं दिया। चपरासी से लेकर बड़े-बड़े अधिकारी की व्यथा-कथा ये बड़े ध्यान से सुनते और उसका यथासंभव समाधान निकालते थे। उस अवधि में इन्होंने अपनी सहिष्णुता और धैर्य का परिचय दिया। कभी इस बीच जात-पात, भाषा, संप्रदाय, क्षेत्रीयता इत्यादि को प्रश्रय नहीं दिया और मूल्य-मर्यादाओं को बरकरार रखा। जिस अवधि में मेडिकल बिल अथवा रियायती यात्रा विपत्र को लोगों ने गलत तरीके से धड़ल्ले से भँजाया, उन दिनों भी इनके मेडिकल बिल के पत्रे में भुगतान की राशि शून्य रही और जब कभी रियायती यात्रा पर भारत के भ्रमण पर निकले तभी खर्च की गयी राशि का भुगतान इन्होंने प्राप्त किया। इनकी ईमानदारी अधिकारियों/कर्मचारियों के स्नेह प्राप्त करने का रहस्यमय कारण है।

## रिश्तों में बदलाव

रिश्तों में बदलाव के सवाल पर सिद्धेश्वर जी कहते हैं कि कभी-कभी जीवन में बड़ी विचित्र घटनाएँ घट जाती हैं। जो आज अपने हैं, वे कल पराये हो जाते हैं, जो पास हैं, वे कब दूर हो जाएँगे, इस बात का पता नहीं चल पाता। जो आज अपने नजर आते हैं, वे स्वार्थवश कब पीठ फेर लेंगे, कहना मुश्किल है। यहाँ तक कि भाई-भाई एक-दूसरे से दूर हो जाते हैं, बेटा बाप से कतराने लगता है और वह भी अपनी व्यस्तता के नाम पर। कारण है। कि आज स्वार्थ भावना व्यक्ति पर इस कदर हावी हो गयी है कि रिश्तों में स्थिरता नजर नहीं आती। ऐसी परिस्थितियों में, सिद्धेश्वर जी कहते हैं कि व्यक्ति को हर बदलते हुए क्षण को देखकर कदम उठाना है और हर साँस का हिसाब रखना है। जो समय पारकर गया, सो कर गया, अब जो बचा है, उसे सार्थक बना लें और सतर्क होकर देखें कि अब एक भी साँस निरर्थक न जाने पाए। हर साँस का सम्मान करना जीवन के महत्त्व को समझना है। हमें यह सदैव याद रखना है कि आनेवाली पीढ़ी को अपनी जीवनशैली और कृतित्व से कुछ देकर ज़ाना है। सिद्धेश्वर जी के इस कथन के संदर्भ में ख्यातिप्राप्त कवि डॉ० शिवमंगल सिंह 'सुमन' की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

*''अब एक साँस भी व्यर्थ न जाने पाए,*
*तब जीवन का सच्चा सम्मान रहेगा,*
*आनेवाली पीढ़ी को यह ज्ञान रहेगा।*
*यह जिया न अपने लिए, मौत से जीता,*
*यह सदा भरा ही रहा, न ढुलका, रीता।''*

इस प्रकार सिद्धेश्वर जी का यह कथन कितना सटीक है कि बचे-खुचे जीवन के पलों का सदुपयोग करना हर सज्जन का कर्त्तव्य है। इसे हर मनुष्य को अपने जीवन में उतारना ही श्रेयस्कर है। किसी कवि के शब्दों में यहाँ यह कहना यथोचित होगा कि-

*''हर साँस उसी की सार्थक है, जो मन की प्यास बुझाता है,*
*छूकर मर्मस्थल जन-जन का, जो सही राह दिखलाता है।''*

इसी प्रकार सिद्धेश्वर जी आपसी व्यवहार के सवाल पर कहते हैं कि आपसी व्यवहार में भी सत्यनिष्ठा चाहिए। एक ओर मनुष्य के साथ स्वार्थ भावना है, तो दूसरी ओर उसका जिन-जिन से संबंध है, उनके प्रति कर्त्तव्य भी है। इस कर्त्तव्य के निर्वहन के लिए बुद्धि द्वारा स्वार्थ का नियंत्रण होना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य की इच्छा रहती है और यह स्वाभाविक है कि दूसरा उसके साथ सचाई से पेश आए, कपट-छल न करे और धोखा न दे। ऐसी हालत में उसका भी यह पावन कर्त्तव्य हो जाता है कि वह दूसरों के साथ उसी तरह पेश आए। यह सचाई केवल दिखावे की न होकर मन, वचन और कर्म की होनी चाहिए। अंत:करण पारदर्शक काँच की तरह स्वच्छ हो, ताकि दूसरे लोग भी देख सकें कि हमारे अंदर क्या है अर्थात् हममें पूरा सत्य और निष्ठा हो। महात्मा गाँधी तो कहते थे कि सत्य ही ईश्वर है। उसकी उपासना ही व्यवहारशुद्धि का मार्ग दिखाती है।

*ध्यान और प्रेम जीवन के मार्ग हैं*
*अपने भीतर उस लौ को जगा*
*अंत:करण बदले तो आचरण बदले*

इन विचारों पर आचरण करना है तो कठिन, पर सिद्धेश्वर जी जैसे सामाजिक कार्यकर्ता ने समय-समय पर इस दिशा में प्रयास करके समाज के समक्ष एक उदाहरण रखने की कोशिश की है। किसी शायर ने ठीक ही कहा है-

*इक शेर के गरजने से, जंगल दहल जाते हैं,*
*मर्द अकेले उठते हैं, इतिहास बदल जाते हैं*
*लपट बन जाएगी, तू चिंगारी तो बन।*

आज के बहू-बेटा को तो स्टेटस सिंबल जुटाने में मग्न हो अपने माँ-बाप के दु:ख दर्द से कुछ लेना-देना नहीं होता। जब संयुक्त परिवार में टूटन प्रारंभ हुआ, तो ऐसा प्रतीत हो रहा था कि शायद इससे दांपत्य-जीवन बेहतर होगा। मगर इसे तो बच्चों की भावनात्मक सुरक्षा नष्ट होने लगी और वे दादा-दादी, चाचा-चाची की औलाद से छिटककर आयाओं के रहमोकरम पर जीने लगे। यही नहीं पति-पत्नी एक दूसरे के और करीब रहने की बजाय एक-दूसरे से दूर रहने

लगे। अब एक बच्चे की चिंता ही दांपत्य जीवन को बेबस बनाने लगी। दंपतियों ने अधिक पैसा और अत्यधिक सुविधाएँ उपलब्ध होने के बावजूद अपने अंतरंग क्षणों को गंवाया। बाजार ने पत्नियों को मोबाइल और पतियों को लैप टाप छीन लिया, क्योंकि बाजार मुनाफा खोरों और बहुराष्ट्रीय कंपनियों का ऐसा समुद्र बन चुका है जिसमें समाज के अलग-अलग रास्तों से भ्रष्टाचार की नदियाँ तो समा ही रही हैं, वहाँ किसी के पास हृद्य भी नहीं है सिर्फ शातिर दिमाग है, जो लगातार व्यक्ति के निजी जीवन में हस्तक्षेप करने के षड्यंत्र करता रहता है। इस प्रकार उदारवाद और भूमंडलीकरण ने भारतीय दांपत्य जीवन के समीकरण को ही बदल कर रख दिया है। आधुनिकोत्तर समाज की आज जो परेशानियां हैं वह विभिन्न रूपों में प्रकट हो रही हैं। नए बदलावों से समाज परंपरावादी सादगी को ही अपनाना चाहते हैं। सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री जैसी बर्नाडे ने अपनी पुस्तक '*द फ्यूचर ऑफ़ मैरिज*' में लिखा है कि विवाह नामक संस्था का विघटन नहीं हो रहा है, बल्कि दिन-ब-दिन विकसित होता जा रहा है और उसके स्वरूप बदले हैं लेकिन सीरत नहीं। सच कहा जाए तो विवाह जैसी महत्त्वपूर्ण संस्था धीरे-धीरे बाजारबाद की बलि चढ़ रही है। युवाओं की मानसिकता को इसने इतना प्रदूषित किया है कि विवाह मात्र रस्म अदायगी जैसा होता जा रहा है।

## धर्म / कर्म

जहाँ तक धर्म का सवाल है, सिद्धेश्वर जी कर्म को सबसे बड़ा धर्म समझते हैं। '*कर्म ही पूजा है*' गीता के इस सूत्र को ये अक्षरश: चरितार्थ करते हैं। '*कर्मण्येवाधिकारस्ते.....*'

भगवान में आस्था के सवाल पर सिद्धेश्वर जी कहते हैं-ईश्वर हैं कि नहीं, यह तो मैं नहीं कह सकता, किंतु कोई न कोई ऐसी चेतना शक्ति जरूर विद्यमान है, जो इस संसार को चला रही है। ये नास्तिक भी नहीं हैं, किंतु किसी मंदिर में खुद पूजा नहीं करते। हाँ, जब कभी मंदिर-मस्जिद या किसी गिरजा-गुरुद्वारा के नजदीक से ये गुजरते हैं और किसी को भगवान् की मूर्ति के समक्ष पूजा करते या सिर झुकाये देखते हैं, तो उस व्यक्ति की तकलीफ दूर हो, ऐसी कामना के भाव इनके मन में अवश्य आते हैं। दरअसल इनके माता-पिता भी धर्म के विरुद्ध तो नहीं थे, किंतु किसान होने के नाते वे भी कर्म पर ही आजीवन विश्वास करते रहे और मंदिर में जाकर उन्होंने कभी पूजा-अर्चना नहीं की। इसी प्रकार इनकी पत्नी भी किसी तरह का व्रत-त्यौहार या मंदिर में जाकर पूजा-अर्चना नहीं करतीं और न किसी तीर्थस्थल की यात्रा। हाँ, दर्शनीय स्थलों की यात्रा के दौरान यदि किसी पूजास्थल पर जाना हुआ, तो उसकी स्थापत्य कला एवं संस्कृति के

दृष्टिकोण से पति-पत्नी उसके दर्शन अवश्य करते हैं।

पूछने पर ये कहते हैं मैं आस्तिक हूँ या नास्तिक, यह मैं नहीं जानता, मुझसे अधिक इसे मेरे कर्म और लेखन जानते हैं। मैं अपने आपको भगवान शब्द से अलग नहीं रख पाता। मैं आकारनुमा भगवान् को नहीं, जानता, पर चैतन्यशक्तिरूपा को स्वीकार करता हूँ।

सिद्धेश्वर जी का मानना है कि पिछले कुछ वर्षो में ऐसा देखा जा रहा है कि इस देश में आस्तिकता में विश्वास रखने वालों का एक आतंक जैसा माहौल बनता जा रहा है। उन्हें नास्तिकता बिल्कुल बर्दाश्त नहीं होती और थोड़ा-सा मत वैभिन्य देखते ही वे मौहें टेढ़ी करने और बांहें चढ़ाने लगते हैं। ऐसा लगता है कि ईश्वर को नहीं माननेवाले उनके जानी दुश्मन हैं। पर सच तो यह है कि नास्तिक वह नहीं जो ईश्वर को नहीं मानता। ईश्वर तो है करोड़ों मनुष्यों की कल्पना में, भावना में, विश्वास में, आस्था में, शिक्षा में, संस्कारों में और जीवन में भी। और जो है उसे नहीं मानने का तो सवाल ही नहीं। सिद्धेश्वर का स्पष्ट विचार है उसे नही मानने का तो सवाल ही नही। सिद्धेश्वर का स्पष्ट विचार है कि इस प्रश्न पर खुलकर बातें होनी चाहिए और नयी पीढ़ी को इस पर सोचने विचारने का अवसर देना चाहिए कि वास्तव में क्या ठीक है प्रमाण ही तर्कहीन अवैज्ञानिक आस्तिकता का प्रमाणपत्र तर्कपूर्ण और वैज्ञानिक नास्तिकता स्वामी दयानंद सरस्वती तो जीवन भर मूर्ति पूजा का उपहास करते रहे। महर्षि अरविंद के अनयायी भी ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं करते। जवाहर लाल नेहरू की भी पंडा-पुजारी पूजा-पाठ, इत्यादि के प्रति कोई श्रद्धा नहीं थी। उन्होंने तो अपनी वसीयत में यहाँ तक लिख दिया था कि मेरी राख खेतों में बिखेर देना। भगतसिंह तो नास्तिक थे ही। जयप्रकाश नारायण, लोहिया आदि की नास्तिकता में कोई संदेह का कारण ही नहीं है। अर्थात नास्तिकता एक जीवन शैली है। जिसके लाखों-करोड़ों अनुयायी हैं यह सिर्फ एक या हो सिरफिरों की सनक नहीं है। दरअसल मार्क्स, डार्बिन, फ्रायड और आइंस्टीन इत्यादि के बाद दुनिया वैसी नहीं रही है, जैसी उनसे पहले थी, उन लोगों ने दुनिया की सोच को बदलकर रख दिया है इस बात का कोई कारण नहीं दिखता कि नास्तिकता को नीची नजर से देखा जाए या नास्तिक शब्द बतौर एक गाली इस्तेमाल किया जाए। यह भी एक सोचने का तरीका है। सच तो यह है कि यह एक अधिक तर्क संगत और वैज्ञानिक तरीका है। धर्ममत के सवाल पर सिद्धेश्वर जी का स्पष्ट मानना है कि वर्तमान में सभी धर्मों के नेता गण मात्र विचलित व्यक्तित्व हैं जो समझ नहीं पा रहे हैं कि धर्म का क्या करें, कहाँ ले जाएँ और इसे धर्म विरोधी विपरीत परिस्थितियों में कैसे बचाएँ। आखिर तभी तो उनके

आचरण और सिद्धांत में कोई तालमेल नहीं दिखायी देता है। वे धर्म के पक्ष में जितना बोलते हैं, उतना ही खोखले नजर आते हैं। सिद्धेश्वर जी को ऐसा नहीं लगता कि आज की राजनीतिक आर्थिक, सामाजिक जातिप्रथाओं के परिवेश में वे अपने अनुयायियों को किसी भी प्रकार की नैतिक ताकत दे पा रहे हैं। हिंदुओं को लगता है कि इस देश में बहुसंख्यक होने के बावजूद उनकी भावनाओं का सम्मान नहीं किया जाता और राजनीतिक एवं गैर राजनीतिक संगठन सिर्फ अपने-अपने हितों के लिए उनकी भावनाओं का दोहन कर रहे हैं।

इसी प्रकार मुसलमानों को लगता है कि अल्पसंख्यक होने के कारण उन्हें वैसी तरजीह नहीं मिल रही है, जैसी मिलनी चाहिए। सच मानिए तो वे अभी तक न तो भारतीय लोकतांत्रिक ढाँचे के साथ अपनी धार्मिकता का सहज संबंध बना पाये हैं और न अपनी अल्पसंख्यक ग्रंथि से उबर पाये हैं। सिखों व ईसाइयों के बारे में भी सिद्धेश्वर जी कहते हैं कि उनका एक बड़ा वर्ग कमोबेश ऐसा ही अनुभव करता है। जब भी वे एक धार्मिक शक्ति समूह के रूप में राजनीति में हस्तक्षेप करने का प्रयास करते हैं, तो वांछित नतीजा नहीं मिलने पर उनकी हताशा और बढ़ जाती है। मगर उनके नेतागण अपने वोट मूल्य के कारण वह सब जुटाने में सफल हो जाते हैं जिसे आम भाषा में सुख-सुविधा कहा जाता है। इससे उन धार्मिक नेताओं की नैतिक पकड़ और कमजोर हो जाती है।

वैसे सिद्धेश्वर जी हिंदू कहलाते हैं, लेकिन पूछने पर बताते हैं कि मुझे नहीं मालूम है कि आखिर हिंदू धर्ममत का होकर उसकी कौन-सी विशेषता को अमल में ला पाता हूँ। शादी-विवाह के अवसरों पर अथवा माता-पिता या परिवार के किसी सदस्य के देहावसान पर श्राद्ध की क्रिया को ये अति साधारण ढंग से संपन्न कर लेते हैं, किंतु प्राचीन काल से चली आ रही गलत परंपरा अथवा ढोंग-पाखंड को ढोते रहने में इनका विश्वास नहीं है। आखिर तभी तो माता-पिता के निधन के बाद कंटाही तथा दस दिनों तक ये गंदी जगह पर जाकर कोओं के लिए खाने की वस्तुएँ रखने के नियम को इन्होंने नजरअंदाज किया। इनका इस बात में विश्वास ही नहीं कि कौओं को खिलाने अथवा कंटाहों को लिबास तथा खाने-पीने की सभी वस्तुएँ एवं बर्तन देने से इनके मृत माता-पिता को स्वर्ग मिलेगा। इनका सदैव यही मानना रहा है कि जो जिस तरह का कर्म मौजूदा जिंदगी में करता है, उसका फल उसे उसकी जिंदगी में ही मिल जाता है। दूसरी जिंदगी को किसने देखा है ? इस प्रकार न तो सिद्धेश्वर जी हिंदूवादी हैं और न हिंदुत्व पर गर्व करते हैं। बल्कि सच तो यह है कि धार्मिक मतांधता और कट्टरपन के ये घोर विरोधी हैं। इस मायने में किसी भी धर्ममत, चाहे वह हिंदू हो, इस्लाम हो ईसाई हो या सिख हो, उसकी कट्टरता और धार्मिक अंधविश्वास

पर कसकर ये प्रहार करते हैं। इसलिए ये कहते हैं कि यह संयोग है कि मेरा जन्म हिंदू-परिवार में हुआ है, जिस पर न तो गर्व किया जा सकता है और न लज्जित हुआ जा सकता है। इनका स्पष्ट मत है कि आकस्मिक जन्म से प्राप्त धार्मिक या मजहबी पहचान पर, त्वचा के रंग-रूप या लिंग जाति पर गर्व करनेवाले या उनपर लज्जा का अनुभव करनेवाले केवल मानसिक रोगी ही हो सकते हैं। यही कारण है कि सिद्धेश्वर जी को भाग्य में कभी विश्वास न रहा। ये हमेशा कर्म में विश्वास रखते आए हैं। मेहनत और निष्ठा के साथ ईमानदारीपूर्वक अपने दायित्व के निर्वहन ने ही इन्हें इस स्थिति में पहुँचने में सहयोग किया है। स्वर्ग-नरक में विश्वास नहीं करनेवाले सिद्धेश्वर जी का ख्याल है कि स्वर्ग और नरक इस धरती पर हैं, किसी व्यक्ति को उसे उसके बुरे तथा अच्छे कामों के अनुसार उसकी जिंदगी में ही फल मिल जाते हैं। इसी प्रकार ये पुनर्जन्म में भी विश्वास नहीं करते हैं।

जहाँ तक धर्म मत का सवाल है, इसके सकारात्मक पहलू भी हैं। लेकिन पहले भी और इन दिनों उनका दुरुपयोग बढ़ा है। मध्यकाल में कबीर ने जीवन और सर्जन में पूरी ईमानदारी से पाखंड को खिलाफ तमाम खतरे उठाकर भी अपनी लड़ाई जारी रखी। तसलीमा जैसे लोग आज भी इसीलिए समाज एवं राष्ट्र से निर्वासित हैं कि इन्होंने रेखांकित किया है कि मंठों और अवांछित राजनीति की सांठ-गांठ में धर्ममत अब शोषितों, वंचितों और कमजोर वर्गो के लिए किसी राहत की जगह अब बंधन में है। संसार के हजारों धर्ममतों व संप्रदायों के बावजूद उनके अनुयायियों की संख्या के आधार पर ईसाई, इस्लाम, हिंदू, बौद्ध, कन्फूसियसवादी, शिंतो, ताओ और यहूदी इन आठ प्रमुख धर्ममतों की करीब-करीब सभी में आधारभूत समानताएँ हैं। केवल व्यक्ति की अवधारणाओं और कर्म सिद्धातों के इतिहास में उतारकर ही उनमें परस्पर भिन्नताएं व्यापक हो जाती हैं। उधार धर्ममत के संस्थानीकरण, उसके सत्तापक्ष और राजनैतिक तत्त्व ने अनुयायियों की व्यक्ति अवधारणा को जटिल ही नहीं बना दिया है, बल्कि आम आदमी की इयत्ता भी चाट ली है। इस सूरत में धर्ममत का अपने मर्म से विचलन भी हुआ। धर्म के प्रयोजन, मनुष्य के जीवन में उसकी भूमिका और राज्य से उसके संबंधों की पड़ताल आज जरूरी हो गयी है। चिंतकों व विचारकों को धर्ममत के अवमूल्यंन, काँची के रामकोटि पीठ के शंकराचार्य जयेन्द्र सरस्वती, कनिष्ठ विजेन्द्र सरीखे धर्ममत गुरुमत के विवादस्पद मामले पर विचार करते हुए इस की पड़ताल जरूरी है धर्ममत पर एक नजर डालने से सिद्धेश्वर जी को ऐसा प्रतीत होता है कि अतीत की सारी महानताएँ घटिया वा रूढ़ि में बदल चुकी हैं। सारे महान विचार मूढ़ों और बाजारू दराजों में तब्दील हो चुके

है। सिद्धेश्वर जी अंतत: मानते हैं कि आज के कारपोरेट बहुराष्ट्रवाद में मजहबी चेतना पुन: आम आदमी के संदर्भ में अफीम की भूमिका में है। मजहब के प्रभामंडम को तोड़े बगैर समकालीन लोकतांत्रिक सत्ताओं को समझ पाना मुश्किल है इस प्रकार मजहब वर्चस्व बहुलतावादी समाज के लिए आज एक खतरा साबित हो रहा हैं, किंतु मजहब के ठेकेदोरों को यह भुलना नहीं चाहिए कि जनतंत्र का अपहरण करने की हर योजना को विफल करने की रणनीति देश की जनता जानती है। आपातकाल का विखंडन इसका उदाहरण है। इसलिए धर्ममत को अब सिर्फ आध्यात्मिक ही रहना होगा। उसे सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों से अपने हाथों को खींचना होगा अन्यथा होम करते ही हाथ जलेंगे। मजहब से राजनीति को मुक्त किया जाना आवश्यक है। मंदिर, गिरिजाघर, मस्जिद तथा गुरुद्वारा को यदि राजनीति का अड्डा बनने की छूट दी जाएगी तो स्वर्ण मंदिर का दुखद अध्याय फिर दुहराया जाए सकता है और यदि मजहब के नाम पर राजनीति की खुली छूट दी जाएगी तो कई बार बाबरी मस्जिद गिरेगी और कितने गोधरा कांड दोहराये जायंगे। इसलिए सिद्धेश्वर जी इस बात की जरूरत समझते हैं कि धर्ममत के समतावादी स्वरूप को विकसित करके इसके दुरुपयोग पर नकेल लगायी जाए। इसी वजह से आप नित प्रवर्तक आचार्य तुलसी जिस धर्म की प्रतिष्ठा देखना चाहते थे, वह आज के भेदात्मक जगत, में अभेदात्मक स्वरूप की कल्पना है। धर्म को वे निर्विशेषण देखना चाहते थे, कारण कि आज तक उसके पीछे जितने भी विशेषण लगे, उन्होंने मनुष्य को बाँटने का ही प्रयत्न किया। इसलिए जरूरत है विशेषण रहित धर्म की, जो मानव-मानव को आपस में जोड़ सकें।

❑❑❑❑❑❑

श्री सिद्धेश्वर जी ने जब एन.सी.सी. का 'सी' प्रमाण पत्र प्राप्त किया

श्री सिद्धेश्वर जी के अनुज श्री दिनेश्वर प्रसाद अपनी पत्नी के साथ

# जिन्होंने संबल प्रदान किया

पूज्य बड़े मामा स्व. वासुदेव नारायण

पूज्य छोटे मामा श्री राम प्रताप सिंह

श्री सिद्धेश्वर जी सपरिवार श्री राजेन्द्र प्रसाद सिन्हा के परिवार के साथ

श्रीमती शैलजा

श्रीमती संध्या

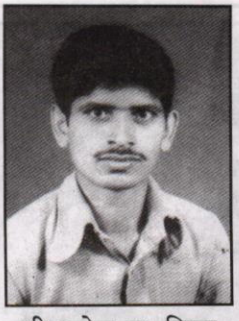

श्री सत्येन्द्र ना. सिन्हा

# जिन्होंने संबल प्रदान किया

श्री सिद्धेश्वर जी के माता-पिता

श्रीमती बी. प्रसाद अपनी छोटी ननद श्रीमती प्रभा के साथ

श्री बी.पी. सिन्हा, स्व. श्रीमती सावित्री सिन्हा, श्रीमती सुधा (गुड़िया)

# प्रसाद-परिवार का वंश वृक्ष
## और
## सिद्धेश्वर जी के साथ उनके रिश्ते

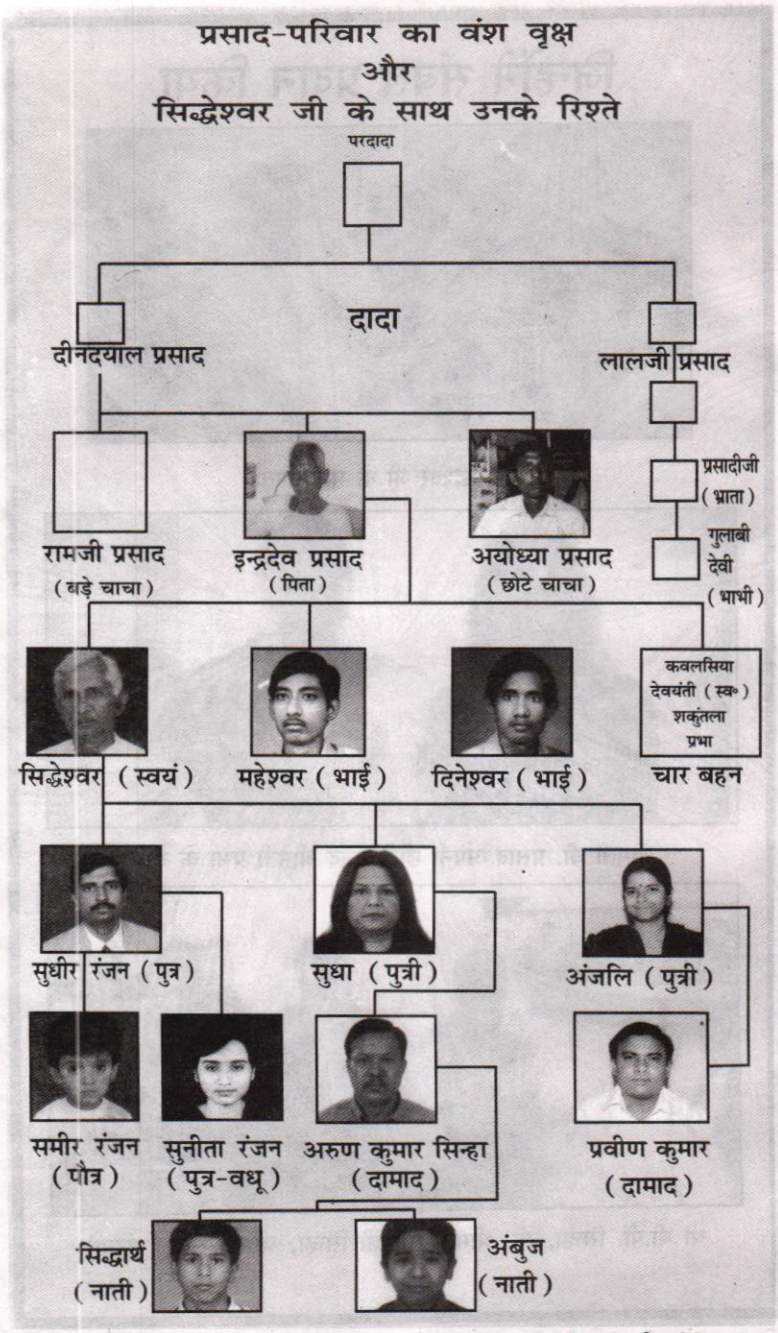

# जीवन वृत्त : एक नजर में

*सिद्धेश्वर*

| | | |
|---|---|---|
| 1. पूरा नाम | : | सिद्धेश्वर प्रसाद |
| 2. संक्षिप्त नाम | : | सिद्धेश्वर |
| 3. पिता | : | स्व. इन्द्रदेव प्रसाद |
| 4. माता | : | स्व.फूलझार प्रसाद |
| 5. पत्नी | : | श्रीमती बच्ची प्रसाद |
| 6. पुत्र | : | श्री सुधीर रंजन |
| 7. पुत्रवधू | : | श्रीमती सुनीता रंजन |
| 8. पुत्री | : | श्रीमती सुधा सिन्हा |
| 9. दामाद | : | श्री अरुण कुमार सिन्हा |
| 10. पुत्री | : | श्रीमती अंजलि |
| 11. दामाद | : | श्री प्रवीण कुमार |
| 12. पौत्र | : | मास्टर समीर रंजन |
| 13. जन्म तिथि | : | 18 मई, 1941 ई. |
| 14. जन्म-स्थान | : | ग्राम-बसनियावाँ, पत्रा.-बसनियावाँ, भाया-हरनौत, जिला-नालंदा (बिहार) |
| 15. प्राथमिक शिक्षा | : | गाँव के विद्यालय तथा मध्य विद्यालय, खरथूआ |
| माध्यमिक शिक्षा | : | चौधरी उच्च विद्यालय, हुसेनपुर, 1953 से 1956 ई. |
| कॉलेज शिक्षा | : | पटना कॉलेज, पटना से इंटरमिडियट, सन् 1958 ई. |
| | : | पटना कॉलेज, पटना से स्नातक, सन् 1960 ई. |
| उच्च शिक्षा | : | पटना विश्वविद्यालय से श्रम एवं समाज कल्याण विषय में स्नातकोत्तर, सन् 1962 ई. |
| 16. विवाह | : | ग्राम-रसलपुर, (नालंदा) के स्व0 बासुदेव प्रसाद की प्रथम सुपुत्री सुश्री बच्ची के साथ 1962 ई. में |
| 17. तकनीकी शिक्षा | : | एसएएस (Subordinate Accounts Service) 1973 ई |
| 18. सरकारी सेवा | : | भारतीय रेल के प्रतिनिधि के रूप में राउरकेला स्टील प्लांट में पदस्थापन - सन् 1963 ई. |
| | | भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग (Indian Audit & Accounts Department) के महालेखाकार कार्यालय, राँची में लेखा परीक्षक के पद पर योगदान - अप्रैल, 1964 ई. |

एस.ए.एस. करने के पश्चात् महालेखाकार कार्यालय, पटना में अनुभाग अधिकारी के पद पर प्रोन्नति-सन् 1973 ई.
सहायक लेखा परीक्षा अधिकारी-सन् 1976 ई. लेखा परीक्षा अधिकारी-सन् 1988 ई.
वरिष्ठ लेखा परीक्षा अधिकारी-सन् 1995 ई.

19. स्वैच्छिक सेवा निवृति : 1 जून 2000 ई. से।

20. अभिरुचि : समाज व साहित्य-सेवा और पत्रकारिता

21. साहित्य-सृजन : गद्य एवं पद्य की एक दर्जन पुस्तकों की रचना के अतिरिक्त देश व समाज के समसामयिक सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक विषयों पर लगभग डेढ़ सौ रचनाएँ देश के विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित तथा आकाशवाणी एवं दूरदर्शन केंद्रों से प्रसारित

22. सम्मान : विभिन्न सामाजिक एवं साहित्यिक संगठनों द्वारा अनेक पुरस्कार से सम्मानित।

23. जनांदोलन : जे.पी. आंदोलन में संक्रिय रूप से योगदान के अतिरिक्त जनता के सवालों को लेकर किए गए संघर्ष में शामिल तथा जेल की यात्रा

24. स्वैच्छिक संगठनों से लगाव
1. सरकारी सेवावधि में अराजपत्रित एवं राजपत्रित अधिकारियों के संघों में महासचिव एवं अध्यक्ष के पद पर आसीन तथा अंत में ऑल इंडिया ऑडिट आफिसर्स एण्ड सिनियर ऑडिट ऑफिसर्स एशोसिऐशन के 'ज्वायंट सेक्रेट्री जेनरल'
2. महासचिव : पटेल सेवा संघ, बिहार- 1980 से 1985

25. संप्रति : 1. राष्ट्रीय महासचिव, राष्ट्रीय विचार मंच, दिल्ली
2. संपादक, 'विचार दृष्टि', दिल्ली
3. उपाध्यक्ष, राजेन्द्र साहित्य परिषद, पटना

26. संपादन : विभिन्न संगठनों से प्रकाशित स्मारिका का प्रकाशन यादें, विभागीय पत्रिका 'प्रहरी' एवं संघमित्र' तथा 'डॉ0 मोहन: एक तपस्वी' मन और 'मयुरा'

27. संपर्क : 'दृष्टि', यू-207, शकरपुर, विकास मार्ग, दिल्ली-92
दूरभाष : 011-22059410, 22530652
'बसेरा', पुरन्दरपुर, पटना-800001,
दूरभाष: 0612-2228519

◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆◆

## सिद्धेश्वर : व्यक्तित्व और विचार

कविवर मधुर शास्त्री

'सिद्धेश्वर : व्यक्तित्व और विचार' शीर्षक यह पुस्तक सामाजिक कार्यकर्ता श्री सिद्धेश्वर के बहुआयामी व्यक्तित्व और विचारों का संग्रह है। सुचिंतक एवं विचारक श्री सिद्धेश्वर ने अपनी सुदीर्घकालीन समाज, साहित्य सेवा और राष्ट्रीय चेतना से ओत–प्रोत विचारों से अपनी एक अलग पहचान बनाई है।

राजनीतिक छल –छद्म, अलगाववाद, भ्रष्टाचार और अराजकता के इस माहौल में भी इनके विचार राष्ट्र और समाज के लिए प्रासंगिक और युवा पीढ़ी के लिए प्रेरणाप्रद एवं अनुकरणीय हैं। देश के प्रति निष्ठा और त्याग की भावना से समर्पित इनके जीवन के अनुभव–सूत्र को इस पुस्तक में रेखांकित किया गया है। महात्मा गाँधी, जयप्रकाश नारायण, राम मनोहर लोहिया, मौलाना अबुल कलाम आजाद तथा कर्पूरी ठाकुर के शाश्वत चिंतन से अनुप्राणित ये विचार–सूत्र जन–जीवन का पथ प्रदर्शन करेंगे, ऐसा हमारा विश्वास है।

मधुर शास्त्री
दिल्ली

### संपादक परिचय

संपादक

| | | |
|---|---|---|
| नाम | : | डॉ. शाहिद जमील |
| पिता का नाम | : | मो. सलीम |
| जन्म तिथि | : | 28 फरवरी 1958 ई. |
| शैक्षिक योग्यता | : | स्नातक (प्रतिष्ठा,) एम. ए., पीएच. डी. |
| प्रकाशित पुस्तकें | : | उर्दू –उमराव जान अदा : एक खसूसी मोतालां, रूप और धूप' : साबिर आश्रबी की ग़ज़लों का हिंदी रूपांतरण एवं प्रस्तुति |
| पुस्तक.आमुख | :, | लम्हों की कसक 'तरकशे वाही' 'ब्याजे बहजाद' और 'कलामे शाद', 'स्वांतः सुखाय', 'भीड़ के चेहरे' 'फस्ले गुल' तथा 'बादलों के साये तले' जैसे ग़ज़ल एवं कविता संग्रहों के आमुख लेखन |
| आलेख | : | उर्दू तथा हिंदी में लिखे लगभग एक सौ से अधिक आलेख, समीक्षा तथा साक्षात्कार आदि का विभिन्न स्तरीय पत्र –पत्रिकाओं में प्रकाशन तथा आकाशवाणी एवं दूरदर्शन से प्रसारण |
| संपादन | : | उर्दू एवं हिंदी की करीब आधा दर्जन पत्रिकाओं सहित बी.एन. कॉलेज, पटना विश्वविधालय के पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष प्रो. राम बुझावन सिंह की लिखी पुस्तक 'सिदेश्वर : व्यक्तित्व और विचार' का संपादन |
| संम्मान | : | उर्दू व हिंदी की लगभग दस साहित्यिक संस्थाओं द्वारा विभिन्न पुरस्कारों से सम्मानित |
| अभिरुचि | : | समाज व साहित्य सेवा के अलावे कौमी एकता तथा राष्ट्रीय भावनाओं का प्रचार – प्रसार |
| संप्रति | : | राजभाषा पदाधिकारी, राजभाषा विभाग, बिहार , पटना<br>महासचिव, राष्ट्रीय विचार मंच, बिहार, |
| संपर्क सूत्र | : | आवास सं. सी /6, पथ संख्या –5, आर ब्लॉक, पटना, बिहार<br>दूरभाष : 0612–2226905 |

| | | |
|---|---|---|
| जन्म स्थान | : | सतपरसा, थाना–मसौढ़ी (पटना) |
| जन्म तिथि | : | 1 अप्रैल, 1920 |
| पिता | : | स्व. बनवारी महतो |
| शिक्षा | : | मैट्रिक–डब्ल्यू. एच. ई. स्कूल, जहानाबाद, 1937 ई.<br>बी.ए. बी. एन. कॉलेज, पटना,1941 ई.<br>एम. ए. प्रथम श्रेणी में द्वितीय, पटना कॉलेज, 1943 |

प्रो. राम बुझावन सिंह

सेवाएँ : पटना विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिंदी विभाग से एम. ए. करने के पश्चात् सी. एम. कॉलेज, दरभंगा के हिंदी विभाग में व्याख्याता के पद पर सन् 1945 में नियुक्त।

10 फरवरी, 1948 में पटना विश्वविद्यालय, बी.एन. कॉलेज के हिंदी विभाग में स्थानांतरण।

आरंभिक काल से ही हिंदी साहित्य से आपका लगाव रहा है तथा अधिकतर समसामयिक विषयों पर आपकी धारदार कलम चलती रही है। व्यंग्य विधा के माहिर प्रो. साहब की रचनाएँ देश भर की पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं तथा वे स्वयं बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, बिहार लोक सेवा आयोग तथा पटेल सेवा संघ एवं राष्ट्रीय विचार मंच जैसी साहित्यिक एवं सामाजिक संस्थाओं से जुड़े रहे हैं। अवकाश प्राप्त करने के बाद आप डी.एन. कॉलेज, मसौढ़ी (पटना) के कई वर्षों तक प्राचार्य भी रहे तथा राष्ट्रवाणी, सहर होगी (चास, धनबाद), कुर्मांचल, कुर्मोदय, जागरण (पटना), निराला : जीवन और साहित्य, रेणु: स्मृति एवं श्रद्धांजलि आदि में आपने संपादन सहयोग किया है।

लिखते–लिखते आपका हाथ सध गया है और शिल्प तथा भाषा पर अधिकार हो गया है। कुल मिलाकर आपकी रचना किस हद तक मार कर रही है या खुद बुलबुले की तरह दीख कर मर जा रही है.....इसका आकलन आपने भी कभी नहीं किया। लेखन को आपने सदैव एक सचेत सामाजिक कर्म माना। आपका मानना है कि 'लेखक बन जाना जितना सहज है, लेखक बने रहना उतना ही कठिन, क्योंकि लेखक बने रहने के लिए ज्ञानेन्द्रियों को जाग्रत और कर्मेंद्रियों को वशवर्ती बनाना पड़ता है और यह बड़ा ही कष्टसाध्य है।

संप्रति प्रो. साहब दिल्ली से प्रकाशित राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक पत्रिका 'विचार दृष्टि' के परामर्शी हैं।

सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन
दिल्ली

ISBN: - 81-904100-0-8